भारतीय ज्ञानपीठ काशी

ज्ञानपीठ-ग्रन्थागार

"णाणं पयासयं"

कृपया—

(१) मैले हाथोंसे पुस्तकको स्पर्श न कीजिये। जिल्दपर कागज़ चढ़ा लीजिये।

(२) पन्ने सम्हाल कर उलटिये। थूकका प्रयोग न कीजिये।

(३) निशानीके लिये पन्ने न मोड़िये, न कोई मोटी चीज़ रखिये। कागज़का टुकड़ा काफ़ी है।

(४) हाशियोंपर निशान न बनाइये, न कुछ लिखिये।

(५) खुली पुस्तक उलटकर न रखिये, न दोहरी करके पढ़िये।

(६) पुस्तकको समयपर अवश्य लौटा दीजिये।

"पुस्तकें ज्ञानजननी हैं, इनकी विनय कीजिये"

ॐ

श्री मत्सकलकीर्त्याचार्य विरचित

* धर्म-प्रश्नोत्तर *

प्रकाशक-

बाबा [illegible] मानीलालजी उदासीन मु० केवलारी

द्वितीयावृत्ति कीमत १)

मुद्रक-

स्याद्वाद प्रिन्टिंग प्रेस, सागर सी. पी.

वीर सँ० २४६४

प्रकाशकीय वक्तव्य ।

पाठकों को यह भलीभांति मालूम होगा कि यह प्रस्तुत पुस्तक-धर्मप्रश्नोत्तर-ग्रंथ, आज से २६ वर्ष पूर्व (सन् १९१२) काशी से श्री स्याद्वाद्-ग्रंथमाला के तत्वावधान में प्रकाशित हुआ था जिसने समाज में अत्युपयोगी सिद्ध होकर यहां तक आदर पाया कि संप्रति उसकी एक प्रति भी मिलना कष्ट साध्य क्या असंभवसा प्रतीत होता है । दूसरों की सर्वज्ञ जाने हमें (प्रकाशक) तो इससे इतना असाधारण लाभ हुआ है कि इसके प्रभाव में मुग्ध होकर शक्ति न रहते हुए भी चिरकाल से हमारी यह प्रबल इच्छा हो उठी कि 'कब इस ज्ञानके भंडार-ग्रन्थ-रत्न, का प्रकाशन कर इसे सर्व साधारण के स्वाध्याय का विषय बनाया जाय ? तदनुसार हमारी वह चिरभावना आज फलवती हुई इसकी अधिक प्रसन्नता है । इस पुस्तक के प्रकाशन में हमारा एकमात्र मुख्य उद्देश्य द्रव्योपार्जन का नहीं, प्रत्युत ज्ञान के प्रसार का है और इसीलिये हमारा इरादा कतिपय असमर्थ स्वाध्याय—प्रेमियों को धर्मार्थ—बिनामूल्य वितरण कर लाभ पहुंचाना है । शेष भाग लागत लगा कर सहायता पहुंचाने वाले धर्म-वत्सल प्रेम-अधिकारी महोदय को साभार उनकी लागत निकालने के लिये उन्हें ही समर्पित कर दिया गया है । आशा है पाठक महानुभाव इसे अपना कर हमारे प्रयत्न को सफल बनावेंगे । पुस्तक बहुत काम की चीज है इसलिये हरएक हितैषी सज्जन का कर्त्तव्य है कि इससे लाभ उठाए । २८-२-३८ सागर ।

प्रकाशक—

बाबा खुमानीलाल जी वर्णी, उदासीन

मुकाम-केवलारी-जिला-सागर,

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः ।

धर्मप्रश्नोत्तर

प्रथम ही ग्रन्थकर्त्ता श्रीसकलकीर्ति आचार्य ग्रंथ की निर्विघ्न समाप्ति के लिये अपने इष्टदेव को नमस्कार करते हैं ।

तीर्थेशान्श्रीमतो विश्वान्विश्वनाथान्जगद्गुरून् ।
अनंतमहिमारूढान् वन्दे विश्वहितकरान् ॥ १ ॥

समवसरणादि लक्ष्मीकर शोभायमान, विश्व को जानने वाले, तीनों लोकों के स्वामी, जगतके गुरु, अनंतचतुष्टयादि महिमाके धारक, जगत के प्राणी-मात्र को हित करने वाले श्रीतीर्थंकर भगवान को मैं नमस्कार करता हूं । जो जगत के चूडामणि हैं, जिन्होंने चारों पुरुषार्थ पूर्णतया सिद्ध करलिये हैं, जिनको तीनों जगत नमस्कार करता है तथा जो अनंत गुण और अनंत सुखों के सागर हैं ऐसे श्रीसिद्ध भगवान को मैं अपने संपूर्ण प्रयोजनोंको

सिद्ध करने के लिये नमस्कार करता हूं। आचार पालन करने में मुख्य ऐसे आचार्य, श्रुतज्ञान के समुद्र उपाध्याय और प्रातःकाल मध्याह्न तथा सायंकाल इन तीनों समयों में योग धारण करने वाले साधुजनों को उनके गुणों की प्राप्ति के लिये मैं बारंबार नमस्कार करता हूं। ग्यारह अँग और चौदह पूर्वों के प्रतिपादन करने में समर्थ ऐसे सं-पूर्ण गणधरोंको तथा निर्ग्रंथ महाकवीश्वरों को उन के गुणों की प्राप्तिके लिये मैं नमस्कार करताहूं। जो भारती श्रीजिनेंद्रदेव के मुखरूपी कमलों से उत्पन्न हुई है, मेरे संपूर्ण प्रयोजनोंको सिद्ध करने वाली है, जिसके प्रसादमात्र से मेरी बुद्धि ज्ञान से सुशोभित हो जाती है ऐसी भारती देवीको मैं बारंबार नमस्कार करताहूं। तीनों लोकोंमें मुख्य तीनों जगतों को मंगल करनेवाले, संसार के संपूर्ण विघ्नों को नाश करने वाले अत्यंत श्रेष्ठ श्रीजिनेंद्र, सिद्ध, साधु और आगम को नमस्कार करके अब मैं श्रोता और सद्धर्मादिकों के समस्त दुर्विघ्न दूर

करने के लिये मंगल कामना, शुभ की प्राप्ति और संपूर्ण अनिष्टों को दूर करनेके लिये, स्वपरके उप-कारार्थ तथा बोध और चतुरता बढ़ाने के लिये धर्म को विस्तार करने वाले श्रीधर्मप्रश्नोत्तर ग्रन्थ का प्रारंभ करता हूं। इस धर्मप्रश्नोत्तर ग्रंथ के सुनने से भव्य जीवों के अज्ञान तथा मूढ़तादिक दोष नष्ट हो जातेहैं और सद्विवेक आदि उत्तम२ गुण वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥

किसी समय किसी शास्त्रज्ञ शिष्य ने धर्मको उद्योत करने के लिये संपूर्ण तत्व और सिद्धांत को जानने वाले, संसार के समस्त भव्यजीवोंका हित करने वाले, गुणों के समुद्र, अनेक प्रश्नों से न डरने वाले श्रीनिर्ग्रंथ गुरु को नमस्कार करके बड़े विनयके साथ नीचे लिखे हुये अनेक शुभ प्रश्न किये।

१। हे भगवन् उपादेय अर्थात् ग्रहण करने योग्य क्या है?—

उत्तर–प्राणीमात्र को इस लोक और परलोक में हित करने वाला धर्म ही उपादेय है। मुक्त होने के लिये यही धर्म ग्रहण करना चाहिये।

२। धर्म किसे कहतेहैं?-उत्तर जो संसार रूपी समुद्र में डूबते हुए भव्य जीवों को निकाल कर सर्वोत्तम मोक्षस्थान में स्थापन करदे अथवा इंद्र अहमिंद्रादि स्थानों में स्थापन करदे और नरकादि दुर्गतियों से बचावे, वही जीवोंके साथ जानेवाला दयामय वास्तविक धर्म है। यही धर्म सेवन करने योग्य है।

३। संसार में अनेक प्रकारके धर्म देखे जाते हैं उनमें से इस सद्धर्म की परीक्षा कैसे करना चाहिये? उ०—जैसे सुनार लोग घिसकर छेदकर तपाकर और काटकर सुवर्ण की परीक्षा करते हैं उसी प्रकार श्रुतज्ञान, शील तप और दया क्षमा आदि अनेक गुणोंसे, बड़े यत्न पूर्वक धर्म को परीक्षा करनी चाहिये। भावार्थ—जहां वास्तविक श्रुत शील तप दया क्षमा आदि गुण पाये जाते हों वही धर्म है।

४। श्रुत अर्थात् शास्त्र किसे कहते हैं?—जो अठारह दोषों से रहित, वीतराग, सर्वज्ञदेव ने गणधरोंके प्रति कहाथा, जो तीनों लोकोंके पदार्थोंको प्रकाश

करने में दीपक के समानहै, मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति के लिये सदा धर्मका निरूपण करने वालाहै,ऐसे आगमकोही सच्चा शास्त्र समझना चाहिये। अन्य धूर्त पाखंडी आदि लोगोंका कहा हुआ कभी शास्त्र नहीं हो सकता।

५। धर्म अनेक हैं उनमें भले बुरे की क्या पहिचान है?

गाय भैंस का दूध सफेद होताहै और आकका दूध भी सफेद होताहै, परन्तु पीनेसे उन दोनोंके स्वाद में तत्काल ही बहुत बड़ा अंतर जान पड़ता है। इसी प्रकार जैन धर्म और अन्य धर्मोंमें भी बहुत बड़ा अंतर है जो कि उनके फलों से जान पड़ता है अर्थात् दयामय जैन धर्म का फल स्वर्ग मोक्षहै और हिंसा—मय अन्य धर्मों का फल नरकादि दुर्गति ही है।

। धर्म के कितने भेद हैं?—दो अर्थात् मुनिधर्म और श्रावकधर्म। ये दोनों ही धर्म श्री जिनेन्द्र के कहे हुए हैं और दोनों ही दयामय हैं।

। इन दोनों में भी उत्तम और अनिंद्य धर्म कौन है?

इन दोनों में मुनिधर्म ही उत्तम और संपूर्ण पापों से रहित है।

८। मुनीश्वर लोग किन किन शुभ लक्षणोंसे इस मुनिधर्म का परिपालन करतेहैं?—उत्तम क्षमा मार्दव आर्जव शौच सत्य संयम तप त्याग आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य ये दश धर्म के लक्षण हैं। संसार में ये ही दश धर्म उत्तम और सारभूत कहलाते हैं इन्हीं शुभ लक्षणों से मुनिधर्म पालन किया जाता है और इन्हीं लक्षणों से यह तीनों लोकों में बंदना करने योग्य है।

९। उत्तम क्षमा किसे कहते हैं—जिन मुनियों में तपोविशेष से ऐसी सामर्थ्य मौजूद है कि यदि वे चाहें तो अपने अनिष्टों को क्षणभर में भस्म कर दें तथापि अपने कर्मोंका नाश करने के लिये अनेक घोर उपसर्ग सहन करते हैं, उपसर्ग करने वाले पर कभी क्रोध नहीं करते, यही धर्मरत्नको उत्पन्न करने वाली सर्वोत्तम उत्तमक्षमा है।

१०। मार्दव क्या है?—संसार के प्राणीमात्र पर

दया करने वाले मनुष्योंके अतिशय कोमल परिणामों को उत्तम मार्दव कहते हैं।

११। उत्तम आर्जव किसे कहते हैं?—जो शुद्ध मन बचन काय का व्यापार सरलता पूर्वक होता है जिसमें किसी भी प्रकारका छल कपट नहीं होता वही उत्तम आर्जव है।

१२। उत्तम सत्य क्या है?—संसार मात्र का हित करनेवाले, संपूर्ण जीवों की रक्षा करने वाले, सब को प्रिय, पाप रहित, तथा धर्मको प्रतिपादन करने वाले उत्कृष्टबचनों को ही सत्य कहते हैं।

१३। उत्तम शौच किसे कहते हैं?—जहां पन्डित जन यथार्थ संतोषरूप निर्मल जल से अपने अंतःकरण से मिथ्या लोभ आदि दोषों का प्रक्षालन करतेहैं तथा रागद्वेषादि अँतरंग पापों को पूर्णतया नष्ट कर देतेहैं वही उत्तम शौचहै। जलादिक से स्नान करना शौच नहीं है, क्योंकि जलादिक से स्नान करने में तो अनेक जीवों का घात होताहै। जहां जीवोंका घात होताहै वहां शौच नहीं हो सकता।

१४। उत्तम संयम किसे कहते हैं?—अपने आत्मा के समान षट्काय के जीवों को रक्षा करना तथा मन और इंद्रियों का निग्रह (वश) करना ही उत्तम संयम है।

१५। उत्तम तप क्या है?—पंचेंद्रियों के विषयों को रोक देना तथा उपवास वेला तेला कायक्लेश करना उत्तम तप है।

१६। उत्तम त्याग किसे कहते हैं?—संपूर्ण अंतरंग और बाह्य परिग्रह का त्याग करना, तथा उपदेशादि द्वारा अन्य को ज्ञानदान देना आदि उत्तम त्याग है।

१७। उत्तम आकिंचन्य किसे कहते हैं?—अंतरंग और बाह्यपरिग्रह के त्याग पूर्वक शरीरादिक से निर्ममत्व होना अर्थात् शरीर से ममत्व छोड़ देना उत्तम आकिंचन्य है।

१८। उत्तम ब्रह्मचर्य क्या है?—अनेक स्त्रियोंके नाना हावभाव विलास द्वारा भी चित्त में किसी प्रकार का रागादिक विकार नहीं होना ही उत्तम ब्रह्मचर्य है।

१९ । इस लोक में उत्तम क्षमा का फल क्या है?—संपूर्ण जगत् में यश का फैल जाना और क्रोध रूप शत्रु का नाश होना और शुद्ध आत्मा की प्राप्ति हो जाना।

२० । परलोक में उत्तम क्षमा का फल क्या है?— इंद्र अहमिंद्रादि उत्तम पदवी का मिलना, चक्रवर्तीयों की विभूति तथा सर्वज्ञ को समवसरणादि विभूति का प्राप्त होना।

२१ । इस भवमें ही क्रोधका क्या फल मिलता है?- संपूर्ण शरीर का जलना, निज और पर के धर्म का नाश करना आदि क्रोधशत्रु का दुष्फल है।

२२ । परभव में क्रोध का क्या निंद्य फल मिलता है?- सातवें नरक तक जाना तथा क्रूरसर्प, व्याघ्र और सिंहादिक अशुभ गतियों का मिलना आदि।

२३ । गाली आदि दुर्वचनों के द्वारा उत्पन्न हुआ क्रोध किस प्रकार सहन करना चाहिये?-उस समय यह विचारना चाहिये कि यह दुष्ट मुझे केवल गाली आदि देता है। लकड़ी आदि से मारता तो नहीं है। गाली आदि दुर्वचनों से मेरे घाव थोड़े ही हुए जाते हैं

इत्यादि निरंतर चिंतवन कर संपूर्ण दुर्वचनों को सहन करना चाहिये।

२४। यदि कोई लकड़ी आदि से मारे तो वह क्रोध किस प्रकार निराकरण करना चाहिये? उस समय यह चिंतवन करना चाहिये कि यह दुष्ट मुझे मारता ही है मेरे प्राणोंको तो नहीं लेता। केवल मारने से ही मेरी हानि ही क्याहै इससे तो मेरे अशुभकर्म निर्जीर्ण हो जांयगे अतएव मेरा लाभहो है इत्यादि चिंतवन कर वधबंधनादिक से उत्पन्न हुआ क्रोध शांत करना चाहिये।

२५ यदि कोई प्राण नाश करता हो तो वह क्रोध किस प्रकार शांत करना चाहिये?-यह पापी मेरे इन विनश्वर प्राणों का हरण करता है मेरे सद्धर्म को तो नहीं चुराता इन विनश्वर प्राणों के हरण करने से मेरी क्या हानि है मेरी हानि तो सद्धर्म हरण करनेसे होती मेरे सद्धर्म की रक्षा हुई यही मेरे लिये बड़ा लाभ है इत्यादि चिंतवन कर प्राणों के नाश होने से उत्पन्न हुआ क्रोध शमन करना चाहिये।

२६ । हे स्वामिन् ! क्रोध जीतने के लिये और क्या भावना है सो कहो-क्रोध उत्पन्न होने की कारण सामग्री मिल जानेपर धर्मात्मा लोगों को विचार करना चाहिये कि "कदाचित् क्रोध से मेरे चित्त में भी विकार हो जाय अर्थात् मुझे भी क्रोध आ जाय और उसके आवेश में मैं भी दुर्वचनादिक कह डालूं तो फिर धर्मात्मा और पापी लोगों में अंतर ही क्या रह जायगा। इसलिये मुझे कभी क्रोध नहीं करना चाहिये" क्रोधरूपी अग्नि बुझाने के लिये यही उत्तम भावना है। सदा इसका ही चिंतवन करते रहना चाहिये।

२७ । क्रोधरूप शत्रु को नाश करने के लिये और कौन कौन सी भावना है ?-जब कोई मारता हो व बांधता हो तो उस समय यही चिंतवन करना चाहिये कि पूर्व-भव में मैंने जो अशुभ कर्म किये हैं उन्हीं का यह कटुक फल है। यह जीव जैसा करता है वह उसे अवश्य ही भोगना पड़ता है। मैंने जो किया है वह मुझे भी अवश्य भोगना पड़ेगा। यह मुझे

मारने वाला जीव तो केवल निमित्त मात्र है। दुःख तो केवल अशुभ कर्म के उदयसे होता है। यदि अशुभकर्म का उदय है तो दुःख भी अवश्य होगा। उसमें निमित्त चाहे जो हो। इत्यादि चिंतवन करने से क्रोधरूप शत्रु सहज ही नष्ट हो सकता है।

२८। क्रोध शांत करने के लिये और क्या २ चिंतवन करना चाहिये?-यह प्राणी जो मुझे मार रहाहै इसे किसी पहले भवमें अज्ञानवश अवश्य ही मैंने मारा होगा उसी पूर्वभव की शत्रुता का संस्कार इससे लगा हुआ है अतएव यह मुझे मार रहा है इसमें इस विचारे का क्या दोष है। दोष तो मेरा है जो मैंने इसे पहले किसी भव में मारा था इस भव में तो यह मेरे मित्र का काम दे रहा है। क्योंकि मित्र उसे कहते हैं जो अशुभ दूर करे। इसने भी वध-बंधनादि के द्वारा मेरे अशुभकर्म दूर कर दिये हैं। यदि यह मुझे इस समय न मारता वा न बांधता तो मेरे पूर्व भव में संचित किये हुए अशुभकर्म

बने ही रहते, झरते नहीं। इसलिये यह मेरा पूरा मित्र है इत्यादि बारम्बार चिंतवन करने से यह दुष्ट क्रोध अवश्य ही शांत हो जाता है।

२९। क्रोध शांत करने के लिये तथा क्षमागुण बढ़ाने के लिये और क्या चिंतवन करना चाहिये?-इस जीव के अवश्यही अशुभकर्म का उदय है। उसी के बशीभूत होकर यह मुझे मारता है व बांधता है और घोर पापों का संग्रह करता है, स्वकीय पुण्य का नाश करता है। अपनी इतनी भारी हानि उठाकर भी यह जीव मेरा कल्याण ही करता है। पूर्व संचित पापों से मुझे हलका करता है। अतएव यह तो मेरा भाई है। क्योंकि भाई उसे ही कहते हैं जो अपनी हानि उठाकर भी कल्याण करे इत्यादि चिंतवन करनेसे उत्तम क्षमागुण अवश्य ही प्रगट होता है।

३०। दुःख वा उपसर्ग देनेवालोंको अवश्यदुःखमिलताहै इस का क्या दृष्टाँत है?-जो जीव किसी दूसरे को उंगली मात्र से भी मारता है वह इस संसारमें लातों

घूसों से मारा जाता है। भाले और बरछियों की मार उस पर पड़ती है। कभी२ कोई२ जीव तो जरासे मारने के बदले इतना मारा जाता है कि उसकी मृत्यु तक हो जाती है। इससे यह अवश्य सिद्ध होता है कि जो दूसरे को दुःख देता है उसे अवश्य दुःख मिलता है।

३१। क्रोधी लोगों के क्या चिन्ह प्रगट हो जाते हैं?- क्रोधी लोगोंके नेत्र लाल हो जातेहैं उनका हृदय क्रूर हो जाता है। उनकी बाणी सर्पिणीके समान कुटिल हो जाती है। वे सदा निर्दय और कुमार्ग गामी हो जातेहैं। अन्य सज्जन लोगोंमें भी कलह उत्पन्न करा देनेको वे सदा कोशिश करते रहतेहैं।

३२। धर्मरूपी कल्पवृक्षों के बन को कौन जला सकता है?- क्रोधरूपी दावानल।

३३। किसकी वृष्टि होने से धर्मरूपी कल्पवृक्षों का बन बढ़ सकता है?-उत्तम क्षमारूप अमृतकी वृष्टि होनेसे।

३४। क्रोधरूपी दावानल किस प्रकार शांत हो सकता है?- उत्तम क्षमारूप जल की वर्षा होने से क्रोधरूप दावानल स्वयं शांत हो जाता है।

३५। दुर्जनरूपी शत्रुओं से वज्रपंजर के समान रक्षा करनेवाला कौन है?-संकट पड़नेपर सज्जनोंको सर्वत्र क्षमाकर ने वाली एक उत्तम क्षमा ही है।

३६। कमरूपी शत्रुओं को जीतने केलिये अभेद्य कवच क्या है?-उत्तम क्षमा।

३७। कौनसी उत्तम क्षमा प्रशंसनीय है?-जो उत्तम क्षमा भारी २ करोड़ों उपद्रव आ जाने पर कुछ भी चलायमान न हो वही सज्जनों की क्षमा प्रशंसनीय है।

३८। महामुनियों की उत्तमक्षमा का क्या उदाहरण है?-जैसे पृथिवी चाहे जितनी खोदी जाय, चाहे जितनी छिपाई जाय, जलाई जाय परन्तु वह किसी प्रकार भी कंपायमान नहीं होती सदा निश्चल ही बनी रहती है। उसी प्रकार महायोगी पुरुष भी अतिशय भयानक और दुःसह अनेक घोर उपसर्ग आ जाने पर भी अपने ध्यान तपश्चरणादि से कुछ भी चलायमान नहीं होतेहैं। सुमेरु पर्वत के समान निश्चल ही बने रहते हैं।

३९। उत्तम मार्दव से इस लोक में क्या फल मिलता है?-उत्तम मार्दव अर्थात् कोमल परिणामों से इस जीव

को तपश्चरण की प्राप्ति होती है। तेरह प्रकारके चारित्र की प्राप्ति होतीहै। उत्तम क्षमादिक निर्मल गुण प्रगट हो जातेहैं। बुद्धि निर्मल तथा धर्मऔर मोक्ष पदार्थ में तत्पर हो जाती है। इत्यादि अनेक फल इसी लोक में मिलते हैं।

४०। परलोक में उत्तम मार्दव से क्या फल मिलता है?—
इंद्र, अहमिंद्र, चक्रवर्ती, तीर्थंकर आदि उत्तम२ पदों की प्राप्ति होना, तीनों जगत में सारभूत उत्तम मोक्षरूप सुखकी प्राप्ति होना, अनंतचतुष्टय समवसरणादि उत्कृष्ट संपदाओं का मिलना आदि।

४१। कठिन परिणामों से इसलोकमें क्या फल मिलता है?—
कठिन परिणामों से अर्थात् अभिमान करने से तप व्रत यम नियम आदि सब नष्ट हो जाते हैं, उत्तमक्षमादि धर्म नष्ट हो जाते हैं। अहिंसादिक महापाप प्रादुर्भूत हो जाते हैं। तथा क्रोधादिक दोष उत्पन्न हो जाते हैं।

४२। कठिन परिणामों से परलोक में कौनसी गति होती है?—
नरकगति, सिंह व्याघ्रादि अनेक प्रकार तिर्य-

चगति और भीम चांडाल आदि अति निंदनीय मनुष्यगति।

४३। आर्ज़वभावोंसे अर्थात् सरल परिणामों से इस लोक में किन किन गुणोंको प्राप्ति होती है?-आर्जवपरिणामों से इस आत्मा की विशुद्धि इतनी बढ़ जाती है कि जो संपूर्ण पदार्थोंको सिद्धकरसकेऔरजो शुक्लध्यानको उत्पन्न कर सके। इसके सिवाय निर्मलतप, रत्नत्रय, उत्तम धर्म और ज्ञानादिक अनेक गुण आर्जव धर्म से ही प्रगट होते हैं।

४४। मायावी (कपटी) मनुष्योंकी व्रत तप आदि क्रियाएं कैसी हैं और उनकाक्या फल है?-मायावी मनुष्योंका व्रत पालन करना, चारित्र पालना, शास्त्रका अभ्यास करना, योग धारण करना आदि सब व्यर्थ हैं। कपट पूर्वक जोतप किया जाताहै वह तुष खंडनके समानहै अर्थात् जैसे तुषखंडन से (भूसीमात्र कूटनेसे) कुछफल नहीं निकलता उसी प्रकार कपट पूर्वक तपश्चरण करनेसे कुछ फलनहींहोता। मायावी लोगोंकीदीक्षालेना, समिति पालन करना आदि सब निष्फल है।

४५ । हे भगवन्! परलोकमें मायावी लोगोंकी केसी गतिहोती है?- बगुला बिल्ली कुत्ता बिच्छू सर्प आदिनीच तिर्यंचगति

४६ । परलोकमें मार्जवधर्मसे कौन कौन गति होती है ?— इस आर्जवधर्मके प्रभावसे किसीको अनंतसुख देने वाली मोक्षगति होतीहै। किसोको सर्वार्थसिद्धि, किसीको उत्तम ग्रैवेयक और किसी को अच्युत स्वर्ग आदि गतियां होती हैं ।

४७ । सत्यभाषण करनेसे इसलोकमें कौनकौन गुणप्रगट होतेहैं?- इस संसारमें सत्यभाषणकरनेवालेके बचन अतिशय प्रमाण मानेजाते है । सत्यवादोको अत्युत्कृष्ट प्रतिष्ठा प्राप्त होतीहै । उसको कीर्त्तिसे संसार स्वच्छहोजाता है। संपूर्ण पदार्थों को प्रकाश करने वाली वाणी हो जाती है, और विद्यादिक संपूर्ण श्रेष्टगुण प्रगट हो जाते हैं ।

४८ । सत्यधर्मसे परलोकमें कौन२ गति होती है ?- सत्य भाषण करनेसे बहुत शीघ्र मोक्षगति प्राप्त होती है । यदि कारणवश मोक्ष प्राप्त न हो सका तो अहमिंद्र अथवा उत्तम स्वर्गादिक गति प्राप्ति होती हैं ।

४९ । झूठ बोलनेवाले से कौन कौन दोष प्रगट होते है । -झूठ

बोलनेवालों को राज्यकी ओरसे जिह्वाछेदन आदि अनेक दंडमिलतेहैं। क्षण२में अनेक पाप उत्पन्न होतेहैं। उनकी बुद्धि नष्टहो जातीहै। संसारमें वे अतिशय मूर्ख और अविश्वासी गिनेजाते हैं। उनका अपयश संसारभर में फैल जाताहै। जगह२ पर उनका अपमान होताहै। कहाँतक कहा जाय। झूठ बोलनेसे संसारमें अनेक अवगुण फैल जाते हैं।

५०। मिथ्याभाषण करनेवालों को परलोकमें कौन२ गति प्राप्त होती हैं।—असत्यभाषण करने वाले सातवें नरक तक जाते हैं अथवाउन्हें नीच तिर्यंचगति प्राप्त होतीहै।

५१। कौन झूठ बोलनेवाला नरक गया है।—यों तो अनेक झूठ बोलनेवाले नरकगयेहैं परन्तु उन सबमेंराजा वसु प्रसिद्ध है क्योंकि उसे केवल झूठ बोलने से ही सातवें नरक जाना पड़ा था। (शास्त्रों में कथा देखो)

५२। उत्तम शौच पालन करनेसे इसलोकमें क्या२ होता है:—संतोषरूप राज्यकीप्राप्ति होतीहै जिससेफिर अनेक सुख उत्पन्न होतेहैं। आशा और लोभरूप शत्रुओं का सर्वथा नाशहो जाता है शौच पालनकरनेवाला

संसारमें अतिशय पूज्य और मान्य गिना जाता है ।

५३। इस शौच धर्मसे परलोकमें क्या फल मिलता है।-जिस को केवल त्रैलोक्यनाथ सर्वज्ञही अनुभव कर सकते हैं ऐसे मोक्षरूप सुख की प्राप्ति होती है ।

५४ जो लोग केवल स्नान करने को ही उत्तम शौच मानते हैं उनसे इसलोकमें कौन २ दोष उत्पन्न होते हैं।-जोमनुष्यस्नान कोही उत्तम शौचमानकर नित्य स्नान किया करते हैं वे प्रतिदिन द्वींद्रियतेइंद्रिय चतुरिंद्रिय और मगरमच्छ लो आदि अनेक पंचेंद्रिय जीवोंकाघात कियाकरतेहैं तथा शेवाल (काई) आदि अनंतकाय और जलकाय के अनंत जीवों का नाश किया करते हैं। उन्हें घोर पाप का बंध होता है ।

५५। जो मनुष्य केवल स्नान करने को ही उत्तम शौच मानते हैं उन्हें कौनसी गति मिलती है।-नरकगति अथवा मत्स्यादिक दुर्गति ।

५६। धर्मात्मा लोकों को किन२कारणोंसे उत्तम शुद्धि हो सकती है।-तपश्चरण करने से, संयम पालने से, इंद्रियों को निग्रह करनेसे तथासंपूर्ण जीवोंकी रक्षाकरने से ।

५७। ब्रह्मचारीगण जलशुद्धि के सिवाय और किन २ कारणों से शुद्ध रहते हैं।-रत्नत्रय(सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्च

रित्र) उत्तम तप और उत्तम ध्यान से।

५८। संयम पालन करनेसे इस लोकमें कौन कौन प्रत्यक्ष फल मिलते हैं।-यह प्रथम संयमधर्म काही अद्भुत प्रभावहै कि स्वयं इंद्रभीआकर एकसेवकके समान मुनियों के चरणकमलोंकी सेवाकरताहैफिरभलाराजामहा राजाओंकी तो बातही क्याहै अर्थात वेतो उनको सेवाकरतेहीहैं।इसकेसिवाय मुनियोंकेचरणकमलों का आश्रय पाकर सिंह व्याघ्रादिक अतिशय क्रूर जंतुभी स्वयं शांत हो जाते हैं।

५९। संयमी जनों कोपरलोकमें कौन२ गति प्राप्त होती है।—संयमीजन प्राय: मोक्ष हो जातेहैं। अथवा सर्वार्थ सिद्धि पर्यंत उत्कृष्ट देवगति को प्राप्त होते हैं।

६०। असंयमसे कौन कौन दोष प्रगट होते हैं।—संयम के विना तप यम नियमआदि संपूर्णगुण निष्फल हो जातेहैं दीक्षालेना व्यर्थ हो जाताहै। इत्यादिऔर भी बहुत दोष प्रगट हो जाते हैं।

६१। असंयम से परलोक में कैसी दुर्गति होती है।असंयमी जीव पृथ्वी अपतेज वायु निगोद विकलत्रय आदि अनेक तिर्यंच योनियों में अथवा नरक गति में

चिरकाल तक परिभ्रमण करते रहते हैं ।

६२ । उपवास करनेको क्या फलहै?।-शरीरका कृशकरना इंद्रियों को जीतना, षट्कायके जोवोंकी रक्षाकरना और बलिष्ट कर्मों को निर्जरा करना आदि ।

६३ अवमोदर्यव्रत का क्या फल है।- अवमोदर्य तप से निद्रा का विजय होता है । शुभध्यान में उपयोग लगता है आसनकी स्थिरता हो जाती है ।

६४ । वृत्तिपरिसंख्यान तप से क्या फल होता है।- आहार की इच्छा और लोलुपता हट जातीहै। दीनतारूप परिणाम सर्वथा नष्टहोजातेहैं और कर्मोंकी विशेष निर्जरा होती है ।

६५ । रसपरित्याग तपका क्या फल है-इंद्रियोंको सर्वथा जीतना, निर्मल ब्रह्मचर्यका परिपालन करनाआदि

६६ । विविक्तशय्यासनतपसे क्या लाभ होता है -सुदृढ और निर्मल ब्रह्मचर्यका पालन करना और सामायिक ध्यान स्वाध्याय आदिकर्म निर्विघ्नतासे समाप्तहोते हैं तथा रागद्वेष परिणामों की निवृत्ति होजातीहै

६७ । कायक्लेश तपसे क्या होता है -शरीर से तथा इस

शरीरको सुखदेनेवाले भोगोपभोग पदार्थोंसे ममत्व छूटजाताहै शुभध्यानकी प्राप्ति होतीहै औरस्वात्म जन्य मोक्षरूप अनंतसुख मिल जाता है।

[इस प्रकार ऊपर कहेहुये अनशन (उपवास) अवमोदर्य वृत्तपरिसँख्यान रसपरित्याग विविक्तश- य्यासन और कायक्लेशयेछह वाह्यतप के भेद हैं]

६८। यह छहप्रकारके तप वाह्यतप क्यों कहलाते हैं— अन्य जनोंको ये प्रत्यक्ष दृष्टिगोचरहोतेहैं इसलिये येवाह्य तप कहलातेहैंअथवा मिथ्यादृष्टि लोगभीइसप्रकार केतपकरसकतेहैं इसलियेभी येवाह्यतपक.लातेहैं

६९। यह वाह्यतप अतिशय कठिन है फिरभी पण्डितजन इसे क्यों किया करते हैं?-आभ्यंतरतप बढ़ानेकेलिये, कर्मों के नाशकरने और मोक्ष की प्राप्तिहोने के लिये।

७०। प्रायश्चित्त नामके अंतरंग तपसे क्यालाभहै?-प्रायश्चि त्तसे सज्जनोंका हृदय निःशल्य(मायामिथ्यानिदान रहित) हो जाता है, तथा उनका तप और चरित्र अतिशय निर्मल हो जाता है।

७१। विनयनामा अंतरंग तपसे कौन कौन गुण प्रगट होतेहैं।— विद्या, विवेक,चतुर्थ,तप और रत्नत्रयादिक अनेक

गुण प्रगट होते हैं।

७२। वैयावृत्य करनेवालोंको क्या फल मिलताहै।-उन्हें निर्विचिकित्सा आदि अनेकगुण प्रगटहो जाते हैं। उनकी शक्ति बढ़जातीहै और पापोंकानाश होजाताहै।

७३। स्वाध्याय करनेसे क्या लाभहोता है।-स्वाध्याय करने से मन और पांचों इंद्रियां अपने वश हो जाती हैं। शुभध्यान की प्राप्ति होतीहै। लोकालोक को प्रकाशकरनेवाला विज्ञान उत्पन्न हो जाता है इनके सिवाय और भी अनेक गुण प्रगट हो जाते हैं।

७४। कायोत्सर्ग करनेसे क्या२ होता है।-शरीर परिग्रहादिक से सर्वथा ममत्व छूट जाता है। आत्मा को अद्भुत शक्ति प्रगटहो जातीहै। मन बचन कायकी क्रियायें सब शुभ रूप परिणत हो जाती हैं तथा अनंत कर्मों का क्षय हो जाता है।

७५। धर्मध्यान से क्याफल मिलता है।-अशुभ कर्मों का नाश हो जाता है। ज्ञानरूपी सम्पदा और अनंत सुखों की प्राप्ति होती है। तथा परभव में तीर्थसिद्धि पर्यंत उत्तम देवगति मिलती है।

७६। शुक्लध्यान का क्याफल है।-अनंत सुख को देने वाली केवलज्ञान, केवल दर्शन, क्षायिकदान, क्षायिक लाभ, क्षायिकभोग, क्षायिकउपभोग, क्षायिकवीर्य क्षायिकसम्यक्त्व और क्षायिकचारित्र ये नौ लब्धियां शुक्लध्यान से ही प्राप्त होती हैं।

७७। मिथ्यादृष्टियोंको आर्त्तध्यानसे कौनसी दुर्गति मिलती है। अनेक क्लेश और दुख देनेवाली तिर्यंचगति।

७८। रौद्रध्यानसे क्या होता है-जितना शुभ है वह सब रौद्रध्यानसे अशुभहो जाताहै और परलोकमें नरकगतिमिलतोहै। ऊपरकहेहुये प्रायश्चित्त, विनय वैयावृत्त, स्वाध्याय व्युत्सर्ग और ध्यान ये छह अंतरंग तपहैं। ध्यानके जोचारभेद कियेहैं, उनमेंसे धर्म्यध्यान और शुक्ल ध्यान तो मोक्षके कारण हैं तथाआर्त्त ध्यानरौद्रध्याननरकनिगोदादि केकारणहैं।

७९। इस अंतरग तपसे इस लोकमें क्या२ प्रत्यक्ष फल मिलताहै। इस अंतरंग महातपके प्रभाव से अनेक ऋद्धियां उत्पन्न होती हैं। घातिया कर्मोंका नाशहोजाता है। केवलज्ञान की प्राप्तिहोतोहै। महातपस्वियोंके चरण

कमल स्वयं त्रिलोकेश्वर(इंद्र,धरणींद्र,चक्रवर्त्ती) भी एक सेवक के समान पूजते हैं।

८० । जोलोग इस ऊपर कहे हुये बारह प्रकार के तपश्चरण का पालनतो करते नहीं किन्तु अपनी इच्छानुसार जटा बढ़ाना, पंचाग्नि तापना आदि मिथ्या तपश्चरण करते हैं उन्हें क्या मिलता है—

उन्हें हजारों रोग हजारों क्लेश उपस्थित होतेहैं तथा परभव में नरक व तिर्यंचगति प्राप्त होती है।

८१ । परिग्रह त्याग कर देनेसे मुनियों को क्यालाभ होता है—

परिग्रह त्यागकर देनेसे मुनियोंका हृदय निःशल्य हो जाताहै। सँपूर्ण दोषनष्टहो जातेहैं । और समता आदि अनेक गुण प्रगट हो जाते हैं ।

८२ । ज्ञान का दान करने से अर्थात् किसी को पढाने लिखाने अथवा विद्यावृद्धिमें सहायता देनेसे क्याफल मिलताहै-ज्ञानदान करनेसे सज्जन पुरुषोंको संपूर्ण द्वादशांग श्रुतज्ञान कीप्राप्तिहोतीहै,तथाक्रमसेकेवलज्ञानको प्राप्तिहोतीहै

८३ । अभयदान देने से मुनिजनों को क्या लाभ होता है ।

अभयदान देनेवाले मुनियोंको कभी रोग दुःखादिककी उत्पत्ति नहीं होती। तथा अन्तमें उन्हें उत्तम निर्भय स्थान अर्थात् मोक्षस्थान ही प्राप्तहोता है।

८४। परिग्रह रखनेवालों में कौन२ दोष प्रगट होते हैं।— परिग्रह रखनेवालोंका चित्त सदा आर्त्त ध्यान अथवा रौद्रध्यानमें ही लीन रहताहै, उनकी लेश्यायें और परिणाम सदा अशुभहो रहतेहैं। वे सदा परिग्रहों में मोहितबने रहतेहैं। उनकी दीक्षालेना अथवा तप इचरण करना आदि सब कार्य व्यर्थ ही है।

८५। सामर्थ्य होते हुयभी ज्ञानदान न देनेवालों को क्या२ हानि होती है' उनका ज्ञान नष्ट होजाताहै। कृपणता और मूर्खता उनपर अपना अधिकार जमा लेतीहै। उनका संपूर्ण यश भी नष्ट हो जाता है।

८६। निर्दयी मनुष्योंसे क्या२ दोष बनपड़तेहैं।-- निर्दयी लोगोंका संयम धारण करनाभी निरर्थकहै वेसंसार में पापोंके कारण सदा परिभ्रमणाही करते रहतेहैं।

८७। जो जीव आकिंचन्यधर्मका पालन करते हैं अर्थात् तिलतुष मात्रभी परिग्रह नही रखते उन्हें क्या लाभ होता है।-आकिंचन्य धर्मको धारण करनेवालोंके सदा कर्मके समूहनष्ट होतेरहतेहैं। तथा निर्ममत्वादिक सद्गुण प्रगटहोते रहते हैं। उनके आतेहुए कर्म रुकजातेहैं, और अंत में उन्हें मोक्षरूप उत्तम सुखही मिलता है।

८८ : ब्रह्मचारियों को ब्रह्मचर्य पालन करने से क्या२ होताहै ।- ब्रह्मचर्य के प्रतापसे इंद्रभी बड़ी भक्ति और प्रेमसे ब्रह्मचारियोंके चरणकमलों की सेवा करताहै। इस ब्रह्मचर्यके माहात्म्यसे इंद्रोंके आसनभी कंपायमान हो जातेहैं। सद्विद्या आदि अनेक उत्तम२ गुणप्रगट होजातेहैं। उनका यश संसारमें व्याप्तहो जाता है रागद्वेषादिक दोषनष्टहो जातेहैं । और इंद्रियां सब वशीभूत हो जाती हैं ।

८९। जो अब्रह्मचारी अर्थात् व्यभिचारी हैं उन्हें क्या २ हानि उठाना पड़ती है ।-उन्हें सर्वत्र अपमान सहना पड़ताहै। उनकेराग,द्वेष,रोग,शोक,चिंता आदिदोष बहुतबढ़ जातेहैं। और अंतमेंवे नरकादिक दुर्गतिमें जातेहैं।

९०। हे भगवन् यह जो उत्तम क्षमादिक दशलाक्षणिक धर्म उपरि कहा गया है इसके पालन करने से धर्मात्मासज्जनजनों का क्या फल मिलता है वह मुझसे कहिये जिससे मेराभी कल्याण हो।- दश लाक्षणिक धर्मपरिपालन करनेवालों को तीनों ही जगतमें अतिशय मान्यता और पूज्यता प्राप्त होतीहै इसधर्मके पालनकरनेसे असंख्यात कर्मोंको निर्जरा होतीहै । संवरपूर्वक शुक्लध्यानकी प्राप्तिहोती है,

और अंतमें मोक्षगतिकी प्राप्तिहोतीहै। येउपर्युक्तजो प्रश्न कियेहैं। वे धर्मकोप्रगट करनेवालेहैं, धर्मका स्वरूप जाननेकी आकांक्षा से ही पूछे गयेहैं तथा उत्तमक्षमादिक दशलाक्षणिक धर्मोंका स्वरूपही इन में पूछा गयाहै। इसलिये इन प्रश्नोंको तथा इन के उत्तरोंको अच्छी तरह समझकर उत्तम क्षमादि करूप दशलाक्षणिक धर्मकाही सेवनकरो। यहीधर्म संपूर्ण पापोंकानाश करनेवालाहै। स्वर्ग औरमोक्ष की अद्भुत सम्पदाको देनेवालाहै। तथाअनंत सुखों का भंडारहै। बड़े२तपस्वी ही इसका स्वरूप जान सकतेहै। वेही इसे पूर्णतया धारण कर सकते हैं इसीके सेवन करनेसे मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है।

यह दशलाक्षणिक धर्म अनंतगुणोंको प्रगट करनेवालाहै और अनंतदोषोंको दूर करनेवाला है। इस धर्मको जोसेवन करतेहैं। वे संसारमें धार्मिकगिने जातेहैं। इसधर्मके परिपालनकरनेसे उत्तमधर्मकी वृद्धिहोतीहै। इस धर्मके लिये मैं मस्तक नवाकर नमस्कार करताहूं। इसधर्म से भिन्न औरकोई भी

ऐसा धर्म नहीं है जो रत्नत्रयादि गुणोंका देनेवाला हो। इस धर्मकीजड़ उत्तमक्षमाहीहै इस धर्म में हो में अपना चित्तसदा स्थिर रखताहूं। हे धर्म! मेरा यह संसार संबंधी भय दूर कर।

(इस श्लोकमें धर्मशब्दमें सातों विभक्तियोंका प्रयोग कियागया है)

जो श्रीतीर्थंकर धर्मरूप प्रश्नोंका उत्तर देनेमें अत्यंत निपुणहैं। और जो गणधरदेव धर्मरूप प्रश्नों के पूछनेमें अतिशय चतुरहैं। उन्हें मैं उनके गुणोंको प्राप्तिके लिये बारंबार नमस्कार करता हूं।

इति श्रीधर्मप्रश्नोत्तर महाग्रन्थे भट्टारक श्रीसकल कीर्त्तिविरचिते क्षमादिदशलाक्षणिक धर्मप्रश्नोत्तर वर्णनोनाम प्रथमोऽधिकारः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः।

अब ग्रंथकार पंच परमेष्ठीको नमस्कार करके प्रश्नोत्तररूप से गृहस्थों का धर्म निरूपण करते हैं।

६१। कैसे आचरणोंसे गृहस्थोंका धर्म पालन हो सकता हैं।

दर्शनादिक ग्यारह प्रतिमाओं के आचरण करनेसे।

६२। वे ग्यारह प्रतिमायें कौनर हैं–१ दर्शनप्रतिमा, २ व्रत प्रतिमा, ३ सामायिकप्रतिमा, ४ प्रोषधोपवासप्रतिमा,

५ सचित्त विरतप्रतिमा, ६ रात्रिभुक्तित्यागप्रतिमा, ७ ब्रह्मचर्यप्रतिमा ८ आरंभत्यागप्रतिमा ६ परिग्रह प्रतिमा १० सावद्यअनुमतित्यागप्रतिमा और ११ उद्दिष्टाहारत्यागप्रतिमा।

६३। दर्शनप्रतिमा किसे कहतेहैं-पंच उदंबर और सात व्यसनों का त्याग करना, तथा शंकादि दोषों से रहित, निःशांकितादि अष्टगुण सहित सम्यग्दर्शनका धारण करना दर्शन प्रतिमा है। भावार्थ—निर्दोष सम्यग्दर्शन का धारण करना ही दर्शनप्रतिमा है परन्तु इतना विशेषहै कि इसकेसाथ२ पँच उदंबर और सात व्यसनोंका त्याग अवश्य होना चाहिये यह दर्शनप्रतिमा ही संपूर्ण व्रतों की जड़ है।

६४। सप्त व्यसनों के क्या२ नाम हैं-१ जुआ खेलना, २ मांस खाना, ३ शराबपीना, ४वेश्यासेवन करना ५ शिकार खेलना, ६ चोरी करना और ७परस्त्री सेवन करना येसात व्यसन कहेजातेहैं। ये सातों ही व्यसन अनेक पाप और संपूर्ण अनर्थोंके करने वाले हैं तथा धर्म को नाश करने वाले हैं।

६५। जुआ खेलने से क्या हानि होती है-जुआ खेलने से प्रतिष्ठा मिट्टीमें मिलजातीहै,शोभा सब जातीरहती है। सुखकी सब सामग्री नष्ट हो जातीहै। हिंसा झूठ चोरी आदि अनेक पाप करने पड़ते है। अनेक दुर्वचन सहने पड़ते हैं। दरिद्रता अलगआ घेरती है, और२बड़े दुःख भोगने पड़तेहैं। यहां तक कि कभी२ प्राण भी खो बैठने पडते हैं। नरक में ले जाने वाला पाप भी जुए से होता है। यही जुआ एक ऐसा व्यसन है जोचोरी वेश्यागमन आदि और और व्यसनों को भी स्वयं इकट्ठा कर लेता है, तथा उन्हें दिनरात बढ़ाता रहता है।

६६। जिन्होंने मांस खाना छोड़ दिया है उन्हें और कौन कौन चीजें नहीं खानी चाहिये-बेर आदि ऐसे फल कि जिन में सदा कीड़े रहते हैं, घुने हुए गेहूं, जव, मटर आदि धान्य तथा और भी ऐसे पदार्थ कि जिनमें जीवजंतु होनेकी सँभावना हो, नहीं खाने चाहिये रात्रि में भोजन करनेसे छोटे२ जीवजन्तु भोजन में आपड़ते हैं अतएव रात्रिमें भोजन करनेवाला

मांसभक्षणके दोषोंसे बच नहीं सकता। इसलिये मांस भक्षणके त्यागियों को रात्रिभोजन भी अवश्य छोड़ देना उचित है।

६७। जिन्होंने मद्यपानका त्याग करदिया है उन्हें और कौन२ द्रव्य छोड़ देने चाहिये-भंगआदि ऐसे२ संपूर्ण द्रव्य जो किबुद्धि बिगाड़नेवाले हों तथा उन्मत्त करनेवालेहों।

६८। वेश्यासेवन करनेसे क्या२ हानि होतीहै-गृहस्थ अवस्थामें अवश्य पालनेयोग्य आचरण सब नष्टहोजाते हैं। वेश्यासेवन करनेवाले मर्द(विट गुंडे, रंडी बाज, वेश्यालंपटो) कहलाते हैं। उनका कुलडूब जाताहै। यदि वेश्याके गर्भ रहजायतो औरभीघोर अपयश फैलजाताहै इसके सिवाय भ्रूणहत्या का पापभी होताहै। वेश्या मद्य मांसादिक का सेवन करतीही है। नीच और दुष्टलोगों से संबंध रखती हीहै। अतएव जोलोग वेश्यासेवन करते हैं उन्हें वे सब दोष लगतेहैंजोकि मद्यमांसादिक के सेवन करनेसे होते हैं। तथानीच और दुष्ट लोगोंसे संबंध रखने होतेहैं। वेश्यासेवन करनेसेवह पाप उत्पन्न

होताहै जोकि उसे सीधा नरक ले जाता है।

९९। शिकार खेलनेवालों को इस जन्ममें तथा परभव में कौन २ दुःख उठाने पड़ते हैं-जोजीव बलवान होकर निर्बल पशुओं को मारतेहैं वे परलोक मेंउन्हीं जीवोंके द्वारा (जिन्हें उन्होंने मारा था और मरकर वे उससे भी बलवान् उत्पन्न हुये हैं) करोड़ोंबार मारे जाते हैं इसके सिवायइस लोकमें भी शिकार खेलनेवालों का चित्त सदा वैर और दुर्ध्यानमें ही लीन रहता है जिससे वे घोर पापका बंध करते हैं।

१००। चोरी करनेसे क्या दुख होते हैं-चोरी करने वालों का कुटुम्ब और कुल सब नष्ट होजाता है। चोरी करने से उन पर ऐसी मार पड़ती है कि मृत्यु तकहो जाती है। और अंतमें उस पापसे वे सीधे नरक जाते हैं।

१०१। परस्त्रीसेवन करने वालोंकी कैसी दुर्दशा होती है।—राज्यकी ओरसे परस्त्री सेवन करनेवालोंका मस्तकादि अंगोपांग काट लिये जाते हैं। उनका कुल उनकी शोभा सबनष्ट होजातीहै उनका आत्माभी ऐसा मलिन होजाताहै, कि परभवमें उन्हें सातवां

नरकही मिलताहै, जहांकि गरमकी हुई लोहेकी पुतलियों से बार २ आलिंगन कराया जाता है ।

१०२ । इनसातों व्यसनोंके सेवन करनेसे कौन२ दुर्गति होती है । सात व्यसनहैं और सातही नरकहैं जो एक२ व्यसनका सेवन करतेहैं, उन्हेंकिसी न किसीएक नरकका दुःख भोगना पड़ताहै किंतु जो सातोंव्यसनोंका सेवन करतेहैं उन्हेंक्रमसेसातोंही नरकोंके ऐसे२ घोरदुःख भोगने पड़ते हैं जोकि बचन गोचर भीनहींहोसकते ।

१०३ । व्रतप्रतिमा किसे कहते हैं —निरतिचार पंच अणुव्रत और तीन गुणव्रत तथा चार शिक्षाव्रतों को पालन करनाहो व्रतप्रतिमा कहलाती है ।

१०४ । अणुव्रत किसे कहते हैं और वे कितने है—मन वचन कायसे स्थूलहिंसा झूठ चोरीअब्रह्म (कुशील) और परिग्रहकात्याग करनाही अणुव्रतहै और वह अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्यऔर परिग्रहपरिमाण केभेद से पाँच प्रकार है ।यह अणुव्रत ही गृहस्थधर्म कामूल है। क्योंकि इसके विना गुणव्रतादि कभी नहीं हो सक्ते ।

१०५ । अहिंसाअणुव्रत किसे कहते हैं—मन बचन कायसे

तथा कृतकारित अनुमोदना से द्वीन्द्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय और पँचेंद्रिय जीवों की तथा अपने आत्मा की रक्षा करना ही अहिंसा अणुव्रत कहलाता है। यह अहिंसाणुव्रत ही अन्य सब व्रतों कामूलहै, सबसे उत्तमहै, धर्मका मूल कारणहै। अन्य अचौर्यादिक संपूर्णव्रतकेवलअहिंसाव्रतकी पुष्टिकरने के ही लिये कहे गये हैं।

१०६। सत्याणु व्रत कैसा है-स्थूल असत्यका त्याग करना अर्थात् ऐसा असत्य भाषण न करना जिस से किसी जीवको दुख पहुंचे अथवा राज्य वा पंच दंड दे सकें। किंतु यथार्थ जीवमात्रके हितकारी, परिमित, साररूप, पापके नाश करनेवाले, धर्मको वृद्धि और सबका कल्याण करने वाले, स्वपर का यश बढ़ानेवाले और परनिंदासे रहित उत्कृष्ट बचन कहना ही सत्याणुव्रत कहलाता है।

१०७। अचौर्याणुव्रत किसे कहतेहैं-किसी ग्राम में वा जंगलमें अथवा किसी मार्गमें किसीको कोई वस्तु अथवा धनधान्यादिक पड़ाहो अथवा कोई भूलगया

हो अथवा किसीका बिगड़ा हुआ पड़ाहो उसे स्वयं नहीं उठाना अथवा किसीकोलिये उठानेको आज्ञा नहीं देना उसे अचौर्याणुव्रत कहते हैं। जिस वस्तुमें देने लेने का व्यवहार संभव हो सकता है ऐसी बिना दी हुई कोईभी वस्तु ग्रहण नहीं करना वही अचौर्याणुव्रत है। इस अचौर्याणुव्रत से लोभ जाता रहताहै और अनेक सुखदेने वाली सामग्री स्वयं आ मिलती है।

१०८। स्वदारसंतोष नामके चौथे अणुव्रत का क्या स्वरूप है- स्वस्त्रीके सिवाय अन्य स्त्रीमात्रको पुत्री भगिनी और माता समझना अर्थात् जो अपनेसे छोटी लड़कीहों उन्हें पुत्री समझना, जो बराबरीकी हों उन्हें बहिन समझना और जो बड़ी हों उन्हें माता समझनाही ब्रह्मचर्य अणुव्रत कहलाताहै यहव्रत धर्मकामूलकारण है, जगत्यपूज्यहैऔर पापकानाश करनेवाला है।

१०९। परिग्रहपरिमाण अणुव्रत किसे कहते हैं— १ खेत जमीन वगैरह २ मकान ३ गायभैंस घोड़े आदि पशु ४ गेहूं जौआदि धान्य ५ रुपया मोहर सोना चांदी

आदि धन ६दासी दास ७आसन ८शय्या ६ वस्त्र और १०धातु वर्तन वगैरह ये दश प्रकारके बाह्य-परिग्रह कहलाते हैं अपनी शक्ति और हैसियत के अनुसार इन का परिमाण करना पाचवाँ-परिग्रह परिमाण नाम अणुव्रत कहलाताहै । इन परिग्रहों कापरिमाण इसप्रकारकिया जाताहैकि "हम हजार व लाख बीघाखेत रक्खेंगे सौ व हजार या लाख घोड़ेरक्खेंगे लाखवकरोड़मन गेहूं रक्खेंगे,,आदि।

११० । गृहस्थोंको परिग्रहपरिमाणसे क्या लाभ है — लोभ-रूपीशत्रु नष्टहो जाताहै ।आशा रूपीराक्षसी मरजा-तीहै।संतोषादिक अनेक गुण प्रगटहो जाते हैंराज्या दिकसंपदायें प्राप्तहोतीहैं । अनेकधर्मात्मा देवउसकी परीक्षाऔर सहायता करनें में सदा उद्यत रहते हैं।

१११ । यदि परिग्रह का परिमाण नहीं किया जाय तो क्या हानि होती है ।—काम क्रोध मोहलोभआदिधर्मको चुरानेवाले शत्रु अतिशय उत्तेजित हो जाते हैं। निंदा संसार भरमें फैलजातीहै औरआशा भी संपूर्ण जगतको उदरस्थ करलेना चाहती है । परिग्रहकापरिमाण न

करनेसे यहप्राणी 'लोभ औरआशा केफंदे में फंसकर ऐसे२ घोर पाप करता हैं जो कि केवल नरक केही कारण होते हैं ।

११२। गुणव्रत कौन २ हैं—दिग्विरति अनर्थदंडविरति औरभोगोपभोग परिमाणये तीनगुण व्रत हैं। येगुणव्रत अणुव्रतोंको बढ़ानेवाले तथाधर्म वृद्धि करनेवाले हैं।

११३। दिग्विरति किसे कहते हैं-उत्तरदक्षिण पूर्वपश्चिम आदि दिशाओंमें तथा ईशानादिक विदिशाओंमें और ऊपर तथा नीचेकी ओर योजनकोस आदिके द्वारा अथवा प्रसिद्ध देशनदी पर्वत आदिको सीमा नियत करजन्मपर्यंत उसके भीतरही आने जानेका नियम करना प्रथम दिग्विरति नामका गुणव्रत कहलाता है । इस व्रतको धारण करनेवाला अपनी नियत कीहुई सीमासे कभी बाहर नहीं जा सकता जैसे किसी पुरुषने उत्तरमें हिमालय दक्षिणमें मदरास पूर्वमें कलकत्ता और पश्चिममें करांचीतककी सीमा नियत करली अब वह उसके बाहर कभी नहीं जाय गा। अपना कामकाज सब सीमाके भीतर ही करेगा

अतएव सीमा के बाहिर वह किसी प्रकारका पाप सँपादन नहींकर सकता उसके लोभ आशा पाप सब नष्टहो जातेहैं सदा धर्मकी वृद्धिहो होती रहतीहै।

११४। अनर्थदंडविरति नाम का गुणव्रत किसे कहते हैं—

जिन्हें करनेसेकुछ प्रयोजन तो सिद्ध न हो और पाप लगही जावे उन्हें अनर्थदंड कहतेहैं। अनर्थदंडोंका त्यागकर देना ही अनर्थदंडविरतिनाम का गुणव्रत कहलाताहै। अनर्थदँड पांच प्रकारके हैं। पापोपदेश, हिंसादान, प्रमादचर्या, दुःश्रुति और अपध्यान १जिससे किसीजीवको क्लेश पहुंचे अथवा हिंसा झूठ चोरीआदि पापोंकी वृद्धिहो ऐसा उपदेशदेना अथवाऐसी कथा कहनी पापोपदेश कहलाता है। २ जिनके साथ लेनदेनका कोईव्यवहार नहींहै कोई संबंधनहींहैं उन्हें हिंसाके साधनभूत तलबारबरछी आदिहिंसा केउपकरण देनाहिंसा दानकहा जाताहै। ३ विनाप्रयोजन पृथिवीखोदना पानीफैलाना छोटे२ वृक्षतोड़ना इधरउधर घूमनाआदि प्रमादचर्या कहलाताहै। ४ काम क्रोध मोह लोभ रागद्वेश आदि

अशुभ परिणामोंको उत्पन्न करनेवाले शास्त्रों को सुनना दुःश्रुति अनर्थदंड कहलाताहै। ५ यह बीमारहो जाय, वह मर जाय,इसकी चोरीहो जाय इत्यादि अन्यकेबुरे चिंतवन करनेको अपध्यानकहतेहैं। इन उपर्युक्त पांचों अनर्थदंडोंका त्याग करना ही अनर्थदंड विरति नामका दूसरा गुणव्रत कहलाता है।

११५। भोगोपभोग परिमाण गुणव्रत क्या है–इन्द्रियोंकोनिग्रह करनेकेलिये भोजन पान आदि भोग करने के पदार्थों का तथा वस्त्र आभूषण स्त्री आदि उपभोग करनेके पदार्थोंका परिमाण करना भोगोपभोग संख्यानव्रत कहलाताहै। यहपरिमाण दोप्रकारसेकिया जाताहै यमरूपसे तथा नियमरूपसे। किसी वस्तु का जन्मपर्यंत त्यागकरदेना यम कहलाताहै और किसी वस्तुको वर्ष दो वर्ष आदि नियत समयतक त्याग देना अथवा किसी वस्तुको वर्ष दो वर्षआदि नियत समयतक खाने पहरने आदिका संकल्पकर आगे के लिये सर्वथा त्याग देनेका संकल्प करना नियम कहाजाताहै। भोजनपान आदि जो एकबार भोगनेमें आवें वे भोग करनेकी सामग्री कहलाती

हैं और वस्त्र आभूषण आदि पदार्थ जो बार२ भोग नेमें आवें उन्हें उपभोग कहतेहैं। कंदमूलादि ऐसे अभक्ष्य और सर्वथा त्याज्य पदार्थोंका कि जिन के सेवन करनेसे हिंसा विशेष होती है और प्रय जन तुच्छ सिद्ध होताहो, यमरूप त्याग किया जाताहै और भोजन पान वस्त्राभूषणादि सेव्य पदार्थों का नियम किया जाता है।

११६। भोगोपभोग परिमाण व्रतधारण करनेसे क्यालाभ होताहै।

जो इंद्रियांधर्मरूपी रत्नको चुरानेवाली हैं वेसब वशहो जातीहैं,मनवश होजाताहै,इंद्रियां और मनवश हो जानेसे अनेकपाप होनेसे रुकजाते हैं,अनेकप्रकारकी संप्रदायें प्राप्तहो जातीहैं औरधर्मको बढ़ानेवाले तथा पापोंकोनाश करनेवाले जितेंद्रियादिक अनेकगुणप्रगट हो जाते हैं।

११७। जो मनुष्य भोगोपभोग वस्तुओंका परिमाण नहीं करतेहैं वे कैसे हैं-वे पशुओंके समान हैं।जैसे पशुओंके भक्ष्यअभक्ष्यका कुछविचार नहींहै जोसामने आताहै वहीवे खाजातेहैं।ठीकइसी प्रकारसे भोगोपभोग वस्तुओंका परिमाण न करनेवाले लोग हैं। इनके भी भक्ष्य अभक्ष्यका कुछ विचार नहीं रहता है।

११८। अभक्ष्य कौन २ हैं-कंदमूल सब अभक्ष्य हैं। जिन फलोंमें व जिसशाकमें कोड़ेपगड़े हों अथवा कीड़े के होने कीसंभावना हो वेसब फलऔर शाक अभक्ष्य हैं। फूलसब अभक्ष्यहैं। मक्खन नवनीत भीअभक्ष्य है पूड़ी आदि पक्कान्न बननेसे चौबीसघंटे बाद अभक्ष्यहो होजाते हैंइनके सिवाय जो प्रकृतिविरुद्ध अथवाहानि पहुंचानेवाले पदार्थहैं तथाजो शास्त्रविरुद्ध पदार्थहैंवे सब अभक्ष्य हैं।

११९। कंदमूलोंके भक्षण करनेमें क्या दोष है-तिलमात्र भी कंदमूलखानेसे अनंतजीवों काघात होताहै उनमेंअनंत निगोदिया जीव होतेहैं इसलिये कंदमूल खानेसे नरक ले जाने वाला पाप उत्पन्न होताहै।

१२०। कंदमूल में अनंत जीव हैं यह कैसे जाना जाता है-कंदमूलके टुकड़े २ कर बोदिये जांय तबभी वेउपज आते हैं। इससे स्पष्टजाना जाताहै किउनमें अनंतजीव हैं गेहूंजव मटरआदि टुकड़े करके बोदेने से उत्पन्ननहीं होते क्योंकि उनकेएक दानेमें एकही जीवकी शक्तिहै। यदि कंदमूलमें एकही जीवहोता तोवे साबूत बोनेसे हीउत्पन्न होते टुकड़े२ कर बोदेनेसे कभीउत्पन्न नहींहोते। इसलिये जाना जाताहैं कि उनमें अनंत जीवहैं।

१२१। शिक्षाव्रत कौन२ हैं—देशावकाशिक, सामायिक, प्रोषधोपवास और अतिथिसंविभाग।

१२२। देशाव काशिक किसे कहते हैं-जन्मपर्यंत दिशाओं कोमर्यादा करपहिले जोदिग्विरतिनामका व्रतग्रहण कियाथा उसकेभीतर२ दोघंटे केलिये वाएकदिनदो दिनकेलियेअथवा महीनेदोमहीनेकेलियेगांवघरखेत आदिकीसीमानियतकरकेउसकेभीतर हीरहना देशा वकाशिकव्रत कहलाताहै।जैसे.जिस पुरुषने जन्मभर केलिये उत्तरमें हिमालय दक्षिणमें मद्रास पश्चिममें करांचीऔर पूर्वमें कलकत्ताकी सीमानियत करली वहयदि किसीएकदिनजिनालयमेंही रहनेकी प्रतिज्ञा करले अथवा महीने,दोमहीने,चारमहीने तक किसी एकशहरमें रहनेकी प्रतिज्ञा करले या आसपासके दो चार गावोंमें आनेजाने कीप्रतिज्ञा करलेतो उसके उस नियतसमय तक देशावकाशिक व्रत गिना जाताहै। नियत सीमाकेबाहर उसके द्वारा किसीप्रकार काकोई भी पापउत्पन्न नहींहोसक्ता। इस लिये यहव्रत पाप कानाशकरने वालाहै और पुन्य को बढ़ाने वाला है।

१२३। देशावकाशिक व्रत से क्या लाभ होता है-लोभ दूरहो

जाताहै,हिंसादिक पापोंका निरोधहो जाताहै,संतोषा दिक अनेकगुण औरअनेक कल्याण प्रगट होजाते हैं तथा सद्धर्म की प्राप्ति होती है।

१२४। सामायिक किसे कहते हैं-संपूर्ण प्राणियोंमेंसमता रूपपरिणाम रखनातथा सुखदुखमें शत्रुमित्रमें,निंदा स्तुतिमें, तृणकंचनमें, पाषाणरत्नमें और केसर कीचड़में तथा इसी प्रकारके और औरभी विरुद्ध अविरुद्ध पदार्थोंमें समतारूप परिणाम रखना औरसंयम धारण करनेमें सदा शुभरूप भावनारखना सामायिक कहलाताहै। अभिप्राय यहहै कि ब्रह्मचारीतथा मुनियोंका प्रातःकाल मध्याह्न और सायंकाल ऐसेतीनोंसमयतथा गृहस्थोंकाप्रातःकालऔर सायंकाल इन दोनोंसमय किसीएकांतस्थानमें अथवा एकांत चैत्यालयादिक में नियतसमय तकहिंसादिक पापोंका त्यागकरना तथा संपूर्णपदार्थोंमें समतारूप परिणामरखना सामायिक कहा जाता है।

१२५। सामायिक करने को क्या लाभ है--सामायिक करने सेसंवर होताहै निर्जराहोतीहै उत्तमध्यान औरधर्मकी प्राप्तिहोतो है इसके सिवाय परलोक में ग्रैवेयकादि

त्तमउ स्वर्ग सुखों की प्राप्ति होती है।

१२६। प्रोषधोपवास कब और कैसे किया जाता है-एकमही नेमें दोअष्टमी औरदो चतुर्दशी ऐसे चारपर्व होतेहैं। प्रत्येकपर्व मेंचारों प्रकारके आहार त्याग करनातथा भोजनव्यापार आदिचरक सबकाम छोड़कर चैत्याल आदि एकांतस्थानमेंधर्मध्यानपूर्वकरहनाप्रोषधोपवास कहलाता है। एकाशनको (एकबार भोजनकरने को) प्रोषध और आहार त्याग करने को उपवास कहते हैं जिसे अष्टमीको प्रोषधोपवास करना है वह सप्तमीको मध्याह्न एकाशन करके उसी समयसे आहारपानी आरम्भादिक त्याग करदेगा। दिनके शेष दो पहर धर्म ध्यानपूर्वक व्यतीतकरेगा। स्वाध्याय और बारहभावनाओंका। चिंतवनकर रात्रिव्यतीत करेगा। यदि निद्रा अधिक सतावेगी तो मध्यरात्रि के पीछे किसी एकांत स्थानमें शुद्धसंस्तर विछाकर स्वल्पनिद्रा लेगा। प्रातःकालहो उठकर सामायिक आदिनित्य क्रियायें करके आचेत्तद्रव्यसे श्रीजिनदेवकीपूजा करेगा फिरदिनका शेष भागस्वाध्यायादिकसे व्यतीतकरराविकापूर्वरात्रि केसमान व्यतीत करेगा नवमीको प्रातःकाल हीउठ

करनित्य [illegible] यायें औरश्रीजिनेन्द्रकी [illegible] जाकरकमध्याह्न में एकाशनकरेगा।इसके वाद [illegible] रआरम्भादिकमें प्रवृत होजायगा। इस प्रकार सोलहपहर संयम [illegible] वकरहने से एकप्रोषधोपवास होताहै,यहो तब यदि बारहपहर काकियाजाय तोमध्यम उपवास कहलाताहै। सप्तमी को रात्रिकेचारपहर, अष्टमीके दिनके चारपहरऔर रातकेचारपहर ऐसे बारहपहरगिने जाते हैं। यदि अष्टमीकेदिन केवलउष्णजल ग्रहणकरलिया जाय तोयह व्रत अनुपवास कहलाताहै। इसी अनुपवास के आचाम्ल एकाशन आदि अनेकभेद हैं थोड़ासा भात मिलाकर माडपीने को आचाम्ल कहते हैं। और एकवार भोजन करनेको एकाशन कहते हैं।इन सबमें आरम्भादिकका त्यागअवश्य होना चाहिये।

१२७। अष्टमीके दिन उपवास करनेसे क्या लाभ है-अष्टकर्मों कानाश होकर अष्टम पृथिवीकी संपदा अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति होती है।

१२८। चतुर्दशीके दिन उपवास करनेसे क्या लाभ है- —चौदह गुण स्थानोंकी प्राप्तिऔर सिद्धवधूका समागम होना आदि।

१२९। अष्टमी चतुर्दशी आदि पर्वके दिनोंमें भोजन करनेसे क्या हानि होती है-भवभवमें दरिद्रता, अनेक रोगों कीउत्पत्ति और नरकादिक दुर्गति।

१३०। दानके कितने भेद हैं—चार हैं आहारदान, औषध दान, ज्ञानदान और वसतिका दान।

१३१। आहारदान करनेसे क्या फल मिलता है—यदि मिथ्या दृष्टि भद्रपुरुष आहारदानकरैं तो उन्हेंप्रथम तोउत्तम भोग भूमिके सुखप्राप्तहोते हैं जहां वे कल्पव्रक्षों के द्वाराअनेक प्रकारके सुखभोगते रहतेहैं औरतीनपल्य कीउनकी आयुहोतीहै। वहांकी आयुसमाप्तकर नियम सेवे देव होतेहैं। यदिदान करनेवाले सम्यग्दृष्टिहों तो उन्हेंसोलहवें स्वर्गपर्यंत ऐसे२ सुख मिलते हैं जो वर्णनातीत हैं।

१३२। औषधदान से क्या लाभ होता है—इसभवमेंकिसी प्रकार के रोग क्लेशादि नहीं पाते, तथा परभव में स्वर्गादिक का सुन्दर-दिव्य शरीर प्राप्त होता है।

१३३। शास्त्रदान से क्या लाभ होता है—संपूर्ण आगमका ज्ञान हो जाता है तथा श्रुतज्ञान और केवलज्ञान की प्राप्ति हो जाती है।

१३४। मुनियोंके लिये बसतिकादान देनेसे क्या फल मिलता है- जो वसतिकादान देतेहैं उन्हेंस्वर्ग लोकमें विमानोंके भीतर नानाप्रकार केरत्नोंके बने हुयेअनेक प्रासाद(बड़े-२ महल) प्राप्त होते हैं। वसति का=धर्मशाला

१३५। किसप्रकार दानदेने से महत् पुण्यकी प्राप्तिहोती है- भक्तिपूर्वकदान देनेसे। वहभक्ति नौप्रकार है। प्रतिग्रह,उच्च स्थान,पादप्रक्षालन, पूजन,प्रणाम,मनशुद्धि, वचन शुद्धि,कायशुद्धिऔरआहार शुद्धि मुनियोंकेआहार करनेकासमय प्रायनियतहै और वह प्रायनौसे ग्यारहऔर एकसे चारबजे तकहै। मुनिलोग आहारलेनेके लिये प्रायःइसीसमय विहारकिया करतेहैं। जिसगृहस्थको आहारदेना होताहै वहइसी समयमुनिको प्रतीक्षा करताहुता दरवाजेपर खड़ारहताहै।जबमुनिदरवाजे केसामने आतेहैं तबवहगृहस्थ "प्रसीदअत्रातिष्ट२ शुद्ध माहार वर्त्तते"अर्थात् "आहारपानीशुद्धहै कृपाकरयहांहीविराजिये"यहवाक्य कहताहैइसी प्रार्थनाको प्रतिग्रह कहतेहैं।जबमुनि उसकीप्रार्थना स्वीकारकरउसके घर आतेहैं तबवह उन्हेंकिसी ऊंचेकाष्टासन पर विराजमान करताहै।इसेउच्चस्थान कहतेहैं। तदनंतर

वहगृहस्थ उनके चरणकमलोंका प्रक्षालनकरताहै वह पादप्रक्षालन कहलाताहै । पश्चात् वहउनकी पूजाकरताहै, उन्हेंप्रणामकरताहै औरमन वचनकाय कोशुद्धतापूर्वक शुद्धआहार देताहै। यही नवधाभक्ति कहलाती है ।

१३६। दानदेंने वालेमें कौन२ गुण होनेचाहिये--श्रद्धा संतोष निर्लोभता भक्ति विज्ञान दया और क्षमा ये सात गुण होने चाहिये ।

१३७। कौनसे सज्जनदान करनेकेलिये उत्तमपात्र कहेजाते हैं--ऐसे मुनींद्रही उत्तमपात्रगिनेजातेहैं जोरत्न त्रयसेविभूषित हैं, जितेंद्रियहै घोर तपस्वी औरसंसार मात्र कोहित करनेवालेहैं, जोयोग धारण करनेमेंतथा मोक्षमार्गमें सदा लीन रहतेहैं, जो आहारादिकके मिलनेनमिलने न मिलनेमें सदृशहो संतुष्टरहतेहैं औरजोदान देनेवालों को संसार समुद्रसे पारकर देते हैं ।

१३८। मध्यम पात्रकौनहैं--सम्यग्दर्शन औरसम्यगज्ञांन कोधारणकरनेवाले तथामूलगुण अणुव्रतऔर ग्यारह प्रतिमाओंका पालन करनेवाले सुशील श्रावक ही मध्यमपात्र गिने जाते हैं ।

१३९। जघन्यपात्र कौन कहे जाते हैं-केवल सम्यग्दर्शनका धारण कर ने वाले श्रीजिनेंद्रदेव और निर्ग्रंथगुरु के भक्तजन।

१४०। कुपात्र कौन है-जो तपव्रत सहित संयमी तो हैं परन्तु सम्यग्दर्शनसे रहित हैं ऐसे द्रिव्यलिंगीकुपात्र गिने जाते हैं।

१४१। अपात्र किन्हें कहते हैं-जो सम्यग्दर्शन व्रत तप आदि सबसे रहित हैं, कुशील हैं, धर्मरहित हैं, निरंतर पापकर्मों को कर ने वाले हैं ऐसे जगतनिंद्य अपात्र कहे जाते हैं।

१४२। कुपात्र कोदान करनेसे क्याफल मिलताहै-कुपात्र को दान करनेवाले भोग भूमिमें तिर्यंच होतेहैं अथवा कुभोग भूमि में कुत्सित मनुष्य होते हैं।

१४३। म्लेच्छादिक नीचमनुष्यों केघरजो धन धान्यादिक संपदा होती है वह किस पुन्य सेहोती है—कुपात्रको दानकरने से, परन्तुवह संपदाअंतमें नरकले जानेवाली होती है।

१४४। किसीर हाथी घोड़ेआदि जानवरों को उत्तम भोजन मिला करताहै वहकिस पुन्यसे कुपात्र को दान करने से।

१४५। अपात्रको दानकरना क्यों बुरा है-अपात्रकेसाथसंबंध

होनेसे अनेक पाप बनपड़ते हैं धन धान्यादिक सबनष्ट होजाते हैं और चिरकाल तक अनेक दुर्गतियों में परिभ्रमण करना पड़ता है।

१४६। सुपात्रदान और अपात्रदानके फलमें जो अंतर पड़ता है उसका क्या उदाहरण है—स्वाति नक्षत्रमें जो वर्षा होती है यदि उसका जल सीपमें पड़े तो वह मोती हो जाताहै। यदि वही जल सर्पके मुखमें पड़े तो विष होजाताहै। अथवा अच्छी भूमिपर बोये हुए वृक्षपर अच्छे फललगतेहैं औरबुरीभूमिपर बोएहुये वृक्षपर बुरे फल लगतेहैं ठीक इसी प्रकार सुपात्रको देनेसे अच्छा फल मिलता है, और अपात्र कोदेनेसे बुरा फल मिलता है।

१४७। कुदान कौन हैं-कन्या, हाथी, सुवर्ण, घोड़ा, गाय, दासी, तिल, रथ, पृथिवीऔर घर इनका दानदेना दश कुदानकहे जातेहैं। कुदानदेना बहुतबुराहै। इनसेप्रायः हिंसाही बढ़तीहै तथासँसार रूप समुद्रमें निरन्तर परिभ्रमण करना पड़ता है।

१४८। किस पापी ने इन कुदानों का उपदेश दिया था—भूतशर्मा ब्राह्मणने और इसका उपदेशभी केवल मूर्ख

लोगों को ठगने के लिये दिया गयो था।

१४९। इससे उसे क्या फलमिला-इससे वह सातवेंनरक गया, और वहां से निकलकरभी उसे अनंतसंसार परिभ्रमण करना पड़ेगा।

१५०। हे भगवन् धन किस काम में लगाना चाहिये-केवल धर्म वृद्धि के लिये सात सुक्षेत्रों में।

१५१। वे कौन कौनसे सात क्षेत्र (स्थान) हैं-१ चैत्यालय २ अरहंतदेव की प्रतिमा ३ चार प्रकार का संघ ४ मुनिसमूह ५ शास्त्रभंडार ६ जिनपूजा और ७ जिन प्रतिष्ठा ये सात क्षेत्र हैं। इनमें दान करने से अतिशय पुण्य की वृद्धि होती है।

१५२। जिनालय निर्माण कराने से कैसा पुण्य होता है— प्रत्येक जिनालयमें पुण्योपार्जनकेलिये अनेक भव्य जन आतेहैं उनमेंसेकोई स्तुति करताहै कोई प्रणाम करताहै कोई भक्ति ही करताहै कोई अभिषेक करता है। कोई भगवान की शांतमुद्रा ही देखता है। कोईछत्र कोईचमर और कोईपूजनकी सामग्री लाताहै। कोई भजन गाताहै कोई नृत्य करता है कोई स्वाध्याय करताहै। कोई२ एकांतमें बैठकर

बारह भावनाओंका चिंतवनही करतेहैं। कोई शास्त्र बांचताहै कोई सुनताहै। कोई स्वाध्याय करतेहैं। कहाँ तक कहाजाय जिनालयकेहोनेसे अनेक भव्य जन प्रतिदिन पुण्योपार्जन करते हैं।

१५३। जिनालय निर्माण कराने से जो पुण्य होता है वह कितने दिन ठहरता है—एक कोड़ाकोड़ी सागर तक।

१५४। जिनालय निर्माण करानेवालोंको कौनसीगति प्राप्तहोती है- जैसे शिलावट ज्यों२ जिनालय का शिखर बनाता जाता है त्यों त्यों ऊंचा चढ़ता जाता है। उसीप्रकार जिनालय निर्माण करानेवालाभी स्वर्गादिकों के सुख तथा तीर्थंकरोंके अद्भुत सुख भोगतो हुवा मोक्षपर्यंत जाता है।

१५५। कौनसा कार्य करनेसे अनेकजनों का उपकार होता है- जिनालय निर्माण कराने से।

१५६। अपने घर प्रतिमा विराजमान करना कैसा है- अति उत्तम और पुण्यप्रद है। क्यों कि घर में प्रतिमा विराजमान होने से प्रतिदिन पूजा, स्तुति, ध्यान प्रणाम, अभिषेक आदि करनेका सौभाग्य प्राप्तहोता है। प्रतिदिन अनेकप्रकारसे धर्मध्यान हो सक्ता है।

१५७। जिस घर में प्रतिमा विराजमान नहीं है वह कैसा है—वह घर अतिशय निंद्य और स्मशानके समान निरंतर पाप उत्पन्न करनेवालाहै। क्योंकि घरमें नित्य हिंसादिक पापहोते हैं यदि पुण्योपार्जन का कोई साधन नहो तोवह घरअवश्य स्मशानके समानहै।

१५८। श्रावकों का कुल किस उपायसे सदा बढ़ता हुआ कायम रह सकता है—जिनबिंबादिके स्थापन करनेसे ही उन का कुल प्रसिद्ध और चिरजीवी रह सकता है।

१५९। जिस घरमें प्रतिमा नहीं है उसमें रहनेवाले मनुष्य कैसे हो जाते हैं—जिन धर्मसे परान्मुख मिथ्यादृष्टि और अतिशय दुःखी।

१६०। महायज्ञ किसे कहते हैं-मुनि अर्जिका श्रावक श्राविका आदि सबलोग मिलकरबड़ी भक्ति विभूति और बड़े उत्सवके साथ श्री जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमा बनवाकर उसकी जोप्रतिष्टा करते हैं वही महायज्ञ कहलाता है। यह महायज्ञ अतिशय पुण्यप्रद है औरकेवल धर्मवृद्धिके लिये ही किया जाता है।

१६१। प्रतिष्ठा कराने से क्या लाभ होता है-जैन धर्म की प्रसिद्धि और वृद्धि होती है। लोगों पर जैनमतका

अच्छा प्रभाव पड़ता हैं। अनेक मिथ्यादृष्टियों को जिनधर्म की श्रद्धा हो जातीहै। अनेक सज्जनोंका उपकार होता है, धनधान्यादिकको प्राप्ति होतीहै। प्रतिमा की स्थापना हो जाती है तथा प्रतिष्ठा कराने वाले की संसार में कीर्ति फैल जाती है।

१६२। प्रतिष्ठा कराने वाले सम्यग्दृष्टियों को कितना पुण्य होताहै
वह इतना पुण्य होता है कि जिस से यह तीनों जगत् क्षुब्ध होजायतथा श्रीजिनेंद्रदेवके होनेवाली समवसरणादिक विभूति मिल सके।

१६३ नित्ययज्ञ किसे कहते हैं-अनेक दयालु और बुद्धिमान जन प्रतिदिन जिनालयमें आकर अपनी२ शक्ति के अनुसार जल, चंदन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप धूप औरफल इन अष्टद्रव्योंसे बड़ी भक्तिपूर्वक जो श्री जिनेंद्रदेवकी पूजा करतेहैं वही नित्ययज्ञ कहलाता है। यह नित्ययज्ञ इंद्र चक्रवर्ती आदि की विभूतिदेनेवालाहै और कल्याणार्थही किया जाताहै।

१६४। श्री जिनेन्द्रदेव की पूजा करने से क्या लाभ होता है—
उत्तम २ सुख और संपदायें प्राप्त होती हैं। संसार के संपूर्ण अनिष्ट नष्टहो जातेहैं, विघ्न और दुखसब

क्षय हो जातेहैं, पाप सब दूर भाग जातेहैं, परम कल्याण स्वर्ग तथा मोक्ष सब सामने आ खड़ेहोते हैं और रोगक्लेश उपसर्ग आदिसब नष्टहो जातेहैं।

१६५। श्रीजिनेन्द्रदेव की प्रतिमा और उसको पूजा करना दोनों ही अचेतनहैं इनसे संपदादिककी प्राप्ति कैसेहो सकती है— जैसे कल्पवृक्ष चिंतामणि और निधि आदि अचेतन हो करभी अनेक भोगोपभोगको सामग्री देताहै उसी प्रकार श्रीजिनेंद्रदेवको प्रतिमाऔर उसको पूजनभी सज्जनोंको इसभव और परभवमें कल्याणप्रदहोतीहै।

१६६। श्रीजिनेन्द्रदेव की पूजन करना एक क्रिया है जोकि अचेतन है वह भला रोग और विघ्नों को कैसे दूर कर सकती है— जैसे मणिमंत्र और औषधादिक अचेतन होकर भीरोग और विषादिकोंको दूरकरदेते हैं उसीप्रकार श्रीजिनेंद्र देवकीपूजन भी संपूर्णरोग क्लेशदुखविघ्न औरअनिष्टादिक दूर करदेती है क्योंकिपूजनकरनेसे पुण्यहोता है और पुण्योदयसे रोगादिक सब नष्ट होजाते हैं।

१६७। किनर कार्योंमें श्रीजिनेंद्रदेवकीपूजन प्रथम करना उचितहै— जातकर्म, विद्यारम्भ, यज्ञोपवीत, विवाह आदि संपूर्ण मंगलकार्योंमेंप्रथम श्रीजिनेंद्रदेवकी पूजन ही करना

चाहिये. इसकेसिवाय अपनेअनिष्टदूरकरनेकेलिये और इष्टसिद्धिकेलिये भी यहपूजनकीजातीहै। क्योंकियह श्रीजिनेंद्रदेवकीपूजन कल्याण और सुखदेनेवालीहै।

१६८। रोग क्लेश दुख विघ्न आदि अनिष्टों की शाँति करने के लिये क्या उपाय करना चाहिये—श्रीजिनेंद्रदेवकी पूजन।

१६९। ज्ञानदान देनेसे अर्थात् दूसरों को पढ़ाने पाठशाला खोलने और पुस्तक प्रदान करने आदि से क्या लाभ है —द्वादशांग श्रुत ज्ञान की प्राप्ति तथा केवलज्ञानकी प्राप्ति ।

१७०। तीर्थंकरोंमें सबसे श्रेष्ठगुण कौन है- ज्ञान । यहज्ञान हीसंसारमें उत्तम है औरसबको पवित्रकरनेवाला है।

१७१। जो लोग पुस्तकादि प्रदानकर अथवा पाठशाला आदि खोलकर इन ज्ञानतीर्थोंका उद्धार करते हैं उन्हें क्या फल मिलता है- ज्ञान, बुद्धि, विवेक आदि उत्तम२ गुणों की प्राप्ति होती है और अन्तमें सर्वज्ञकी विभूति प्राप्तहोती है।

१७२। संघ जो चारप्रकार कहा है वह कौन२ है— मुनि अर्जिका, श्रावक, श्राविका ।

१७२। कैसे मुनि पूज्य गिनेजाते हैं-जो रागद्वेष मोहादि अन्तरङ्गपरिग्रहसेरहितहैं वाह्यपरिग्रहकेत्यागीहैंऔर सुदृढ़ चारित्रपालनकरनेवाले हैं ऐसेगुरुही पूज्य हैं

१७३। कैसी अर्जिका वंद्य समझी जाती है-जोसम्यग्दर्शन ज्ञान और व्रतों से विभूषित है, जिसने एक साड़ी केसिवाय संपूर्ण परिग्रहोंका त्याग कर दिया है ऐसी अर्जिका ही उत्तम गिनी जाती है।

१७४। वे श्रावक कैसे होना चाहिये जिन्हें दान दिया जासके— सम्यग्दृष्टी, ज्ञानी, व्रती, और शीलवान्।

१७६। वे श्राविका कैसी होनी चाहिये जिसे दान दिया जासके- सम्यग्दर्शन, ज्ञान और व्रत सहित, शीलवती और धर्म की जानकार।

१७७। इस चतुर्विध संघ को दान देने से क्या फल होता है- स्वर्गोंके सुखदेनेवाला पुण्य होता है यहसंसारउसके यश से परिपूरित होजाता है, सदाचार की वृद्धिहोती है और भोगोपभोगकीसंपदायें स्वयंआकरप्राप्तहोती हैं

१७८। इस जैनसंघ में मिथ्यादृष्टि कौन गिने जाते हैं— वे जो व्रती तो हैं परन्तु सम्यग्दर्शन से शून्य हैं।

१७९। धनाढ्यों का कौनसा धन सफल है-जोउपर्युक्तसात सुक्षेत्रों में दिया जाता है वही धन सफल है।

१८०। यदि वह धन पृथ्वी में गाढ़ दिया जाय तब भी चोर राजा आदि अनेकजन इसके दायीदार हो जाते हैं अतएव वह कौनसी पृथ्वी है जिसमें से कोई भी इसे न लेसके-जिसनेजिनालयबन-

वाकरऔरप्रतिष्ठाकरकेबिंबस्थापनकरदिये समझोकि उसकीवहलक्ष्मी जो जिनालयप्रतिष्ठा आदिमेंलगीहै निश्चलहो गई। अबकोईकभी भी उसेनहीं लेसक्ता।

१८१। जो व्रती जीव धर्म मानकर कूआ बावड़ी आदि जलस्थान निर्माण कराते हैं उन्हें क्या फल और कैसी गति मिलती है —

कूआ बावड़ी आदि बनाना महारम्भ है इसमेंअनेक जीवोंकी हिंसा होती है जिससेमहापाप उत्पन्नहोता है और मत्स्यादिक नीचतिर्यंचगति प्राप्त होती है।

१८२। वे नीच गतिको ही जाते हैं इसका कोई उदाहरण कहो—

जैसे कूआ खोदनेवाला कूआ खोदता जाताहै और क्रमशः नीचे पहुचता जाता है इसीप्रकार कूआ खुदानेवाले पुरुष भी सप्तमनरक पर्यंत अधोगति कोही प्राप्त होते हैं क्योंकि कूआ खुदानेसे अनंत जीवोंकी हिन्सा होती है और सदा होतीरहती है।

१८३। कुक्षेत्र और कुपात्रों को धन देना चाहियें या नहीं—

नहीं, धनको किसी अंधेकूपमें (जिसमेंपानी न हो) फेंक देना अच्छा है परन्तु कुक्षेत्र और कुपात्र को देना अच्छा नहीं. क्योंकि कूपमें फेंकदेनेसे वहधन केवल नष्ट होजायगा परन्तु कुपात्रादिकों को देने

से वह नरकका कारण होगा। तथा अनेक पापोंका जनक और बहुत आरम्भका प्रवर्त्तक होगा ।

१८४। ये ऊपर कहे हुए व्रतदानादि किस पुरुष के सफल और उत्तम माने जाते हैं-अंत समयमें सल्लेखना करनेवालेके।

१८५। सल्लेखनाके कितने भेद हैं—दो भेद हैं कषाय सल्लेखना और शरीरसल्लेखना ।

१८६ कषाय सल्लेखना क्या है और किस प्रकार की जाती है—कृषकरनेको सल्लेखना कहते हैं। कषायोंको कृषकरना अर्थात् घटाना कषाय सल्लेखना कहलाती है। यों तो कषायोंकोघटानासर्वथा अच्छाहै परन्तुमरनेके समय अवश्यघटाना चाहिये। उस समय मित्र, शत्रु, कुटुम्बी जनतथाअन्य लोगोंसेमीठेऔरप्रियबचनकहकरक्षमा मांगना चाहिये तथा स्वयंरागद्वेषमोहमत्सरआदिसब छोड़करसरलपरिणामोंसेसबकोक्षमाकरदेनाचाहिये

१८७। शरीरसल्लेखना कैसेकी जातीहै-प्रथमही थोड़ाथोड़ा करकेआहारघटावे, आहारछोड़कर दूधग्रहणकरे, इसी प्रकारसे आहारपानीछोड़कर उपवासकरे। इसप्रकार धीरे२ शरीरकृषकरना शरीरसल्लेखना कही जातीहै।

१८८। समाधिमरणके लिये यह सल्लेखना कब करनी चाहिये—

जबप्राणसंकटमें आजाँय बिल्कुलमरनेकी संभावना हो ऐसेकिसीउपसर्गके आजानेपर दुर्भिक्षपड़जानेपर अथवाअसाध्य बुढ़ापेमें, व किसीअसाध्यरोगमें, सर्प काटजानेपर अथवा किसीव्रतकेभंग होजानेपरअथवा और भी किसीकारणसे मृत्युसन्निकट होनेपर धीरवीर पुरुषोंकोयह उत्तम सन्यासग्रहणकरना चाहिये। क्यों कि यहसन्यास स्वर्गकाप्रधान कारण है और परम्परा मोक्षका कारण है। अभिप्राययह है-जैसे किसी घरमें आगलगजाय तोउसघरके स्वामियोंकोउचितहै किवे प्रथमही उसघरकोआगबुझानेका प्रयत्नकरेयदिकिसी तरह उसघरकोआग न बुझासकेतो अपनीकोमतीव-स्तुयेंलेकरउसघरमेंसे निकलजाय। ठीक इसीप्रकार सन्यासमरणहै। घरकेसमान यहशरीरहै औरउसका स्वामीयह आत्मा है। जब शरीरपर कोईआपत्तिआती है तबयहआत्माअनेकउपायोंसे उसेनिवारण करताहै। यदिकिसीप्रकारवहआपत्तिनिवारणनहींहोसकतीऔर शरीर बिल्कुलनष्टहोनेकेसंमुखहोजाताहै तबयहआ-त्मा अपनेरत्नत्रयादिकगुणलेकरइसमेंसेनिकलजाता है। इसीको सन्यासमरण वा सल्लेखना कहतेहैं।

१८६। जिस किसी उपसर्गादिकमें जीने मरने दोनोंका संदेहहो उस में आहार पानीका त्याग किसप्रकार करना चाहिये-जब कभी सर्प काटले वा और कोई ऐसा उपसर्ग आजाय जिसमें जीने मरने दोनोंका संदेह हो ऐसे समयमें सन्यास भी दो प्रकार से लिया जाताहै प्रथम यह कि यदि इस उपसर्गमें मेरी मृत्यु होगई तो मेरे अहार पानीका सर्वथा त्याग है। द्वितीय-यदि मैं किसी प्रकार जी पड़ा तो पारणा ग्रहण करूंगा अथवा इतने समयतक मेरे आहार पानीका त्याग है यदि इतने समयसे आगे जीता रहा तो पारणा लेसक्ता हूं।

१६०। रोगियोंको किसप्रकार सन्यास ग्रहण करना चाहिये—दिनोंकी अथवा घंटे दो घंटे आदि समयकी संख्या नियत करके।

१६१। यदि सर्वथा मृत्यु के लक्षण प्रगट हो गये हों तो—क्रोधमोहादि अंतरङ्ग परिग्रह तथा घर स्त्री पुत्रादिक बाह्य समस्त परिग्रह छोड़कर दीक्षा ग्रहण करलेना चाहिये।

सन्यास पूर्वक मृत्यु होने से क्या लाभ है— जो चरम शरीरी हैं उन्हें मोक्ष प्राप्त होताहै। जो चरमशरीरी नहीं हैं किंतु दीक्षित हैं वे इसी सल्लेखना के प्रभावसे सर्वार्थसिद्धि तक जाते हैं और श्रावकजन इसीके प्रभाव

से सोलहमें स्वर्गतक जाकर अनेक प्रकारके अच्छे अच्छे सुखोंका अनुभव करते हैं।

१६३। तीसरी प्रतिमा कौनसी है—सामायिक। यह सामायिक शुद्ध मन बचन कायसे आदर सहित प्रातःकाल मध्याह्नकाल और सायंकाल इन तीनों समयोंमेंकिया जाता है। इसकी विधि यह है किसामायिक करनेवाला पूर्वदिशाकी ओर मुंह करकेखड़ा होकरतीनआवर्त्तऔरएकप्रणामकरे। आवर्त्तकेसमय 'ओंनमःसिद्धेभ्यः' यहमंत्र पढ़ताजाय। अनंतर दक्षिण,पश्चिमऔरउत्तरदिशाकीओर इसीप्रकार तीन तीनआवर्त्तऔरएक२ प्रणामकरे। पश्चात् खड़ेहोकर अथवा बैठकर सामायिकपाठ, ध्यान,जप,स्तोत्र,भावनाआदिसे अपनासामयिकका नियतसमय व्यतीत करअंतमेंचारोंदिशाओंकीओर एक२ प्रणामकर सामायिकसमाप्तकरे। इससामायिकका उत्कृष्ट समय छः मध्यम चार औरजघन्यदोघड़ीहै। इसपूर्णविधिसहित निरतिचार सामायिक करनेवालेके तीसरी प्रतिमा कहीजाती है।

१६४। चौथी प्रतिमा किसे कहते हैं—प्रत्येक अष्टमी और

चतुर्दशीको नियमपूर्वक निरतिचार प्रोषधोपवास कर ना चौथी प्रतिमा कहलाती है ।

१६५ । पांचवीं प्रतिमा किसे कहते हैं—संपूर्ण सचित्त वस्तुओंका त्याग करना सचित्तत्याग पांचवीं प्रतिमा कहलाती है ।

१६६ । सचित्त शब्दसे क्या अभिप्राय है-जीव के प्रदेशोंसे उत्पन्न हुई चेतनाको चित्त कहतेहैं और चित्तसहित जो वस्तु है वह सचित्त कहलाती है । जिसमें चेतना के कुछ भी अंश पाये जांय उसे सचित्त कहतेहैं

१६७ । कौन २ वस्तु सचित्त कहलाती है—तिल, जीरा, संपूर्ण जातिके अनाज और बीज, फल पत्ते, कंदमूल, तज, प्रवाल तथा संपूर्ण जातिकी वनस्पति अप्रासुक जल आदि सब सचित्त कहलाती हैं ।

१६८ । सचित्तत्याग से क्या लाभहै—चित्त दयालुहो जाता है । दयालुचित्त होनेसे सर्वोत्तम अहिंसाधर्मकी प्राप्ति होतीहै और धर्मकी प्राप्ति होनेसे स्वर्गादिकके सुख मिलतेहैं । तथा क्रमसे मोक्षकी प्राप्ति होती है ।

१६९ । सचित्त भक्षण करनेसे क्या हानि होती है-चित्त निर्दयी हो जाताहै । चित्त निर्दयी हो जानेसे बड़े२ हिंसा

दिक पाप उत्पन्न होते हैं और फिर उन पापों के के फलसे नरकादिकोंमें घोर दुःख सहने पड़तेहैं।

२००। छठी प्रतिमाका क्या स्वरूप है-रात्रिमें चारों प्रकारके आहारका त्याग करना तथा दिनमें मैथुनमात्रका त्याग करना सो छठो रात्रिभोजनत्यागप्रतिमा कहलातीहै।

२०१। रात्रिमें पानी आदि सपूर्ण आहारोंके त्याग करनेसे क्या लाभहै-एक महीनेमें पंद्रह उपवास करनेका उत्कृष्ट फल मिलता है अर्थात् यदि एक महीने रात्रि भोजन त्याग किया जाय तो उससे पंद्रह दिन उपवास करने के बरावर फल मिलता है।

२०२। रात्रिकोपानी पीने और भोजन करनेमें क्या दोषहै-रात्रि में कीड़ोंका संचार विशेष बढ़जाताहै और वे कीड़े इतने सूक्ष्म होतेहैं कि भोजनकी सामग्रीमें मिलजाने से कभी दिखाई नहीं पड़ सकते। इसलिये जो लोग रात्रि में भोजन पान करतेहैं उन्हें मांस खानेका दोप अवश्य लगताहै। क्योंकि भोजन पानकी सामग्री में मिले हुए उन कीड़ोंको वे लोग किसीप्रकार भी बचा नहीं सक्ते।

२०३। जो लोग रात्रिभोजन में सदा लंपट रहतेहैं वे दोनों लोकों में कैसे हो जातेहैं-अंधे, निर्धन, दीन, बिकलांग, कुरूपी, बुरे

नीच अकुलीन, रोगी और महा दुःखी होते हैं। यह रात्रिभोजन पाप ही ऐसा है कि इससे जन्म जन्म दुःख भोगना पड़ता है।

२०४ रात्रि भोजन करने वाले निशाचरों को क्या कहना चाहिये विना सींगके पशु। क्योंकि पशुभी आठों पहर खाते रहते हैं और वे लोग भी आठों पहर खाते रहतेहैं।

२०५। दिनमें ब्रह्मचर्य पालन करने से क्या पुण्य होताहै-जितने दिन जीवितव्य रहता है अर्थात् जितने दिन, दिनमें ब्रह्मचर्य पालन किया जाता है उनके आधे दिन महाव्रत पालन करने के समान दिनमें ब्रह्मचर्य पालन करने वालों को पुण्य होता है।

२०६। कुरागियों को दिनमें मैथुन करनेसे कौनसा पाप होताहै-दिनमें मैथुन करनेसे वह पाप और ऐसा तीव्र रागहोता है जोकि सीधा नरकरूप महासागरमें पटक देताहै।

२०७। जघन्य श्रावक कौन गिने जाते हैं—जो शुद्धमनबचन कायसे इन उपर्युक्त छह प्रतिमाओं को सदा पालन करते हैं, वे स्वर्गगामी श्रावक जघन्य कहे जातेहैं।

२०८। सातवीं प्रतिमा किसे कहते हैं-जन्मपर्यंत स्त्रीमात्र का त्याग करना अर्थात् आजन्मपूर्णरीतिसे अस्खलित

ब्रह्मचर्य पालन करना सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमा कहलाती है ।

२०६ । स्त्रीप्रसंग करनेवालोंको क्या २ दोष लगतेहै—स्त्रियोंके शरीरमें अतिशयसूक्ष्म मनुष्याकार जीव होतेहै, स्त्री प्रसंगकरनेसे वेसब मरजातेहैंइसलिये स्त्रीप्रसंग करने वालोंको उनजीवोंके मारनेका महापाप लगताहै। इसकेसिवाय उनके परिणाम तीव्ररागी होजातेहैं जो कि हिंसाऔर पापके कारण होते हैं ।

२१० । स्त्रियोंके किन २ स्थानोंमें सूक्ष्मजीव उत्पन्न होतेहैं--स्तन, नाभि, योनिऔर कक्षमें दृष्टिके अगोचर, अतिशय सूक्ष्म मनुष्याकार लब्ध्यपर्याप्तक जीवसदा स्वाभाविक उत्पन्न होतेरहतेहैंजो कि स्त्रीप्रसँगकरनेसे सबमरजातेहैं।

२११ । आठवीं प्रतिमाका क्यास्वरूप है-खेती व्यापार आदि गृहसंबंधी संपूर्णकार्य तथाभोजन बनानापानीभरना झाडूदेना आदिसंपूर्ण आरंभत्याग देनाआठवीं आरंभ त्यागप्रतिमा कहलाती है ।

२१२ इसप्रतिमा केपालन करनेसे क्याकल्याण होताहै—— व्रत निर्दोषपाले जातेहैं। पापोंका आस्रव रुकजाताहै। धर्म की प्राप्ति होतीहै कर्मोंकी निर्जरा और अंत में मोक्ष

प्राप्त होता है ।

२१३। आरंभत्याग न करनेसे क्याहानि होतीहै-रात दिनअशुभकर्मोंका आस्रव होता रहताहैं व्रतसब मलिनसदोषहो जातेहैं औरसंसारमें चिरकालतक परिभ्रमण करना पड़ता है ।

४२१। नवमीप्रतिमा किसेकहते हैं-शुद्ध मन वचनकाय से बस्त्रकेबिना संपूर्ण परिग्रहोंका त्यागकर देना नवमी परिग्रहत्याग प्रतिमा कहलाती है ।

२१५। परिग्रहत्याग सेक्या लाभहै-चित्तनिराकुल औरशुद्ध होजाताहै । चित्तशुद्ध होजानेसे धर्मतथाउत्तम ध्यान कीप्राप्ति होतीहैऔर उत्तमध्यान से स्वर्ग मोक्ष की संपदायें मिलती हैं ।

२१६। परिग्रहत्याग नकरने सेक्या हानिहोती है-परिग्रह त्याग न करनेसे आर्तरौद्रादिक दुर्ध्यान होते हैं । कामक्रोध मोहादिक अंतरंग शत्रु सब प्रबल होजाते हैं। इनके प्रबलहोनेसे धर्मनष्ट होजाताहै और धर्म नष्ट होजाने सेयह जीवअतिशय दुःखी होता है ।

२१७। मध्यमश्रावक कौनकहलाते हैं-जोबड़े प्रयत्न से दर्शन प्रतिमा से लेकर परिग्रहत्यागतक नौ प्रतिमाओं का

पालन करते हैं वे गृहस्थ मध्यमश्रावक कहलाते हैं ।

२१८। दशमीप्रतिमाका क्यास्वरूप है- खेतीव्यापार भोजन पानआदि घरके आरंभोंमें तथा और भी ऐसी क्रियाओं मेंकि जिनके करनेसे हिंसादिक पाप उत्पन्न होतेहों अपनी सम्मति नहीं देना उसे दशमी अनुमतित्याग- प्रतिमा कहते हैं ।

२१९। अनुमतित्याग प्रतिमा पालन करनेवाला पुरुष किस प्रकार निर्दोष भोजन करताहै-उसेप्रासुक अन्न जहां मिल जाताहै चाहेवह उसकेघर मिले या किसी दूसरे के, वह वहीं बैठकर जीम लेता है।

२२०। सावद्य(पाप सहित)अनुमतित्याग से क्यालाभ है-अशुभ कर्मोंका सँवरऔर निर्जरा होतीहै तथास्वर्ग औरमोक्ष को देने वाले उत्तम धर्मकी प्राप्ति होती है ।

२२१। पापरूप क्रियाओंमें अनुमति(सलाह) देनेसे क्याहानि होती है-रातदिन पापास्रव होता रहताहै, जिससे दुःख रूपी समुद्रमें बार बार गोता खाने पड़ते हैं ।

अंतकी अर्थात् ग्यारहवीं प्रतिमा किसे कहतेहैं-जैसेयह सँसारी मनुष्य अनिष्ट समझकर विष छोड़देताहै उसीप्रकार जो उद्दिष्टाहारको (कहकर बनवाये हुये भोजनको)

सदोष और सावद्य समझकर छोड़देतेहैं उनके यह उत्कृष्ट उद्दिष्टत्याग ग्यारहवीं प्रतिमा कही जाती है।

२२३। ग्यारहवीं प्रतिमा धारण करनेवाला पुरुष दूसरे के घर किस प्रकार भोजन करता है-केवल भिक्षावृत्ति से प्रासुक शुद्ध और उद्दिष्टरहित भोजन करता है।

२२४ ऐसे आहार करनेसे अर्थात् केवल पांच घरोंमें जाकर भिक्षावृत्ति सेशुद्ध आहारग्रहण करनेसे उसेक्या लाभ होताहै-पांचों इन्द्रिय-रूपी शत्रु जीते जाते हैं, धर्म की प्राप्ति होती हैं; और अशुभ कर्मोंका संवर तथा निर्जरा होती है।

२२५। यदि ग्यारह प्रतिमाधारी क्षुल्लक वा ऐल्लक सदोष भोजन करेंतो उन्हेंक्या २ दोषलगें-उनका तपश्चरण करना तथा उनकी दीक्षा लेना सब व्यर्थहै क्योंकि सदोष (उद्दिष्ट या अप्रासुक) भोजनकरने से अवश्यजीव घात होताहै।

२२६। उत्कृष्ट श्रावक कौन कहलातेहैं-जो अपनी पूर्ण शक्ति सेइन उपर्युक्त ग्यारह प्रतिमाओंका पालन करते हैं वे उत्तम श्रावक गिने जाते हैं।

२२७। उत्कृष्टश्रावक कौनसेस्वर्ग तकजासकेहैं—जो उत्कृष्ट आचरण पालते हैं वे सोलहवें स्वर्गतक जातेहैं।

२२८। श्रावकधर्मसे मोक्षप्राप्त होसक्ताहै या नहीं-श्रावकधर्मसे मोक्षनहीं होसक्ता मोक्षमुनि धर्मसेही होताहै। किंतु

जो सम्यग्दृष्टी शुद्धमनवचनकायसे श्रावकधर्म पालते हैं वे थोडेही भवोंमें मुनिधर्म पालकर अवश्य सिद्ध होते हैं।

ये उपर्युक्त प्रश्नोत्तर श्रीवीरनाथ कथित श्रावक धर्मको निरूपण करनेवाले हैं। जो भव्यजन तीनों लोकों के सुखदेनेवाले इस श्रावकधर्मका पालन करते हैं वे अनुक्रमसे संसार और स्वर्गोंके उत्तम २ सुख भोगकर अंतमें अवश्य मोक्ष जाते हैं। ऐसा समझ कर भो भव्यजन! तुमभी शुद्ध मन वचन कायसे इस धर्म का पालनकरो जिससे तुम्हें भी शीघ्रमोक्ष की प्राप्तिहो।

धर्म, धर्मको निरूपण करनेवाले श्रीजिनेंद्रदेव, धर्मको पालन कर मोक्ष जानेवाले श्रीसिद्धभगवान, धर्मकास्वरूप पूछनेवाले श्रीगणधरदेव, धर्मके उपदेश देनेमें सदा तत्पर रहनेवाले श्रीआचार्य, धर्मको जानने वाले श्रीउपाध्याय, सदाधर्ममें निष्ठा रखनेवाले मुनि-जन और उत्तमक्षमादिक धर्मके लक्षणोंकी उनकेगुणों कीप्राप्तिकेलियेमें (ग्रंथकार) प्रतिदिनस्तुति करता हूं।

इति श्रीधर्मप्रश्नोत्तर महाग्रंथे श्रावकधर्मप्रश्नोत्तर वर्णनो नाम तृतीयः परिच्छेदः ॥३॥

अथ तृतीय परिच्छेदः ।

प्रश्नकरनेवाले श्रीगौतम गणधर, उत्तरदेनेवाले श्री महावीरस्वामी तथासिद्ध आचार्य उपाध्यायऔर तपस्वी जनोंको उनके गुणोंकी प्राप्तिकेलियेमैं नमस्कार करता हूं ।

अब शिष्य संसारमात्रके हितकरनेवाले आचार्य को नमस्कार करके भव्य जीवोंके हितकेलिये मोक्ष मार्ग का बोध करानेवाले प्रश्न करता है ।

२२९ । भगवन् ? मोक्षमार्ग क्या है—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यकचारित्र का मिलाप ।

२३० । सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं-चित्तमें इस प्रकारका दृढ़ विश्वास होजानाकि एककेवल अरहंत देवही भुक्ति औरमुक्तिदेनेवाला है । एकदयारूप धर्मही सबसे उत्तम और उत्कृष्ट सुख देनेवालाहै । निर्ग्रंथ (परिग्रह रहित) गुरुही तरण तारण है । इनके सिवाय संसार में न तो कोई देवहै न धर्महै और न कोई गुरु है ऐसी दृढ़ श्रद्धाको सम्यग्दर्शन कहते हैं । यह सम्य

ग्दर्शन ही जगत का हित करने वाला है ।

२३१। अरहंतदेव का स्वरूप क्या है-जो अठारह दोषोंसे रहित हो, सर्वज्ञहो, तीनों जगतोंका स्वामी अर्थात् संसार के संपूर्ण जीवोंको हित का उपदेश देनेवाला हो तथा गुणों का सागर हो वही धर्मरूपी तीर्थ को प्रगट करनेवाला अरहंतदेव है ।

२३२। वे कौन से अठारह दोष हैं जो अरहंत व में नहीं हैं— क्षुधा १तृषा२ भय३द्वेष४राग५मोह ६चिंता७ जरा८ (बुढापा)रोग९ मरण १० स्वेद ११ खेद १२ मद १३ अरति१४ विस्मय१५जन्म१६निद्रा १७ विषाद १८ ये अठारह दोष हैं। जिसने शुद्ध ध्यान से ये अठारह दोष नष्ट कर दिये हैं वही निर्दोष जगत का हित करनेवाला अरहँतदेव गिना जाता है ।

२३३। अब अरहंतदेव क्षुधारहित हैं आहार नहीं लेते तब बिना आहारके उनको शरीर बहुत दिनतक कैसे ठहर सकताहै--जबतक उनकी आयु शेष रहती है तब तक केवल नो कर्म आहारके सहारे ही उनका शरीर टिका रहता है।

२३४ नोकर्मआहार किसे कहते हैं-अरहंत भगवानजोधर्मोपदेश देतेहैं उसकेप्रतापसे प्रत्येक समयमेंउनकेशरीर

मेंपरमशुभपरमसूक्ष्मअनंतानँत पुण्यरूपऐसे परमाणु आतेहैं जो उनके शरीर को स्थिति के कारणहैं और जिनकी स्थिति एकही समय की है। उन्हीं परमा णुओं को नोकर्म आहार कहते हैं। इसी आहार से अरहंतदेव का शरीर टिका रहता है।

२३५। यदिअरहंतदेवके कवलाहारमान लियाजायतो क्याहानिहै कवलाहारके साथ२ जो२ दोषहोतेहैं वेसबमाननेपड़ेगे जैसे तीव्र रागका होना,गुणोंका नष्ट होना,तृषा,निद्रा, प्रमाद,कायरता, चिंता, दुःख अरति होना तथाज्ञान का नाश होना, अनंतचतुष्टयका अभावहोना आदि।

२३६। जो लोग निर्दोष वीतराग और अनंतसुखी अरहंतदेव में झूठमूठ ही क्षुधा तृषादिक दोषों की कल्पना करते हैं उनका क्याहाल होताहै-जोलोग ऐसा करतेहैं वे मिथ्यात्वी हैं। उन्हे अरहंतदेव की निंदा करने का घोर पाप लगता है जिसके उदयसे वे दुःखीहोकर चिरकाल तक संसार में परिभ्रमण करते रहते हैं।

२३७। अरहँतदेव के कितने गुण होते हैं-छियालीस। दिव्य और उत्तम चौतीस अतिशय, उत्कृष्ट आठ प्रातिहार्य और अनंत केवलज्ञान, अनंतदर्शन, अनंत सुख, अनं

तवीर्य ये चार अनंतचतुष्टय।

२३८। अरहंतदेव में और कौन गुण गिने जा सकते हैं- अहिंसादिक उत्तम२ चौरासीलाख गुण।

२३९। अरहंतदेव में और जो अनँत गुण हैं क्या उनकी गिनती नहीं हो सकती-जैसे समुद्र की लहरें नहीं गिनीजा सकतीं, आकाशकेतारे नहीं गिने जा सकते, न अनँतकाय आकाश और पुगद्‌ल के प्रदेश गिने जा सकते हैं। तथा मिथ्यादृष्टियोंके हृदयोंमें उत्पन्न होनेवाले संकल्प विकल्प और नदीकी वालू के कणभी नहीं गिने जाते उसी प्रकार अरहँतदेवके अनंत गुणोंकी संख्या भी नहीं हो सकती है।

२४०। अरहंतदेव वीतराग हैं फिर भला वे अपने आश्रित जनों को स्वर्गादिकों के सुख और मोक्ष कैसे दे सकतेहैं-जैसे सिद्धमंत्र निरीह अर्थात् इच्छारहित है वीतराग है तथापि वह संपूर्ण इष्टसंपदायें देताहै। उसी प्रकार अरहंत देव वीतराग हो कर भी धर्मात्मा पुरुषों को उत्तम भोगोपभोगों की सँपदा तथा धर्म अर्थ काम मोक्ष इनके देने वाले कहे जाते हैं।

२४१। हे भगवन् अरहंतदेव वीतराग होकर भी स्वर्ग मोक्षादिक

कैसे देते हैं इसका यथार्थ कारण कहिये-इसका यथार्थ कारण यह है कि अरहँत भगवान् भक्त भव्यजनों को धर्मोपदेश देते हैं और वह धर्म स्वर्ग मोक्षादिका कारण है अतएव उस धर्म को पालन करने से उन्हें स्वर्ग मोक्षादिके उत्तम सुख स्वयं प्राप्त होते हैं।

२४२। इसका कोई प्रत्यक्ष उदाहरण कहिये-सँसारमें श्रीजिनेन्द्रदेवके भक्त जितने श्रावकहैं वेसबइस के प्रत्यक्ष उदाहरणहैं। क्योंकि वेसब भोगोपभोगोंकी सँपदाओं से विभूषितहैं। सबदान धर्ममें सदा तत्परहैं। जब वे इस भव में ही दुःखी नहीं हैं सदा सुखी हैं तो वे परभव में भी दुःखी नहीं रह सकते अवश्य ही स्वर्ग मोक्ष के सुख भोगने वाले होंगे।

२४३। धर्मात्मा श्रावकजन तो नजाने कहां मिलेंगे इसलिये इस का कोई और प्रत्यक्ष उदाहरण कहिये-जोकोई साधारण मनुष्योंके आश्रय रहता है वहभी दुखी नहीं होताफिर भला श्रीजिनेंद्रदेवके आश्रय रहकर कोई दुःखी रह सकता है! अर्थात् वह कभी दुःखी नहीं हो सक्ता।

२४४। श्रीजिनेन्द्रदेव के भक्तजनोंके और कौन२ उपद्रव शांत हो जाते हैं-धर्म और सुखके संपूर्ण विघ्न शांत होजाते हैं

भय सब भाग जातेहैं राज्यसंबंधी बधबंधादिक विघ्न सब नष्ट हो जातेहैं। करोड़ों रोग, करोडोंक्लेश सब जाते रहते हैं अरहँत भगवानका ध्यान करने मात्रसे बड़े२ सर्प तथा औरभी क्रूर जीव सबशांत होजाते हैं। जो श्री जिनेन्द्रदेवके आश्रितहैं उन्हें कोई क्षुद्रदेव नहीं सता सकते न वे उनका तिरस्कार हो कर सकते हैं क्रूर ग्रह भी उन्हें कभी किसी प्रकार की पीड़ा नहीं दे सकते हैं।

२४५। श्री जिनेन्द्रदेव का यह इतना बड़ा माहात्म्य संसार में कैसे जाना जाता है-श्रीजिनेंद्रदेव के चरणकमल सेवन करनेवाले श्रावक प्रत्यक्ष देखेजातेहैं अर्थात् वे सदासुखी और निर्विघ्न निरुपद्रव देखे जाते हैं इसीसे श्रीजिनेंद्रदेव का माहात्म्य सँसारमें प्रगट होता है।

२४६। श्रीजिनेंद्रदेव की आराधना किसकिस प्रकार से कीजाती है शुद्ध मन बचनकायसे। अन्य किसीको शरण न मान कर केवल अरहँतदेव कोही शरण मानना उन्हीं के गुण समूह का चिंतवन करना ध्यान करना स्मरण करना आदि मानसिक आराधना है। उन्हीं गुणसमूह की स्तुति और जप करना वाचनिक (वचन से

होनेवाली) आराधना है। भक्ति पूर्वक यात्रा करना, प्रणाम, पूजा सेवा आदि करना कायिक आराधना कहलाती है।

२४७। श्रीअरहंतदेव को स्मरण करने मात्र से क्या फल होताहै-
मन पवित्र हो जाता है; परम पुण्य होता है और अतिशय सुख देनेवाले शुभध्यानकी प्राप्ति होतीहै।

२४८। श्रीजिनेंद्रदेवकी स्तुति और जप करनेसे क्या लाभहोताहै-
जो भगवानकी स्तुति और जप करताहै वह अंतमें ऐसा हो जाता है कि अन्य सब लोग उसकी स्तुति और जपकिया करतेंहैं स्तुति और जप करनेवाला जगत पूज्य और जगत वंद्य हो जाता है।

२४९ अरहंतदेव को प्रणाम करने से क्या फल मिलता है-
उच्चगोत्र और उत्तमसुख की प्राप्ति।

२५०। श्रीअरहंतदेवकी पूजा करनेसे किस पदकी प्राप्तिहोती है-
जगत पूज्य मोक्षपद की।

२५१। श्रीजिनेन्द्रदेव की भक्तिकरनेवालों को कौनसे अच्छे सुख मिलते हैं-उन्हें भवभवमें उत्तम भोगोपभोगों को संपूर्ण संपदायें प्राप्त होती रहती हैं।

२५३। जो श्रीजिनेंद्रदेव से द्वेष रखतेहैं उनकी कैसीदशा होतीहै-
वे सदा सुखसे अलग रहते हैं, सदा दुखी रहतेहैं

और चिरकाल तक नरक निगोदादिके दुःख सहते रहते हैं।

२५४। जो अरहँतदेव में सदा दोषों का ही चिंतवन करते रहते हैं उनकी कैसी दशा होती है-उनकी धनधान्यादिक संपदायें शीघ्र ही नष्ट हो जाती हैं उनका कुल भी अतिशीघ्र नष्ट हो जाता है तथा वे स्वयँ भी नष्ट होजाते हैं।

२५५। जिनभक्त कौन कहे जाते हैं-जो मन बचनकाय से सदा सब कामों में श्रीजिनेंद्रदेवकी ही पूजा स्तुति आदि करते हैं। कुदेवों की पूजा स्तुति कभी नहीं करते वे भव्यजन जिनभक्त कहलाते हैं।

२५६। देव कितने प्रकारके हैं-चार प्रकारके। जगतपूज्य देवाधिदेव, सुदेव, कुदेव, और अदेव।

२५७। देवाधिदेवकिन्हें कहतेहैं-धर्मरूपी तीर्थको प्रकाश करनेवाले, संसारमात्र का हित करने वाले, श्रीमान् विश्वश्रेष्ठश्रीतीर्थंकरभगवानही देवाधिदेव कहेजातेहैं।

२५७ सुदेव कौनहैं-चतुर्णिकाय देवों में जो श्रीजिनेंद्र देव के भक्तऔर सम्यग्दृष्टी इंद्रादिक देव हैं उन्हें सुदेव कहते हैं।

२५८। कुदेव कौन कहलाते हैं-चतुर्णिकायदेवों में जोदेव सम्यग्दृष्टी नहींहैं संसार में चिरकाल तक परिभ्रमण

करनेवाले मिथ्यादृष्टी हैं वे कुदेव कहलाते हैं।

२६०। अदेव कौन हैं-जो ठग और धूर्त लोगों ने केवल अज्ञानीलोगोंको ठगनेकेलिये स्थापितकर लियेहैं स्त्री वस्त्र आभूषण आयुध आदि सहितहैं। जिनमें देवत्व का कोई चिन्ह व गुण नहींपायाजाता ऐसे चंडी मुंडी ब्रह्मा विष्णु महेश गणेश आदिसब अदेव कहलाते हैं।

२६१। कुदेव और अदेवों की भक्ति करने से क्या फल मिलताहै-अनेक दुःख, दीर्घसंसारमें परिभ्रमण और भवभवमें दरिद्रता के दुःख भोगने पड़ते हैं।

२६२। जो लोग रोगक्लेशादि शांत करनेकेलिये नीच देवों की पूजा भक्ति करते हैं वे कैसे हैं-वेठीक उसी पुरुष के समान हैं जो अग्नि को तेलसे बुझाना चाहताहै अथवाजो मूर्ख चिरजीवी होनेकेलिये विष पीना चाहता है।

२६३। जो लोग विवाहादि मंगलकार्यों में नीच देवोंकी पूजा करते हैं उन्हें क्या फल मिलताहै-उनकेघर नित्य अमंगल होते रहतेहैं और अंतमें उनका वंश नाश हो जाता है।

२६३। जोलोग खेती व्यापारादि में अधिक धन धान्य होने के लिये नीच देवों की सेवा करतेहैं उन्हें क्याफल मिलताहै--उन का मूलधन भी सब नष्ट हो जाताहै तथा भवभवमें उन्हें

दरिद्रता भोगनी पड़ती है ।

२६५ । ओलोग पुत्र पौत्रादिक संतान होनेकेलिये कुदेवों की सेवा करते हैं उन्हें क्या फल मिलता है-उन्हें इसभवमें भी अनेक कष्ट उठाने पड़तेहैं और परभवमें वे सदा असंतान (संतान रहित) हो होते रहते हैं ।

२६६ । इस उपर्युक्त संपूर्ण कथनका क्या तात्पर्य है अर्थात् संपूर्ण शुभकार्यों में तथा कल्याणार्थ क्या करना चाहिये—सर्वत्र शुभकार्योंमें तथा संपूर्ण रोग क्लेशादि अनिष्टोंको शांति करने लियेएक अरहंतदेवकोही आराधना करना चाहिये ।

२६७ । कैसे धर्म का सदा सेवन करना चाहिये-जो सपूर्णप्राणियों को सदा अभय और अनंतसुखों को देनेवाला है सब धर्मोंमें उत्तमहै ऐसे अहिंसाधर्मका ही सदा सेवन करना चाहिये ।

२६८ ।यह अहिंसाधर्म किसने निरूपणकियाहै-सर्वज्ञ वीतराग देव ने और वह भी मुनि, अर्जिका, श्रावक, श्राविकाओं को मुक्ति प्राप्त होने के लिये ।

२६९ । किनर कार्यों में धर्मसेवन करना चाहिये-सुख, दुख, रोग, क्लेश और संपूर्ण आपदाओं में अथवा केवल पुण्यवृद्धिके लिये सुखी दुःखी और रोगी आदि मनु-

ब्यों को सदा धर्मसेवन करते रहना चाहिये ।

२७० । सुखी लोग किसलिये धर्म सेवन करते हैं-सुखवृद्धि के लिये तथा इसलोक और परलोकमें यथेष्ट कार्योंकी सिद्धि होनेकेलिये औरअंतमें मोक्ष मिलजानेके लिये।

२७१ । दुःखी लोग क्यों धर्म सेवन करते हैं-दुःखोंको दूरकरने और सुखोंको बढ़ानेकेलिये तथा अपना कल्याण करने और क्रमसे मोक्ष पाने के लिये ।

२७२ । रोगीलोगोंकोरोग शांत करनेके लिये अतिशय दुर्लभ और उत्तम औषधि क्या है-असाध्यरोगोंको क्षणमात्रमें अच्छा कर देनेवाली उत्तम औषधि एक धर्म ही है ।

२७३ परलोकमें जानेके लिये पाथेय (मार्गमें खानेके योग्य पदार्थ) क्या है-एक धर्म ही है क्योंकि यही एक संसारके संपूर्ण सुख और उत्तमोत्तम संपदायें देनेवाला है इस धर्मकी समता देनेवाला संसारमें और कोईहै नहीं ।

२७४ । उत्कृष्ट चितामणि क्याहै-यह धर्मही उत्कृष्ट चितामणि है मन में चिंतवन किये हुए पदार्थों को तथा स्वर्ग मोक्षादिक के सुखों को देने वाला यह धर्मही चिंतामणि के समान है ।

२७५ । मनमें संकल्पकिये हुये संपूर्ण पदार्थों को देनेवाला कल्प-

वृत्त किसे : हना चाहिये–इसी धर्म को। क्योंकि यहीधर्म सँसार की संपूर्ण लक्ष्मी और सुखों को देने वाला है। यही उपमारहित सर्वोत्तम धर्म है।

२७६। निधिकामधेनु आदि सुखदेनेवाले पदार्थ किसके संम्बधीहैं ये सब इसी अहिंसा धर्म के दास हैं। जहां धर्म है वहां ये अवश्य रहते हैं।

२७७। कैसा मानकर इस धर्मको सेवन करना चाहिये—–जैसे किसी दुर्भिक्षमें किसी रंकको कोई निधि मिल जाय तो वह उसे अतिशय दुर्लभ समझकर अपनी पूर्ण शक्ति से उसकी रक्षा करता है उसी प्रकार इसधर्म को भी अतिशय दुर्लभ समझकर अपनी पूर्ण शक्ति से इसे सेवन करना चाहिये।

२७८। मनुष्यको अपनीआयु किस प्रकार व्यतीत करना चाहिये–धर्म ध्यानपूर्वक बिना धर्म के इस मनुष्यको अपना एक क्षण भी नहीं खोना चाहिये।

२७९ : किनर पुरुषोंको रातदिन बराबर धर्मसेवन करना चाहिये बृद्धावस्थाके कारण वा किसी अन्य रागादिके कारण जिनकी इंद्रियां और वाणी आदिसब शिथिल हो गई हैं उन्हें मृत्यु अपने शिरपर सवार समझकर कुधर्म छोड़ रात दिन धर्मसेवन करना चाहिये।

२८० । कुधर्म किसे कहते हैं-मरे हुए माता पिता भाई बहिन आदि कुटुंबियोंका श्राद्ध करना, तर्पण करना, सँक्रांति और सूर्य या चन्द्रग्रहणकेदिन स्नान करना दान देना, पंचाग्नि तपना, गाय आदि पशुओं को, पीपल आदि वृक्षोंको घट आदि बर्तनोंकोपूजना, यज्ञ करना आदि सब कुधर्म कहलाते हैं।

२८१ । पुत्र पिता का श्राद्ध करता है तर्पण करता है वह क्या पिता को मिलता है? नहीं। क्योंकि पिता कुछ लेने के लिये वहां थोड़े ही आताहै वह तो जहां उसे जाना था वहीं ऊंच या नीच गति में पहुंच चुका।

२८२ । तब फिर श्राद्ध करने वालों को क्या फल मिलता है- न जानेवह कितने दिनका संचय कियाहुआ धनधान्यादिक व्यर्थ खर्चकर देताहै। इसके सिवाय वह बहुत सी भोजन सामग्री तयार करताहै और मिथ्या दृष्टियों कोभोजन करातहैइसमेंउसेघोर पापकाबंधहोताहै

२८३ । पुत्र का किया हुआ श्राद्ध तर्पणादिक पिताके पास नहीं पहुंचता इसका कोई उदाहरण कहिये-सँसारमेंयहबातहम सब लोग प्रत्यक्ष देखते हैं किपुत्र भोजन कर रहा हैपिता उसे साक्षात् देखरहाहै परंतुउसेतृप्तिनहीं होती। फिर

भला मरनेपरवह पिता पुत्रके भोजनकरलेनेसेकैसे तृप्त होसकताहै जबकिवह जीतेजीही तृप्त नहीं होसकता।

२८४। संक्रांति अथवा ग्रहणमें दान देनेसे अथवा स्नान करने से क्या फल मिलता है-अनेकबार नरकादि नीच गतियों में दुःख भोगने पड़ते है।

२८५। गाय हाथी आदि पूजने से कौनसी गति मिलती है—जोलोग गाय हाथी आदि पशुओंको पूजते हैं उन्हीं में विशेष भक्ति रखते हैं इस लिये वे मर कर गाय हाथी आदि पशु ही होते हैं।

२८६। जो लोग पीपल तुलसी आदि वृक्षों को पूजते हैं वे किस दुर्गति में जातेहैं-वे वृक्षों की सेवा करते२ उन के पाप के फल से मरकर वृक्षही होते हैं अथवा औरकिसी नीच गति में जाकर उत्पन्न होते हैं।

२८७। अपने पुत्रपौत्रादिकों के लिये जो लोग कुदेव व अदेवोंको पूजते हैं वे कैसे हो जातेहैं-जैसे रागी द्वेषी और नीच वे देव हैं, उनका पूजन करने वाले भी अनेक भवों में वैसे ही रागी द्वेषी नीच उत्पन्न होते रहते हैं।

२८८। जो लोग स्वयं कुधर्म सेवन करतेहैं अथवा दूसरों कोउसे पालन करने केलिये प्रेरणा करते हैं उन्हें कौनसी गति प्राप्त होती है-नरकादिक दुर्गति।

२८९। निर्ग्रन्थ गुरु कौन कहलाते हैं—अंतरंग और बाह्य परिग्रहसे रहित ऐसे आचार्य उपाध्याय और साधु।

२९०। आचार्य किन्हें कहते हैं–जो मुनि दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, वीर्याचार तपआचार इन पंच आचारों का स्वयं परिपालन करतेहैं और शिष्यों से इनका पालन कराते हैं। छत्तीस गुणों से विभूषित है, संपूर्ण परिग्रह से रहित हैं, महातपस्वी हैं रत्नत्रय सहित हैं दीपक के समान धर्म को प्रकाश करने वाले है वे आचार्य कहलाते हैं।

२९१। उपाध्याय कौन कहलाते हैं–जो ज्ञान और चारित्र की वृद्धि होनेकेलिये स्वयँ सदा पढ़ते रहते हैं, और शिष्यों को सदा पढाते रहते हैं। जो केवल मुक्ति लाभकेलिये ग्यारह अंग और चौदह पूर्वों को पढ़ते पढ़ाते रहते हैं, जो निरंतर तपश्चरण करने वाले रत्नत्रयसे विभूषितहैं ऐसे मुनिविशेष ही उपाध्याय कहलातेहैं इनसे भिन्नकोई उपाध्यायहो नहीं सक्ता।

२९२। साधु किन्हें कहते हैं–जो मुनि केवल मोक्ष प्राप्त होनेकेलिये किसी पर्वतकी कंदरामें अथवा अन्यकिसी निर्जनस्थानमें प्रातःकाल मध्याह्नकाल और सायंकाल

इन तीनों समयोंको एकाग्र ध्यानसे सिद्ध करतेहैं, तथा अन्य समयमेंभी जोध्यानमें लीनरहते हैं घोर तपश्चरण करतेहैं आत्मकल्याण करनेमें सदा उद्यत रहते और जो सदा दिगम्बर रहतेहैं वे साधु कहलातेहैं।

२१३। आमकल्याण करनेवालों को किसके बचन प्रमाण मानना चाहिये, किसके बचनों में बिश्वास करना चाहिये किसकी भक्ति और सेवा करना चाहिये—जो निस्पृह (वीतराग) हैं संपूर्ण पदार्थों के जानने वाले हैं, दृढ़ चारित्रसे विभूषित हैं जोसंसार रूप समुद्रसे स्वयं पार हो जातेहैं और अपने आश्रितजनोंको पार करदेतेहैं उन्हींके बचनोंमें विश्वास करनाचाहियेउन्हीकोभक्तिऔरसेवा करना चाहिये।

२१४। किन२ उत्तम गुणोंसे गुरुकी परीक्षा करना चाहिये—जितेंद्रियत्व, निर्मोहत्व उत्तमक्षमा आदि तपस्वियोंके उत्तम२ गुणोंसे, निःशंकादि सम्यक्त्वके अंगोंसे, वीतरागतासे, ईर्यासमिति आदिव्रतोंसे उनके गमन करने बातचीत करने और कथोपकथन करने आदि से उत्तम गुरु पहिचान लियेजातेहैं अर्थात् जिनमेंय उपर्युक्त गुण पाये जायं उन्हें ही गुरु समझना और मानना चाहिये।

२१५। वे गुरु सम्यग्दृष्टीहैं या नहीं यहकैसे पहिचानना चाहिये- यदि वे गुरु सदा तत्त्वचिंतन करते रहते हों, ध्यान में लीन रहतेहों, ज्ञान, प्रशम, संवेग, अनुकँपा और आस्तिक्य आदि गुणोंसे विभूषित हों तो उन्हें अवश्य सम्यग्दृष्टि समझना चाहिये। जिनमेंये वाह्य चिह्न न पाये जांय उन्हें मिथ्यादृष्टि समझना चाहिये।

२१६। यदि कोई गुरु परीक्षा में निर्गुण ठहर जांय अर्थात् उनमें जितेंद्रियत्व प्रशमता आदि गुण न पाये जाँयतो क्या करना चाहिये- उनमें मध्यस्थ परिणाम रखना चाहिये न तो उन की वंदनाहीकरनीचाहिये औरननिंदाही करना चाहिये

२१७। जो केवल भेषी हैं जिनमें गुरु के कोई गुण नहीं पाये जाते उनको वन्दना करनेसे क्या दोष होतेहैं- भेषी गुरु का नमस्कार करने मात्रसे सम्यग्दर्शन ज्ञान और व्रत आदि सब नष्ट हो जाते हैं।

२१८। सम्यग्दृष्टी भक्तजन श्रावकोंके लिये जुहारु इच्छाकार आदि करतेहैं फिरभला उन भेषी गुरुओं को नमस्कार करनेसे क्या हानिहै- श्रावकजन सम्यग्दृष्टी ज्ञानी और व्रती होते हैं इसलिये वे निजमार्ग में अर्थात् मोक्षमार्ग में अथवा जिनमार्ग में चलनेवाले कहेजाते हैं। इच्छाकार व नमस्कारादि का पात्र वही गिना जाता है जो मोक्षमार्ग में चला

जा रहा है। भेषी गुरु सम्यग्दर्शन ज्ञानव्रतसे रहित हैं न तोउनमें यतियोंके कोई गुणहैं और न श्रावकों के। अतएव वे मोक्षमार्ग से भ्रष्ट हैं। इसलिये वे कभी वंदना करने योग्य नहीं कहे जा सकते।

२६६। भेषी गुरुओं से श्रावक अच्छे हैं यह बात कैसे संभव हो सकती है-गृहस्थ श्रावकजन दान,शील,व्रत आदि अनेक गुणसहित होतेहैं। भेषी गुरुओंमेंकोई गुण नहीं पायेजाते वे निर्गंध पुष्पके समान केवल बाहरसेही शोभायमानहैंइसलियेऐसेगुरुओंसेवेश्रावकहीअच्छेहैं

३००। गुरुओंकी आराधना किसप्रकार करनी चाहिये--विनय पूर्वक भोजनदानदेकर यथायोग्य उनका आदरसत्कार उनकी आज्ञा पालन कर तथा शुद्ध मन बचनकाय से उनके गुणोंकी पूजा भक्ति नमस्कार सुश्रूषा स्तवन आदि करकेउन साधुजनोंकी सेवा करनी चाहिये औरअन्यभेषधारीकुलिंगियोंसेसदाअलगरहनाचाहिये

३०१। कुलिंगी अथवा कुगुरु कौन कहलातेहैं- जो मायावी और वस्त्र परिग्रहादि सहितहैं, इंद्रिय और परीषहों को जीत नहीं सकते,इच्छानुसार सदा भोजन पान करतेहैं और दूसरोंको ठगनाही जिनका मुख्य काम

है वे बगुलाके समान भेषधारी कुगुरु कहलाते हैं।

३०२। संसारमें अनेक मत हैं उनमेंसे सच्चे गुरु किस मतमें पाये जाते हैं-जैनमतमें। जैनमतसे अन्य जितने मत हैं उनसब में कुगुरुही पाये जाते हैं क्योंकि वे सब मोक्षमार्गसे दूर हैं।

३०३। क्या जैनमतमें भी कोई कुगुरु हैं। यदि हैं तो वे कैसे जाने जाते हैं-हैं। जो लोग स्वयं मूर्ख हैं जिन्होंने केवल अपने रागद्वेष पुष्ट करनेकेलिये किंवा अपनी इच्छा और इंद्रियोंके सुख पूर्ण करनेके लिये अनेक श्वेतांबर पीतांबर आदि मत मतांतर कल्पना किये हैं अथवा गच्छ गच्छांतर कल्पना किये हैं जो अपनी इच्छानुसार आचरण पालन करते हैं उन्हें कुगुरु ही समझना चाहिये। जो एक मूलसंघ से बाह्य हैं वे सब लोभी, याचक कुमार्गगामी और उदरार्थी कुलिंगी हैं।

३०४। इन कुलिंगियों का आश्रय लेने से अर्थात् इनको शरण लेने और सेवा सुश्रूषा आदि करने से क्या फल मिलता है-इन कुलिंगियों का आश्रय लेनेसे कुछ धर्मसेवन तो होता नहीं केवल पापका भार बढ़ता रहता है। अतएव इन कुलिंगियों के सेवन कर ने वाले संसाररूपी समुद्र में अनेकबार गोते खाते रहते हैं।

३०५। इन कुलिंगियों को सेवन करनेवाले संसार समुद्र में क्यों गोते खाते है-क्योंकि ये कुलिंगी स्वयं संसार समुद्र में गोते खाते रहते हैं। जब ये स्वयं उससे पार नहीं हो सकते तो अपने आश्रितजनों को कैसे पार कर सक्ते हैं। इसलिये ऐसे गुरु सदा त्याज्य हैं।

३०६। ऐसी गुरुओं के लिये जो ऊपर इतना कहाहै उसका क्या तात्पर्य है-तात्पर्य यही है कि जो किसी प्रकार से किसी बहाने से परिग्रह धारण करते हैं वे गुरु कभी वंद्य (बंदना के योग्य) नहीं हो सकते।

३०७ सम्यग्दर्शन की शुद्धिकेलिये और क्या२ करना चाहिये— जीव अजीव आदि तत्त्वोंमें रुचि, जिनोक्त आगममें श्रद्धा और उसके अर्थमें गाढ निश्चय रखना चाहिये।

३०८। तत्त्व आगम आदि में श्रद्धा रुचि आदि किस प्रकार करना चाहिये-जो तत्त्व जो आगम श्री जिनेन्द्रदेवने कहा हैवही सत्यहै क्योंकि श्रीजिनेंन्द्रदेव सर्वज्ञ और वीतरागहैं जोसर्वज्ञ और बीतराग होतेहैं वे कभी मिथ्या भाषण नहीं कर सकते अन्य कपिल बुद्ध आदि सर्वज्ञ वीतराग नहीं थे इसलिये उनके कहेहुए तत्त्व आगम आदि भी कभी सत्य नहीं हो सकते अतएव मुनि अर्जिका श्रावक श्राविका इन चार प्रकारके पात्रोंका

दान देनाही उत्तम दानहै। इनके सिवाय और दान उत्तम दान नहींहै। श्रीजिनेंद्रदेव की पूजन करना ही उत्तमपूजनहै, अन्य किसीकी पूजन करना उत्तम पूजन नहींहै निर्ग्रंथ गुरुओंकी सेवा करनाही उत्तम सेवा है अन्य उत्तम सेवा नहींहै। इत्यादि जोकुछ श्रीजिनेंद्रदेवने कहाहै वह सब सत्य है वह किसी प्रकार अन्यथा नहीं हो सकता। इस प्रकार तत्त्व और आगममें श्रद्धा रुचि प्रतीत आदि करनो चाहिये ऐसी गाढ श्रद्धा वा रुचि हो सम्यग्दर्शन को शुद्ध करने वाली है।

३०९। सम्यग्दृष्टी पुरुष चतुर्गतियोंमें से किन२ नीच स्थानों में उत्पन्न नहीं होते—जिन्होंने आयु का बंध नहींकियाहै ऐसे सम्यग्दृष्टी पुरुष तिर्यंच और नरकगतिमें उत्पन्न नहीं होते, नोच देवनहीं होते, नीचमनुष्य नहींहोते, कुभोग भूमि और म्लेच्छखंडादिकोंमें उत्पन्न नहीं होते और न कभी नीच कुल में ही उत्पन्न होते हैं।

३१०। तब फिरवे सम्यग्दृष्टीपुरुष किस सुगति में उत्पन्न होते हैं-सौधर्मादि उत्तम देवगतिमें अथवा तीर्थंकर चक्रवर्त्ती आदि उत्तम मनुष्यगति में ही उत्पन्न होते हैं।

३११ । देवगति में भी वे कौनसी नीचगति समझी जाती है कि जिनमें सम्यग्दृष्टी उत्पन्न नहीं होते--भवनवासी व्यंतर और ज्योतिष्क तथा कल्पवासियों में किल्विषिक, आभियोग्य, प्रकीर्णक, बाहन बननेवाले और सैनिक आदि नीचपदाधिकारी नीचदेव समझे जाते हैं।

३१२ । शुद्ध सम्यग्दृष्टी पुरुष स्वर्ग में कैसे उत्तमदेव होते हैं— अनेक महा ऋद्धियों के धारक इंद्र प्रतींद्र अथवा सामानिक जाति के देव होते हैं जिनको अन्य सब देव नमस्कार करतेहैं जो सर्वपूज्य, धर्मात्मा, मतिज्ञानी श्रुतज्ञानी,अवधिज्ञानी; अनेक विक्रिया और ऋद्धियों से विभूषित होते हैं और जो सदा दिव्य सुखरूपी समुद्र में निमग्न रहा करते हैं।

३१३ । सम्यग्दृष्टी पुरुष मनुष्यगति में कैसे मनुष्य होते हैं— प्रताप,उद्यम,धैर्य,तेज,वीर्य,यश, विद्या, विवेक आदि अनेक सद्गुणोंसे सुशोभित होते हैं, धर्म,अर्थ,काम मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों को सिद्ध करने वाले और दिव्यरूपवान होतेहैं। ससार के संपूर्ण भोगोपभोगों के पदार्थ मानो सदा उनकी सेवा ही किया करते हैं जगत के प्राणीमात्र उनकी स्तुति किया करते हैं।

वे सम्यग्दृष्टी पुरुष इन उपर्युक्त गुण सहित उच्च-कुल में धर्म की मूर्ति के समान धर्मनिष्ट तीर्थंकर आदि उत्तम पुरुष होते हैं।

३१४। सम्यग्दृष्टी पुरुष इस मनुष्यगतिमें कौन२ उत्तम पद पातेहैं-

चक्रवर्त्ती, तीर्थंकर, कामदेव, बलभद्र, विद्याधरेश आदि महाश्रेष्ठ सर्वपूज्य उत्तम पद पातेहैं। इनके सिवाय इस संसार में वे अनेक प्रकार की सुख सामग्री के स्वामी होतेहैं अनेक बड़े२ पुरुषों द्वारा वंद्य और पूज्य होतेहैं। वे कभी नीचपद नहीं पाते कभी स्त्री, नपुं-सक, गूंगे, अंधे, कुब्जे, लँगड़े, अँग उपांगरहित नहीं होते। नीचकुलमें जन्म नहीं लेते। थोड़ी आयु नहीं पाते। और न कभी दरिद्री, बुरे, कुरूपी, रोगी आदि होते हैं।

३१५। सम्यग्दृष्टी पुरुष कितने भव धारण कर मोक्ष जाते हैं—

उत्कृष्ट सम्यग्दृष्टी पुरुष दो या तीन भव धारणकर अवश्य मुक्तहो जातेहैं तथा जघन्य सम्यग्दृष्टी पुरुष रत्नत्रय और, तपश्चरण पालन करते हुये अधिकसे अधिक सात या आठ भव धारणकर अवश्य ही मोक्ष प्राप्त कर लेतेहैं। इस मध्यके दो तीन या सात आठ

भवोंमें वे मनुष्यगति के उत्तम सुखों का तथा देव गति के सर्वार्थ सिद्धि तक के उत्तम और अनिर्वाच्य सुखों का आस्वादन किया करते हैं।

३१६। क्या इस समय इस क्षेत्र में ऐसे भी उत्तम पुरुष हैं जो एक भवधारण कर ही मुक्त हो जाँय-हां हैं। जो अति आसन्न भव्य और रत्नत्रयतपसंयुक्त हैं वे आयु पूर्णकरके इंद्र लौकांतिक आदि उत्तमदेव होंगे। वहांके अनेक दिव्य सुखभोग आयु पूर्णकर उत्तम मनुष्य होंगे और दीक्षा लेकर घोर तपश्चरण करके अवश्यही मोक्ष जांयगे।

३१७। हीनसंहननवाले मनुष्य दीक्षा लेकर तपश्चरण करते हैं उन्हें क्या फल मिलता है-उत्तम संहननवालों को हजार वर्ष तपश्चरण करनेसे जोफल मिलताहै वहीफल हीन संहनन वालोंको एकवर्ष उत्तम तपश्चरण से अथवा अति कष्टपूर्वक कियेहुए थोड़ेदिन के ही तपश्चरण से प्राप्त हो जाता है।

३१८। यह ऐसा क्यों होताहै अर्थात् हीनसंहनन वालोंको थोड़े ही तपश्चरण से ऐसा उत्कृष्ट फल क्यों मिलताहै-क्योंकि हीन-संहननवाले मनुष्य बिलकुल अन्नके कीडे और चंचलचित्त हैं यह जगत सब मिथ्यात्व से भरा हुआहै

लेकर तपश्चरणकरते हैं उन्हें थोड़ेसे हीतपश्चरणसे क्यों न उत्कृष्ट फल मिलना चाहिये? अर्थात् उन्हें थोड़े ही तपश्चरणसे उत्कृष्टफल अवश्य मिलता है

३१९। भगवान् इसका कोई उदाहरण कहिये। पहिले के मनुष्य पांचसौ धनुष ऊंचे थे उन के शरीर हड्डी नसें आदिसब वज्रमय थीं आज कलके मनुष्य केवलएक धनुष ऊँचेहोतेहै उनकीशारीरिकसंपत्ति अतिशय हीन होती है फिर भी वे अपने शरीर को भारी कष्ट देकर व्रत धारण करते हैं तपश्चरण करते है फिर भला उन्हें उसका उत्तम फल क्यों न मिलना चाहिये।

३२०। इस समय अतिशय पूज्य कौन हैं जो अंगहीन और दुर्बल होकर भी अपनी शक्ति नहीं छिपाते हैं घोरतपश्चरण और संयम पालन करतेहैं। दुष्कर योग धारण करतेहैं तथाजोभावलिंगीहैं वेहीसंसारमेंधन्य हैं जगत पूज्यहैं वँदना, स्तुतिकरनेयोग्य हैं। ऐसेमहात्माओंकोही वँदनास्तुतिकरने आदिसे परंपरा मोक्षप्राप्त होसक्ता है

३२१। यह सब समझकर सज्जनों को क्या करना चाहिये— इँद्रियाँ और मोह (कषाय) ये शत्रु हैं इन शत्रुओं को नष्ट करके अपनी वह शक्ति प्रगट कर लेना चा-

हिये कि जो दीक्षा और सुतप के सर्वथा योग्य हो।

३२२। इस प्रसोर सँसार में किसका जन्म लेना सफल है—उसीका कि जिसने अपना हृदय सम्यग्दर्शनरूपी रत्न हारसे विभूषित किया है।

३२३। किसका जन्मलेना व्यर्थ है—जो मिथ्यात्वको मिथ्यात्व जानता है और सद्गुरुके वचनामृत का आस्वादन करता हुआ भी उसे नहीं छोड़ता उसका जन्म लेना बिलकुल व्यर्थ है।

३२४। धनाढ्य कौन है-वही जगतमान्य महाधनी है जिसके पास सम्यग्दृर्शनरूपी रत्नहै। क्योंकि वही तीनों जगत में पूज्य माना जाता है।

३२५। यह ऐसा क्यों होता है अर्थात् सम्यग्दृष्टी धनाढ्य माना जाता है और रुपये पैसे वाला नहीं, सो क्यों? इसका कारण यहहै कि जो रुपये पैसेवाले धनीहैं उन्हें इसी लोकमें अनेक सुख दुःख भोगने पड़तेहैं परंतु जो सम्यग्दृष्टीहैं वे तीनों जगतमें सब जगह महा सुखी रहते हैं अतएव वास्तव में सम्यग्दृष्टी ही धनढ्या हैं।

३२६। इस संसारमें कौन सज्जन पूज्य समझे जाते हैं—जिन उत्तम पुरुषोंनेमिथ्यात्वरूपीशत्रुकोसर्वथा नष्ट करदिया है जो सम्यग्दर्शनसे विभूषितहैं सुतत्वोंके विचार करने

में सदा लीन रहतेहैं वे ही सज्जन पूज्य गिने जातेहैं ।

३२७ । विकल पशु कौन कहलाते हैं—जो मिथ्यादृष्टि कभी सम्यग्दर्शनका विचार तक नहीं करते वे ही कुमार्ग में चलने वाले निंद्य पशु समझने चाहिये ।

३२८ । मोक्षरूपी राजमहलपर चढ़नेकेलिये प्रथम सीढ़ी क्या है-निर्मल सम्यग्दर्शन ।

३२९ ।सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रका मूलकारणक्याहै उत्तम सम्यग्दर्शन । यह सम्यग्दर्शन ही सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र बढ़ानेवाला और उसको प्रतिष्ठा प्रगट करने वालाहै। यहीएक इन दोनोंके उत्तम फल लगनेमें प्रधान कारण है ।

३३० । यह ऐसा क्योंहै अर्थात् सम्यग्दर्शनही इन दोनोंका प्रधान कारण क्यों हैं—क्योंकि सम्यग्दर्शनके बिना बड़े२ तपस्वियोंका भी ज्ञान मिथ्याज्ञान और चारित्र मिथ्याचारित्र कहलाताहै एक सम्यग्दर्शनके होनेसेही ज्ञान सम्यग्ज्ञान और चारित्र सम्यक्चारित्र कहलाता है अतएव सम्यग्दर्शन ही सर्वत्र प्रधान है ।

३३१ । तपश्चरण क्या सफल करना चाहिये-यदि सम्यग्दर्शन प्राप्तहो गयाहो तो उसे तपश्चरण सर्वार्थसिद्धि पर्यंतके सुख संपदा देनेवाला होता है । जो तपश्चरण सम्यग्दर्शन

रहित है वह कुतप कहलाता है । उससे इंद्र उपेंद्र आदि सत्पद कभी नहीं मिल सक्के केवल नीचदेव हो सक्के हैं ।

३३२ । क्या सम्यग्दर्शन रहित मुनिसे सम्यग्दृष्टि श्रावक (गृहस्थ) उत्तम है—अवश्य ।

३३३ । सम्यक्त्वशून्य मुनिसे सम्यग्दृष्टी श्रावक उत्तम गिना जाता है इसका क्या कारण है । इसका यही कारण है कि जो गृहस्थ सम्यग्दृष्टी है वह मोक्षमार्गमें चला जा रहा है किन्तु जो मुनि होकर भी सम्यग्दर्शनरहित है वह मोक्ष मार्गसे सर्वथा विमुख है केवल संसार की वृद्धि करनेवाला है । अतएव ऐसे मुनियोंसे सम्यग्दृष्टी गृहस्थ सर्वथा उत्तम है ।

३३४ । सम्यग्दर्शन का ऐसा प्रबल माहात्म्य जानकर पंडितों को क्या करना चाहिये- -यही कि आत्मतत्व का तथा जीवादि सप्त तत्वोंका श्रद्धान करके निःशांकितादि अष्टगुणोंसे विभूषित चन्द्रमा के समान निर्मल इस सम्यग्दर्शन को ही प्राप्त करना चाहिये ।

३३५ । हे भगवन् निःशांकितादि सम्यक्त्वके आठ अंग कौन२ हैं- निःशांकित १ निःकांक्षित २ निर्विचिकित्सित ३ अमूढदृष्टि ४ उपगूहन ५ स्थितिकरण ६ वात्सल्य ७ प्रभावना ८

३३६ । निःशांकित अंग किसे कहते हैं-सर्वज्ञ वीतराग श्रीजिनेन्द्रदेवने जो जीवादितत्व निरूपण किये हैं उनमें अने

क तत्वअतिशयसूक्ष्म हैं इंद्रियोंकेअगोचर हैंऐसेपदार्थों कोकेवलआज्ञासिद्ध माननाउनमें कोई किसीप्रकारकी शंका नहीं करना निशंकित अंग कहलाता है। इस काभी कारण यह है किसर्वज्ञ वीतराग कभी मिथ्या भाषण नहीं करसकते। जोकुछ उन्होंने निरूपण किया है वह कभी अन्यथा नहीं होसकता। इसप्रकार दृढ श्रद्धान करनेको निशंकित अंग कहते हैं।

३३७। ऐसी कौन शंकायें हैं जो प्रायः नहीं करना चाहिये—मेरे पिता पितामह (दादा) जो मिथ्यात्व धर्म पालन करते थे, वह मैंने छोड़दिया है। अतएव मेरे घरमें जो रोग क्लेशादि होरहे हैं, वेसब उन्हीं पितरलोगों ने तो नहीं किये हैं? इप्रकार की शँकायें जोप्रायः मिथ्यादृष्टियोंके करने योग्य हैं कभी नहीं करना चाहिये।

३३८। ऐसी शँकाओंके त्याग करनेमें क्या विचारकरना चाहिये-पिता पितामहआदि अपने२ कर्म बंधनोंके अनुसार चतुर्गतियोंमेंसे किसीगतिमें पहुचचुके,क्यावेलोगवहाँ बैठे२ हमलोगोंको पीड़ा देसकते हैं? अपने कर्मोंके सिवाय क्या कोई कभी किसीको सुख दुःख देसकते हैं? कभी नहीं, ऐसा विचार कर उपर्युक्त प्रकारकी

शंकायें कभी नहीं करना चाहिये ।

३३९। जो प्रसिद्ध मिथ्यात्व कुलपरंपरा से बराबर चला आरहा है वह कैसे छोड़ा जासक्ता है-जैसे लोग धन पाकर कुल परंपरासे चलीआई दरिद्रता छोड़ देते हैं तथा आरोग्यता पाकर कुलपरंपरासे आये हुए कुष्ठआदि अनेक रोगों को समाप्त करदेते हैं उसीप्रकार पंडित जन जगतके सारभूत सम्यग्दर्शनको पाकर कुलपरंपरासे आये हुये मिथ्यात्वको भी झट छोड़ देतेहैं ।

३४० । जिनोक्तपदार्थोंमें शंकाकरनेसे क्या होताहै-जहांजिनोक्तपदार्थोंमें शंका होती है वहाँ शाकिनी, डाकिनी, रोग, क्लेश, मिथ्यात्वआदि कनेकदोष आ उपस्थित होतेहैं।

३४१ निःकाँक्षित अंग किसे कहते हैं—कोई भी धर्म कार्य कर उससे धनधान्य भोग उपभोग आदि ऐहिक वा पारलौकिक कोई किसी प्रकार की इच्छा नहीं करना निःकाक्षित अंग कहलाता है ।

३४२।जोमूर्खलोग यह समझते हैं कि पार्श्वनाथ की पूजन करने से अनिष्ट नष्ट होजाते हैं शाँतिनाथ की पूजन करनेसे रोग क्लेशादि शांत होजाते हैं उन्हें क्या फल मिलता है-वे लोग अनिष्ट नष्ट होनेकेलिये अथवा रोग क्लेशादि शांत होनेके लिये रात

दिन आर्तध्यानमें रहते हैं जिससेकि महापाप होता है मिथ्यात्वकी वृद्धिहोती है सम्यक्त्वका घात होता है तथा [illegible] ादि अनेक अनिष्ट आ उपस्थित होते हैं।

३४३। निर्विचिकित्सित अंगका क्या स्वरूप है-जो शरीररत्न त्रयसे पवित्र है वह चाहे कुष्टआदि रोगोंसे नितांत मलिन क्यों न हो मलमूत्रादिसे लिप्त क्यों न हो उसे देखकर घृणा नहीं करना, केवल उसके गुणों सेप्रीति रखना, निर्विचिकित्सित अंग कहलाता है।

३४४। अमूढदृष्टि अंग किसे कहते हैं—देव धर्म गुरुमें और देवधर्मगुरु के जानकारोंमें मूढ़ता नहीं करना अर्थात् सर्वथा इन्हीको मानना। इनसे भिन्न कुदेव कुधर्म कुगुरु अथवा इनके माननेवालों की कभी प्रशंसा नहीं करना आदि अमूढदृष्टि अंग कहा जाताहै।

उपगूहन अंग किसे कहते हैं— यह जिनमार्ग अतिशय विशुद्ध है इसमें कहीं कोई लेशमात्र भी दोष नहींहै परंतु यदिकदाचित् किसी अजान रोगी वा दुर्बल मनुष्य द्वाराइसपवित्रजिनमार्गमेंकोईकिसीप्रकारकादोष लगता होतोउसे आच्छादनकरना छिपानाउपगूहनअंगकह

लाताहैइसकादूसरानामउपवृंहणभीहै।उपवृंहणका अर्थहैगुणोंकाप्रगटकरनाअथवा बढ़ाना। दोषोंको छि- पाना और गुणोंको प्रगट करनाहीइसअंगकातात्पर्यहै।

३४६। स्थितिकरण अंग किसे कहते हैं—जो कोई सम्यग्द- र्शन ज्ञान वा चारित्र आदिसे च्युत होता होउन्हेंछोड़ता हो तो उसे उसी में स्थिर करना दर्शन व्रत आदि छोड़ने नहींदेना सो स्थितिकरणअंग कहालाता है।

३४७वात्सल्यअंग क्याहै-जैसे गाह और उसके बच्चेमें स्वाभाविक प्रेम होता है उसीप्रकार सहधर्मी लोगों से केवल धर्मलाभ केलिये स्वाभाविक प्रेम रखना वात्सल्य अँग कहा जाता है।

३४८। जोलोग सहधर्मीलोगोंसे द्वेषरखते हैं उनकोक्याहानिहोतीहै- उनका सम्यग्दर्शन ज्ञान व्रत चारित्रआदिसब नष्ट होजाते हैं संसारमें उसकी अपकीर्ति फैलजाती है और पाप का बन्ध होता है।

३४९। प्रभावना अंग किसे कहते हैं—अज्ञानांधकार को दूर कर बड़ेज्ञानी विद्वानोंद्वारा जैनधर्मका माहात्म्यप्रगटक- रना अथवापूजाप्रतिष्टाव्रततपआदि धारणकरजैनधर्म को महिमा प्रगटकरना उसे प्रभावनाअंग कहते हैं।

३५०। इन आठ अंगोंसे क्या लाभ होताहै—सम्यग्दर्शन प्रबल हो जाताहै और जैसे मंत्री पुरोहित सेना आदि संपूर्ण अंग सहित राजा अपने शत्रुको शीघ्र जीत लेताहै उसी प्रकार इन अष्टांग सहित सम्यग्दर्शनके द्वारा यह जीव कर्मरूपी शत्रुकी सेनाको शीघ्र ही नष्ट कर देताहै।

३५१। अंगहीन सम्यग्दर्शन कैसा गिना जाताहै—कर्मसमूहके नष्ट करनेमें तथा सुगति देनेमें असमर्थहै जैसेमंत्रीसेना आदि अंगसे रहित राजा कुछ नहीं कर सक्ता उसीप्रकार अँगहीन सम्यग्दर्शन भी कुछ नहीं कर सक्ता।

३५२। इस सम्यग्दर्शनके पालन करनेका क्या फल मिलता है-जो पुरुष प्रयत्न पूर्वक इसके संपूर्ण दोषोंको दूरकर मनवचनकाय से इसे साँगोपांग पालन करताहै वह शीघ्रही सिद्धाधिपति हो जाता है।

३५३। हे भगवन् सम्यग्दर्शनके दोष कौन२ हैं। तीन मूढ़ता, आठमद, छह अनायतन और शंका आकांक्षा आदिआठ ये पच्चीसदोष हैं।

३५४। तीन मूढता कौनहैं। लोकमूढता, देवमूढता और शास्त्रमूढता।

३५५। लोकमूढता किसे कहते हैं। संसारके मूर्खलोक जै-

सा करतेहों उसीप्रकार स्वयं करने लगना लोकमूढ़ता कहलाती है। जैसे श्राद्ध करना तर्पण करना आदि। यह लोकमूढ़ता नरकको कारण है।

३५६। देवमूढता क्याहै—भले बुरे सब देवोंका आराधन करना देवमूढता कहलाती है।

३५७। शास्त्रमूढ़ता किसे कहतेहैं—जिनेन्द्रदेवके कहे हुए शास्त्रोंसे भिन्न महाभारत आदि शास्त्रोंको केवल आत्म कल्याण होनेके लिये पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना आदि शास्त्र मूढता है।

३५८। इन तीन मूढ़ताओंसे क्याहानि होतीहै—समय२ पर महापापका बंध होता रहता है तथा आत्माके सम्यग्दर्शन आदि गुण सब नष्ट हो जाते हैं।

३५९। मद कौन २ हैं—जाति १ कुल २ ऐश्वर्य ३ रूप ४ ज्ञान ५ तप ६ बल ७ और शिल्प ८ इनका अहंकार करना आठ मद कहलाते हैं।

३६०। जाति किसे कहते हैं—माताके वंशको जाति कहतेहैं सद्धर्म प्राप्त कराने वाली जाति उत्तम जाति गिनी जाती है।

३६१। कुल किसे कहते हैं-पिताके वंशको कुल कहते हैं।

दीक्षा योग्य कुल उत्तम कुल गिना जाताहैं।

३६२। माता पिता का सँबंध मनुष्य और तिर्यंचगतिमें होताहै अतएव इन दोनों गतियों में आज तक कितनी मातायें हो चुकीहैं—इन दोनों गतियोंमें इतनी मातायें हो चुको हैं कि उनका पिया हुआ दूध यदि इकट्ठा किया जाय तो समुद्रके जलसे भो अधिकहो जायगा अथवा उन माताओं के वियोगसे नेत्रोंसे जो आंसू गिरे थे यदि वे इकट्ठे किये जांयतो वे भी समुद्रके जलसे बहुत अधिक हो जायंगे

३६३। पिताओं की संख्या कितनी होगो—जितनी सँख्या माताओं की है नीच ऊँच दोनों कुलों में उतनी ही सँख्या पिताओं को जानना।।

३६४। इस संसारमें यह जीव कैसा २ ऐश्वर्य पा चुकाहै-करोड़ों जन्मोंमें महा ऐश्वर्यवान् राजाहो चुकाहै और करोड़ों जन्मोंमें क्षुद्र कीड़ा और दरिद्री हो चुका है।

३६५। सुन्दर रूप का मद किस प्रकार छोड़ना चाहिये—यह विचारकर कि सुंदरसे सुंदर रूप एक छोटेसे छोटे रोगके कारण क्षणभरमें अतिशय कुरूपी किसी भिक्षुकके रूप सरीखा हो जाताहै। अथवा क्षण भरमें यह शरीर हो नष्ट होजाता है फिर भला ऐसे शरीर किंवा रूप

का क्या अहंकार करना।

३६६। ज्ञानका अहंकार किसप्रकार छोड़ना चाहिये-ग्यारह अंग और चौदह पूर्वरूप श्रुतज्ञान एक महा समुद्रहै इसका पार कौन पा सक्ताहै? कौन इसेपूर्णरूपसे जानसक्ताहै इत्यादि विचारकर ज्ञानकामद सर्वथाछोड़देनाचाहिये

३६७। तपका मद किसप्रकार दूर किया जाताहै-जोअंगहीन और दुर्वलहैं वे भी वड़े२ कठिन तप करतेहैं उनके सामने मेरातप कितना है? इत्यादि विचारकर तपकामद कभी नहीं करना चाहिये?

३६८। बलका मद किसप्रकार छोड़ना चाहिये- किसी थोड़ेसे रोग क्लेशादिके होनेसे क्षणभरमें यह बल नष्टहो जाता है। फिरभी इसका अहंकार करना बिलकुल व्यर्थहै।

३६९। शिल्पअर्थात् कला कौशल्यका अहंकारकिसप्रकार छोड़ना चाहिये-संसारमें हजारोंलाखों ऐसे मनुष्यहैं, जो अनेक विज्ञान अनेक कला विद्या चित्र आदि अनेक कलाकौश-ल्य जानतेहैं उनके सामने मेराकलाकौशल्यकितनाहै इत्यादि विचारकर शिल्पसंबंधी अहंकार सब छोड़देना चाहिये।

३७०। जातिकुल आदि उर्युपक संपूर्ण मद एकसाथ किसप्रकार

छोड़ना चाहिये-संसारके संपूर्ण पदार्थोंको अनित्य और क्षणस्थायी समझकर।

३७१। मद करनेसे क्या होताहै--सम्यग्दर्शन ज्ञानव्रत विनय आदि सद्गुण सब नष्टहो जातेहैं और मिथ्यात्व अज्ञान उद्धतता आदि अवगुण सदा बढ़ते रहतेहैं।

३७२। अनायतन कौन२ हैं—धर्मके स्थानों को आयतन और और अधर्मकेस्थानोंको अनायतनकहतेहैं अनायतन छहहैं, निद्य मिथ्यादर्शन १ कुशास्त्रों से उत्पन्न हुआ मिथ्याज्ञान २ मिथ्याचारित्र ३ मिथ्यादर्शनको धारण करनेवाले मिथ्यात्वी ४ कुशास्त्रोंको पढ़ने पढानेवाले मिथ्याज्ञानी ५ और मिथ्याचारित्रको धारणकरनेवाले जटाधारी आदि भेषी गुरु ६।

३७३। ये उपर्युक्त छह अनायतन कैसेहैं—नरकके साक्षात् कारणहैं। अनेक पापोंको उत्पन्न करनेवाले और आत्माके दर्शनज्ञान आदि गुणोंको घात करनेवालेहैं।

३७४। इनके सेवन करनेसे क्याहोताहै-रत्नत्रयका नाशहोजाताहै, संसारमेंचिरकालतक परिभ्रमण करना पड़ताहै, औरअनेकप्रकारकेअनर्थदुःखआदिसहनकरनेप ़तेहैं।

३७५। शंकादिआठदोषकौन२हैं-ऊपर जो निःशंकित आदि

सम्यक्त्वके आठअँगकहे हैंउनके प्रतिकूल आठदोषहोते हैं। जैसे शंका १ आकांक्षा २ विचिकित्सा ३ मूढ़दृष्टि ४ अनुपगूहन ५ स्थित्यकरण ६ अवात्सल्य ७ और अ-प्रभावना ८। जिनोक्तपदार्थोंमेंअश्रद्धारूपसेशंकाकरना शंकादोषहै। कोईभीधर्मकार्यकरउससेऐहिकवापारलौकिकसुखसामग्रीचाहनाआकांक्षाहै।मुनिआदिकेमलिन शरीरको देखकर उससे घृणाकरना उनके गुणोंकी ओर लक्ष्य नदेनाविचिकित्साहै। कुदेव,कुधर्म,कुगुरुऔरइ-नके माननेवालोंकी स्तुति प्रशंसाआदि करनामूढ़दृष्टि है। किसी अशक्त वा बाल वृद्ध धर्मात्माके कारण इस निर्मलजिनधर्ममें यदिकोईदोष लगाहोतो उसेआच्छा-दननहीं करना प्रगटकरदेना वाधर्मात्माओंकेगुणप्रगट नहीं करना अनुपगूहन दोषहै। सम्यग्दर्शनज्ञानवाचा-रित्र आदिसेच्युतहोतेहुए किसीमनुष्यको स्थिरनहीं क-रना उसेभ्रष्टहोनेदेना,उसकेभ्रष्टहोनेसे बचानेका कोई उपायनहीं करना स्थित्यकरणदोष कहलाताहै। धर्मा-त्माभाईयोंसेकोईकिसीप्रकारका द्वेष रखना वाउनसे गाढ प्रेमनहींरखना अवात्सल्य है। धर्मात्माभाईयोंका

अज्ञान दूर नहीं करना अथवा इस पवित्र जैनधर्मका महत्व प्रगट नहीं करना अप्रभावना है।

३७६। इनउपर्युक्त पच्चीसदोषोंसे रहित सम्यग्दर्शन कैसा गिना जाता है—संसार भरके संपूर्ण कल्याण करनेवाला और मुक्तिरूपीस्त्रीको सुन्दर दर्पणके समान अतिशयप्रिय।

३७७। सम्पूर्ण धर्मोंमें उत्कृष्ट धर्म कौनसा है—संपूर्णधर्मोंमें सम्यग्दर्शनही उत्तमधर्म है। इससम्यक्त्वधर्मकेसमान तीनोंकाल और तीनोंजगतमें अन्य कोई धर्म नहीं है।

३७८। पापों में सबसे बड़ा पाप कौन है—मिथ्यात्व। इस मिथ्यात्वके समान तीनों काल और तीनों जगतमें अन्य कोई पाप नहीं हैं।

३७९। यह समझकरकि उत्तम धर्म सम्यक्त्व है और सबसेबड़ा पाप मिथ्यात्व है मनुष्यको क्या करना चाहिये—अनेक कारण सामग्री मिलाकर सम्यग्दर्शन प्राप्तकरना चाहिये। यदि वह प्राप्तहोगया होतो बड़े प्रयत्नसे उसकी रक्षाकरनी चाहियेकिसीभयसे अथवा किसी अन्य दोषके संसर्गसे उसे कभी नहीं छोड़ना चाहिये। यहांतककिप्राणनाश होने परभी सम्यक्त्वकी ही रक्षा करनी चाहिये।

३८०। सम्यग्ज्ञान किसे कहते हैं—जो परस्पर अविरुद्धस-

सभंगात्मकश्रुतज्ञान अर्थरूपसेश्रीजिनेन्द्रदेवनेकहा है, औरउसीको गणधरदेवने ग्यारहअंग,चौदहपूर्वमें पद रूपसे पृथक २ निरूपणकिया है, जोभव्य जीवोंको तीनोंजगतके संपूर्णपदार्थ दिखानेकेलिये दीपककेसमान है, प्राणीमात्रका हित करनेवाला है, वही सम्यग्ज्ञान है। यही सम्यग्ज्ञान पदार्थोंका यथार्थस्वरूप निरूपण करनेवाला है। यही एक मुक्तिका मुख्य साधन है।

३८१। इस सम्यग्ज्ञानरूप महासागरके पार होनेका क्या उपाय है- इससेपार होनेके लिये अष्टप्रकारके आचार पूर्वक बुद्धिमानोंको निरंतर अभ्यास करना ही एक नौका है इसी अभ्यासरूपी नौकाके द्वारा इस सम्यग्ज्ञान रूप महासागरका पार पाया जा सकता है।

३८२। वेआठ प्रकारके आचार कौन२ हैं—कालाध्ययन १ विनय २ उपधान ३ बहुमान ४ गुर्वाद्यनपह्नव ५ व्यंजनाचार ६ अर्थाचार ७ और उभयाचार ८। ये आठ प्रकारके आचारश्रुतज्ञानबढानेकेलियेमुख्यकारण हैं। सदा पठन पाठन करनेवालोंकोइनकापालनअवश्यकरनाचाहिये

३८३। कालाध्ययन किसे कहते हैं-सिद्धांत अथवा आगम का (किसीभी शास्त्रका) पठन पाठन पठनपाठन के

योग्य समयमेंही करना, प्रातःकाल मध्याह्नकाल सायं काल अर्द्ध रात्रि ग्रहणआदि सदोपसमयमें पठनपाठन नहीं करना कालाध्ययन आचार कहलाताहै ।

३८४। विनयाचार क्या है—आगमकी स्तुति और नमस्कारादिकर श्रुतभक्तिपूर्वक आगमका पठन पाठन करना ज्ञानका उत्तम विनयाचार कहलाताहै ।

३८५। उपधान किसे कहते हैं—गत्तावेष्टनसे सुरक्षितरख कर शास्त्रका अध्ययनकरना उपधानाचार कहलाताहै।

३८६। बहुमान आचार कौन कहलाताहै—पूजा आसन प्रणाम करके निरंतर ज्ञानका अभ्यासकरना अर्थात् आगमके पटन पाठनका अभ्यास निरंतरकरना औरवह उत्तम आसनसे पूजा प्रणामादि सत्कार पूर्वककरना बहुमान आचार कहलाताहै।

३८७। अनपन्हव किसे कहते हैं—गुरु पाठक शास्त्र आदि के गुण प्रकाश करना, उनकेगुण और नाम नहीं छिपाना अनपह्नव आचार है ।

३८८। व्यंजनाचार किसे कहते हैं-शुद्ध और व्यक्त अक्षरों से मूलमात्र (अर्थशून्य) आगम का पठन पाठन करना व्यंजनाचार कहलाता है ।

३८९। अर्थाचार क्या है—पूर्ण अर्थ सहित सिद्धांत का पठन पाठन करना अर्थाचार कहलाता है।

३९०। उभयाचार किसे कहते हैं—शुद्ध शब्द और शुद्ध अर्थ सहित सिद्धांतका पठनपाठनकरना उभयाचारकहा है

३९१। जो भव्यजीव इनआठ प्रकार के आचार पूर्वक आगमका पठन पाठन करतेहैं उन्हें क्या फल मिलता है-उन्हें संपूर्ण ज्ञान को प्राप्तिऔर संपूर्णविद्याओंकीसिद्धिहोजातीहै, वेशीघ्र हीज्ञानसागरके पारंगत होजातेहैं। उनकीबुद्धिअतिशय विशालहोजातीहै, अनेककर्मोंकासंवरऔरक्षयहोजाता है कीर्तिविवेकआदिउत्तम २ गुण उनकेसदाबढ़तेरहतेहैं

३९२। जोलोग उपर्युक्त आठप्रकार के आचारसे रहित कालशुद्धि आदिकेबिनाही सिद्धाँतका पठनपाठन करते हैं उन्हें क्याफलमिलताहै- उनका ज्ञाननष्टहोजाताहै, बुद्धिनष्टहोजातीहै, विवेकादि उत्तमगुणजातेरहतेहैं, निरंतरकर्मकाआस्रवहोतारहताहै। उनकेशुभआचारइष्टसिद्धिकभी नहींहोसकती

३९३। वह कौनसा शास्त्रहै जोयोग्य समयमें ही पढ़ना चाहिये प्रातःकालादि असमयोंमें नहीं पढ़ना चाहिये-जोशास्त्रगणधरदेवोंकेरचेहुएहैं वाग्यारहअंगदशपूर्वधारियोंकेरचेहुए हैं तथा श्रुतकेवलियोंके रचेहुएहैं वा प्रत्येक बुद्धि ऋद्धिके धारणकरनवालेयोगियोंके रचेहुएहैं वेशास्त्रयोग्यसम-

यमेंहीपढ़नेचाहिये। असमयमेंकभीनहींपढ़नेचाहिये।

३६४। इन उपर्युक्त शास्त्रोंके सिवाय साधारण आचार्योंके बनाये हुए और भी अनेक शास्त्र हैं वे असमय मेंपढ़ना चाहिये या नहीं-- जोपंचाचार अर्थअथवा आराधना आदिकोनिरूपणकरनेवालेशास्त्र है अथवा तीर्थंकरोंके पुराणहैं, जोशास्त्र चारित्र और धर्मको निरूपण करनेवाले हैं, वा कथा स्तोत्रादिके ग्रन्थ हैं अथवा उपर्युक्त शास्त्रों से भिन्न जो अनेकप्रकारके शास्त्र हैं। वे सब सदा पढ़ने योग्यहैं।

३६५। जो पुरुष सदा ज्ञानका अध्ययन करते रहते हैं उन्हें क्या फल मिलता है-उनकी पांचों इंद्रियां बश होजाती हैं मन वश होजाता है औररागद्वेष सबदूर होजातेहैं। राग द्वेष के नष्ट होजानेसे तथा इंद्रियें और मनके बश होजानेसे उन्हें धर्म्य शुक्लादि सद्ध्यान और शुभ लेश्याओंकी प्राप्ति होतीहै सद्ध्यान और शुभ लेश्या होनेसे कर्मों का क्षय होता है और कर्मक्षय होनेसे स्वर्ग मोक्षादिकी अनेक सुख संपदायें प्राप्त होती हैं।

३६६। जो घोर तपश्चरण करने वाले हैं किन्तु अज्ञानी हैं उन्हें उस तपसे क्या मिलता है-उन्हें सदा कर्मरूप सम्पदाओंकी प्राप्ति होती रहती है अर्थात् उनके सदा कर्मोंका आश्र-

व होता रहता है। कर्मोका आश्रव होने से उनका संसार (जन्ममरण) बढ़ता है और संसार बढ़ने से उन्हें सदा दुःखही भोगने पड़ते हैं।

३९७। वह ऐसा क्यों होता है अर्थात् अज्ञान पूर्वक तपश्चरण से कर्मास्रव क्यों होता है—इसकाकारणयह है कि जो अज्ञानी है वह नतो आस्रव संवरकोही जानताहै और न उन के कारणों को जानता है। हेय (छोड़ने योग्य राग द्वेषादि) और उपादेय (ग्रहणकरने योग्य उत्तमक्षमा रत्नत्रय आदि) तत्वोंको भी वह नहीं जानता। इसी लिये अज्ञानीका तपश्चरण करना व्यर्थ है।

३९८। मुनियों केलिये ऐसा उत्तम नेत्रकौनसा है जो संसार के संपूर्णपदार्थ देख सके-आगमकाज्ञान। यहशास्त्रज्ञान होतीनों जगतकेसंपूर्णतत्त्वोंकोदिखानेकेलिये दीपकके समान है

३९९। अन्धा कौन है-जो ज्ञानरूपी नेत्रसे रहित है हेय उपादेय आदि तत्त्वोंको नहीं जानता वहीसंसार परंपराको बढानेवाला अंधा है।

४००। अज्ञानी ही संसारपरंपराको बढ़ानेवाला क्योंहै-क्यों कि अज्ञानीपुरुषजिस कर्मको असंख्यातजन्मोंमें कायक्लेशादिघोर तपश्चरणकर नष्टकरेगा उसीकर्मको गुप्ति स-

मितिआदि संवरोंकेकारणोंको धारणकरनेवाला ज्ञानी पुरुष ध्यानरुपीअग्निकेद्वारा क्षणभरमेंनष्टकरसकता है अतएव कर्मोंको नष्टकर मोक्षप्राप्तकरनाज्ञानसाध्य है।

४०१। अज्ञानी पुरुषके तपोबल से कर्म क्षय क्यों नहीं होता- क्योंकिअज्ञानीपुरुषतपश्चरणसेजितनेकर्मनष्टकरता है उनसे कहीं अधिककर्म अज्ञानवशवहउपार्जनकरलेताहै

४०२। कान किसके निष्फल हैं-जिन्होंने अपने कानोंसे संसारमात्रके हित करने वाले अहिंसा धर्मको प्रगट करनेवालाश्रीजिनेन्द्रदेवका कहाहुआआगमनहीं सुना है उनके कान सर्वथाव्यर्थ हैं। केवल छिद्र समान हैं।

४०३। कान किसके सफल हैं-जो पूर्ण ज्ञान संपादनकरने केलिये निरंतर इस जिनागमका श्रवण करते हैं उन्हींके कान सफल और हित करने वाले हैं।

४०४। कौनसी जिह्वा सफल है-जो जन्म मरणकेसंताप शांत करनेकेलिये निरंतर ज्ञानरूपी अमृत पिया करती है अर्थात् जिस जिह्वासे निरंतर पठनपाठन होता रहता है वही जिह्वा सार्थक और उत्तम है।

४०५। व्यर्थ जिह्वा कौनसी है-जिसने सम्यग्ज्ञानरूपी अमृतका आस्वादन करना अर्थात् जिनागमको पठन

पाठनकरना तो छोड़ दिया है और भारत रामायण आदि मिथ्याशास्त्र तथा कुकथा आदिमें सदा लीन रहतीहै वही जिह्वा पापिनी सर्पिणीकेसमानव्यर्थ हैं।

४०६। मिथ्या शास्त्र कौनर कहलाते हैं जो धूर्त्त लोगोंनेसंसारको ठगनेकेलिये अनेक मत मतांतरोंके निरूपण करनेवाले अनेक प्रकारके स्मृति वेदआदि बनाये हैं वेसब मिथ्याशास्त्र हैं।

४०७। मिथ्याशास्त्रों के पढ़नेसे क्या फल मिलता है-, बुद्धि नष्ट होजाती है औरबुद्धि नष्ट होजाने से मूर्खता बढ जातीहै इसके सिवाय इन ग्रन्थोंके पठन पाठन मात्र से नरकादिके अनेक दुःख भोगने पड़तेहैं।

४०८। हृदय किसका सार्थक समझना चाहिये-जो लोग केवलमुक्तिकेलियेनिरंतरजिनागमकाचिन्तवनकरतेरहते हैंध्यानकरतेरहतेहैंउन्हींकाहृदयसार्थकगिनाजाताहै।

४०९। सम्यग्ज्ञान का इतना बड़ा माहात्म्य समझकर पंडितोंको क्या करना चाहिये—अज्ञान नष्ट करनेकेलिये और केवल ज्ञानकी प्राप्ति होनेकेलिये प्रयत्न पूर्वक निरंतर ज्ञानाभ्यास करना उचित है।

४१०। भगवन् चारित्र कितने प्रकारका है-तेरह प्रकारका है

पाँचमहाव्रत, पांचसमिति और तीनगुप्ति, यही तेरहप्रकारका चारित्र तीनों जगतमें मान्य और वंद्यहै स्वर्ग और मोक्ष का देनेवाला भी यही है।

४११। पांच महाव्रत कौन२ हैं-अहिन्सा महाव्रत, सत्यमहाव्रत, अचौर्यमहाव्रत, ब्रह्मचर्यव्रत, और परिग्रहत्यागमहाव्रत, अर्थात् हिंसाझूठचोरीअब्रह्म और अँतरँगबहिरंग परिग्रह इन पांचोंपापोंका मनबचनकाय तथा कृतकारितअनुमोदनासेपूर्णतयासर्वथात्यागकरदेनामहाव्रतकहलातेहैंयेमहाव्रतहीसंपूर्णअर्थोंकोसिद्धकरनेवाले हैं

४१२। इनको महाव्रत क्यों कहतेहैं-चारों गुरुषार्थोंमेंमोक्षपुरुषार्थही महान् और पूज्यहै उसकीप्राप्ति इन महाव्रतों से ही होतीहै इसलिये इनको महाव्रत कहतेहैं। अथवा तीर्थंकर चक्रवर्त्ती आदि महापुरुषोंने भी इन्हें स्वयं धारण किया था इसलिये भी ये महाव्रत कहलाते हैं। ये व्रत सबसे बड़ेहैं, पूज्यहैं, संपूर्ण अर्थोंको सिद्धकरनेवालेहैंइसलियेइनकोमहाव्रतसंज्ञासार्थकहै।

४१३। अहिंसामहाव्रत किसे कहते हैं-शुद्ध मनबचन कायसे तथा कृतकारितअनुमोदनासे गमनआगमनादि संपूर्ण

क्रियाओंसेसबजगहसदाअपनेआत्माकेसमान प्रयत्नपूर्वकषटकायकेसंपूर्णजीवोंकीरक्षाकरनाअहिंसामहाव्रत कहलाताहै। यहअहिंसामहाव्रतही अन्य संपूर्णव्रतोंका मूलकारण औरसज्जनोंके संपूर्णकल्याणकरनेवालाहै

४१४। अहिंसामहाव्रत ही अन्य संपूर्ण व्रतोंका मूलकारण क्योंहै क्योंकि श्रीजिनेंद्रदेवने गुप्ति समिति आदि अन्य संपूर्णव्रत केवल इसी अहिंसा महाव्रत को दृढ़ करने और इनको रक्षा करने के लिये निरूपण कियेहैं।

४१५। सत्यमहाव्रत किसे कहते हैं-भव्यजीवोंको केवल धर्मोपदेश देनेकेलिये सत्काहित करनेवाले, प्रिय, विरोध रहित, परिमित, साररूप, यथार्थ, किसीपदार्थ वा किसी उत्तम कथाको कहनेवाले, और परनिंदा तथा आत्म प्रशँसासेरहितबचन कहना सत्यमहाव्रत कहलाताहै।

४१६। यह सत्य महाव्रत किसके हो सक्ताहै--उसीकेजोसदा मौनधारण पूर्वक रहताहै अथवा कभी२ केवलधर्मसिद्धि के लिये विचारपूर्वक हित मित रूप थोड़ी बात चीत करता है।

४१७। जो मिथ्या भाषण करने वाले झूठा उपदेश देने वाले भेषी गुरु हैं वे कैसे समझे जातेहैं-ऐसे लोगअन्यलोगोंको ठगनेमें

नितांतचतुर और चांडालसमान अतिनिंद्यसमझेजातेहैं

४१८। अचौर्य महाव्रतका क्या स्वरूपहै-विना दिया हुआ तृणमात्र भी परद्रव्य मनवचनकायसे तथा कृतकारित अनुमोदनासे ग्रहणनहींकरना, चाहे वहद्रव्य किसीघर मार्ग वा बनमें पड़ाहो चाहेउसे कोईभूल गयाहो अथवा वहनष्टहोकरपड़ाहो वह कैसाही क्यों न हो कालसर्पके समान उसेकभीग्रहण नहीं करना औरनग्रहणकरनेको कभी इच्छा करना अचौर्य महाव्रत कहाजाताहै।

४१९। जो लोग अचौर्य महाव्रतको धारणनहीं करते उनकी क्या गति होती है-उन्हें बध बधन आदि अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं उनका सर्वनाश होजाताहै और अंतमें उन्हें नरकादि दुर्गतियोंके दुःख भोगने पडते हैं।

४२०। ब्रह्मचर्य महाव्रत क्याहै-संसारकी संपूर्ण स्त्रीमात्र को माता बहिन और पुत्रीके समान मानना अर्थात् जो स्त्रियां छोटीहैं उन्हें पुत्रीके समान माना, जो बराबरवाली युवतीहैं उन्हें बहिनके समान मानना, और जो वृद्धा हैं उन्हें माताके समानमानना तथा कामोत्पादक कुत्सित रागादिकोंको छोडकर, ब्रह्मचर्यको घात करनेवाली दश विराधनाओंका त्याग कर सर्वथावीतरागता

धारण करलेना ब्रह्मचर्य महाव्रत कहलाता है।

४२१। ब्रह्मचर्यको घात करनेवाली दशप्रकारकी विराधना कौन २ हैं स्त्रियों के साथ संबंध रखना १ सरस और पौष्टिक आहार करना २ अतर फुलेल आदि सुगंधी पदार्थ तथा फूलमाला आदिका सेवनकरना ३ अतिशय मृदुशय्या तथा मृदुआसनका व्यवहार करना ४ अच्छे २ वस्त्र आभूषणोंसे शरीरको सुसज्जित रखना ५ गीतवाद्य आदि कामोद्दीपक सामिग्रियोंका संयोग मिलाना ६ धन धान्यादिकों संग्रह करना ७ कुशील और निंद्य लोगोंको संगतिमें रहना ८ राजा महाराजा आदि बड़े आदमियोंकी सेवा करना ९ और रात्रिमें इधर उधर घूमना १० ये दश शीलकी विराधना (शीलको घात करनेवाली) कही जाती हैं।

४२२। स्त्रियोंके साथ सँबंध रखनेसे क्यादोषहै-स्त्रियोंके साथ सँबंध रखनेसे अतिशय असह्य कामाग्नि प्रज्वलित होतीहै जिससे चिरकालसे पालन किया हुआ ब्रह्मचर्य भी नष्ट होजाताहै। ब्रह्मचर्य नष्ट होनेसे संपूर्ण व्रत क्षय होजाते हैं, व्रतक्षय होनेसे घोर पाप उत्पन्न होताहै, पापसे बध बंधनादिके दुःख भोगनेपडतेहैं और

दुःख भोगनेसे इस आत्माका सर्वनाश होजाताहै अर्थात् इसके ज्ञानादि गुण सब नष्ट होजातेहैं जिससे उसे नरकादि दुर्गतियोंमें अवश्य भ्रमण करना पड़ताहै ।

४२३ । ब्रह्मचर्य नष्टहो जानेसे और क्या होता है-चित्त चंचल हो जाताहै चित्त चंचल हो जाने से शुभ ध्यान नहीं हो सक्ता, इसके सिवाय संसारमें अपकीर्ति फैल जातीहै और कलंक तो तत्काल ही ऐसा लग जाताहै जो कभी छूट ही नहीं सक्ता ।

४२४ । सरस और पौष्टिक आहारसे क्याहानिहोतीहै-कामरूप अग्निउद्दीपन होजातीहैजिससे संपूर्ण व्रत भस्महोजाते हैं और अंतमें अनेक दुर्गतियोंके दुःख भोगने पड़तेहैं ।

४२५ । गँधमाल्य आदिसुगंधित पदार्थसेवन करनेसे क्याहोताहै अनेक उत्कट रोगहोजाते हैं रोगहोनेसे उद्धतता मादकता पागलपन आदि अनेक अनर्थ उत्पन्न होजातेहैं, जिनसे कि फिर चिरकाल तक अनेक दुःख भोगना पड़ते हैं ।

४२६ । कोमल शैया कोमल आसन आदिका व्यवहार करने से क्या हानि होती है-कोमल शय्या पर सोने किंवा कोमल आसन पर बैठने से स्पर्शन इंद्रियको सुख मिलता है स्पर्शन इंद्रियको सुख मिलने से तत्काल ही तीव्र

कामज्वर होजाताहै जिससे फिर वही संसारके नाना दुःख भोगने पडते हैं।

४२७। वस्त्र आभूषण आदि पहननेसे क्या होता है—राग द्वेष काम क्रोध आदि अँतरंग शत्रुओंकी वृद्धि होती है। इनके बढनेसे महापाप होता है और पाप होने से नरक निगोदादिके दुःख भोगने पड़ते हैं।

४२८। सराग गीत वाद्य आदि सुनने से क्याहानि होती है— संवेग वैराग्यआदि आत्माके उत्तम२ गुण सब नष्ट हो जातेहैं और आत्माके गुण नष्ट होजानेसे जन्म लेना ही निरर्थक होजाता है।

४२९। धन धान्यादि संग्रह करने से क्या हानि होती है— महाव्रत सब नष्ट होजाते हैं। महाव्रत नष्ट होजाने से वह भ्रष्ट होजाता है और भ्रष्ट होजानेसे सैकड़ों अनर्थ आ उपस्थित होते हैं।

४३०। कुशील और व्यभिचारीलोगोंके साथ रहनेसे क्या हानि होती है—शील ब्रह्मचर्यआदि सद्गुण सब नष्ट हो जाते हैं सद्गुण नष्ट होजाने से संसारमें अपकीर्ति फैलती है अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं और परलोक में दुर्गतियोंके दुःख भोगने पड़ते हैं।

४३१। राजा महाराजाओं की सेवा करने से क्या होता है- रत्नत्रय नष्ट हो जाता है एक रत्नत्रय के नष्ट होने से सद्‌गुणभी सब नष्टभ्रष्ट होजाते हैं और नरकादि दुर्गतियोंमें भ्रमण करना पड़ता है।

४३२। रात्रिमें इधर उधर घूमने से क्या हानि है-रात्रि में प्रायःव्यभिचारणी स्त्रियां और चोर फिरा करते हैं रात्रिमें घूमनेवालोंको प्रायः इन्हींसे भेंट तथा समागम होता है जिससे ब्रह्मचर्य नष्ट होजाता है धन हरण होजाता है अपकीर्ति फैलजाती है और परलोक में दुर्गतियोंमें जाना पड़ता है।

४३३। जो पुरुष उपर्युक्त शीलके दोषोंमें से कोईभी दोष नहीं छोड़ता उसके क्याहानि होती है-जब ये एक एकदोष अनेक अनर्थ उत्पन्न करनेवाले हैं तब समस्त दोष मिलाकर क्या संपूर्ण व्रतोंको नष्ट नहीं कर सकते? अवश्य कर देंगे। अर्थात् इनदोषोंसे सबव्रत नष्ट होजाते हैं और व्रत नष्ट होनेसे संसारमें अनेक दुःख देखने पड़ते हैं।

४३४। ब्रह्मचर्यके घातकरनेवालोंको क्या २ दुःख उठाने पड़तेहैं- गधे सूकरआदि नीचपशुओंके समान जगह जगहसे उन्हें निकलना पड़ता है जगह २ अपमान सहने पड़-

ते हैं और जगह२ उन्हें मार खानी पड़ती है।

४३५। दृढ़ता से ब्रह्मचर्य पालन करने वालोंको क्या लाभ है— इंद्रादिक बड़े२ उनके चरणकमलोंको नमस्कार करते हैं और सेवकके समान उनकी सेवा करते हैं इसके सिवाय परलोकमें भी उन्हें स्वर्गमोक्षके अनेक सुख प्राप्त होते हैं

४३६। परिग्रह त्याग महाव्रत किसे कहते हैं-मिथ्यात्व १ स्त्री वेद २ पुंवेद ३ नपुंसकवेद ४ हास्य ५ रति ६ अरति ७ शोक ८ भय ९ जुगुप्सा १० क्रोध ११ मान १२ माया १३ लोभ १४ ये चौदह अंतरंग परिग्रह हैं तथा क्षेत्र १ वास्तु २ धन ३ धान्य ४ दासीदास ५ हाथीघोड़े आदि ६ शय्या ७ आसन ८ रथपालकी आदि सवारी ९ और रुपये पैसे धातु वर्त्तन आदि १० ये दश वाह्यपरिग्रह हैं। जो पुरुष शुद्ध मनबचनकाय से इन चौवीस परिग्रहोंका पूर्णतया त्याग करता है और ममत्वरूप मूर्छाको चित्तसे सर्वथा हटा देता है उसके यह पूज्य आकिंचन्य नामका परिग्रह त्याग महाव्रत होता है।

४३७। परिग्रह रखनेसे क्या २ हानि होती है-क्रोध लोभ भय आदि दोष उत्पन्न होजाते हैं शुभ ध्यान शुभ लेश्या आदि आत्माके उत्कृष्ट गुण सब क्षण भरमें नष्ट होजाते हैं और उनके बदले अशुभ ध्यान और

अशुभ लेश्या आदि उत्पन्न होजाते हैं जिनसे महापाप होता है। और पापसे नरक निगोदआदि अनेक दुर्गतियोंमें भ्रमण करना पड़ता है।

४३८। परिग्रह त्याग करनेसे क्या लाभ होता है-लोभ मान माया लोभआदि अंतरंग शत्रुओंका नाशहोजाता है अंतरंग शत्रुओंके नाश होनेसे धर्म्यध्यान अथवा शुक्लध्यानकी प्राप्तिहोतीहै और धर्म्यवाशुक्लध्यानकी प्राप्ति होनेसे स्वर्ग मोक्षादिके अनेक सुख प्राप्त होतेहैं।

४३९। मुनियोंको सुन्दर ग्रन्थ अथवा औरभी सुन्दर धर्मोपकरण रखनेसे क्याहानि लाभहै-सुंदर धर्मोपकरण रखनेसेचित्तक्षोभितहोजाताहै, और चित्त क्षोभितहोजानेसे तप नष्ट होजाताहै। यद्यपिसुंदर धर्मोपकरण रखनेसे शुभ ध्यान और शुभ लेश्यायें हो सक्ती हैं और उनसे देवगतिमें उत्पन्न होना आदि कुछ कल्याण भी हो सक्ताहै परंतु मोक्षरूप सद्गति उससे कभी नहीं हो सक्ती।

४४०। जो मुनि भेषी परिग्रह सहितहैं वे कैसेहैं-जोमुनिहोकर भी परिग्रह रखते हैं अथवा परिग्रह रखनेकी आकांक्षा करते हैं वे निंद्य कुत्तों के समान हैं केवल वाह्य सुख आस्वादन करनेमें ही सदा लीन रहतेहैं।

४४१। समिति कौन२ हैं-ईर्यासमिति, भाषासमिति एषणासमिति, आदाननिक्षेपणसमिति और प्रतिष्ठापन समिति ये पांच समितिहैं ये समिति अहिंसा सत्य आदि व्रतोंकी जननीहैं और कर्मोंका आस्रव रोकने के लिये तथा भव्यजीवोंकोमोक्षप्राप्त होनेकेलियेही श्री जिनेन्द्रदेवने इनका विधान निरूपण कियाहै।

४४२। ईर्यासमिति किसे कहतेहैं-जबसूर्य खूबचढ़आताहै गाड़ीघोड़े सब चलने लगतेहैं जिनसे कि मार्गसबप्रासुक (निर्जीव) होजाताहै तब मुनिगण उस प्रासुक मार्ग से आगेकी चारहाथ भूमि नेत्रोंसे अच्छी तरहदेख शोध कर धीरे२ बड़े यत्नसे गमन करते हैं और वह भी केवल धर्म वृद्धिके लिये करते हैं उनके इस प्रकार गमन करनेको उत्तम ईर्यासमिति कहते हैं।

४४३। रात्रिमें गमन करनेसे क्या हानिहै-रात्रिमें गमन करनेसे उनके पैरसे स्थूल पंचेंद्रियजीवभी मरजातेहैं फिर भलासूक्ष्म जीवोंकी तो बातही क्याहै। अतएव अनेक जीवोंका घातहोनेसे रात्रिमें गमन करनेवालोंके अहिंसादिक सब व्रत नष्ट हो जाते हैं।

४४४। भाषासमिति क्या है-ऐसे बचन कहना कि जो हितरूप हों, परिमितहों, प्रियहों, साररूपहों, धर्म अथवा तत्त्वों का निरूपण करनेवाले हों, दशप्रकारकी कुभाषाओंसे रहित हों आगमानुसार और जगत मान्य हों तथा जो केवल मोक्षमार्गकी प्रवृत्तिके लिये ही कहे गये हों। ऐसे बचनकहनेको भाषासमितिकहते हैं।

४४५। दश प्रकारकी कुभाषा कौन२ हैं-कर्कश १ कटुक २ परुष (कठिन) ३ निष्ठुर ४ दूसरोंको क्रोध उत्पन्नकरनेवाली ५ मध्यकृशा ६ मानिनी ७ अभयँकरी ८ छेदंकरी ९ और भयंकरी १०।

४४६। जो लोग भाषासमितिका पालन नहीं करते उन्हें क्या फल मिलता है-उनके सदा पापसंग्रह होता रहता है जिससे उन्हें नरकादि दुर्गतियोंमें पड़ना पड़ता है। अतएव ऐसे लोगोंकी दीक्षा लेना और तपकरना सब व्यर्थ है।

४४७। एषणासमिति किसे कहते हैं-मुनि लोग भिक्षावृत्तिसे जोनौप्रकारसेविशुद्ध चौदहमल बत्तीसअँतराय और छयालीसदोषोंसेरहितकेवलशरीरकीस्थितिरखनेकेलिये शुद्धआहारग्रहणकरतेहैं उसे एषणासमितिकहतेहैं।

४४८। मुनिलोग भिक्षाभोजनभी क्योंकरतेहैं -केवल क्षुधाकी

बेदना शांत करनेकेलिये और वैयावृत्ति षट् आवश्यक उत्तमसँयमप्राणरक्षा तथा उत्तमक्षमा आदिदशलक्षणिक धर्म पालनकरनेकेलिये मुनिलोग शुद्ध, अनिंद्य भोजन ग्रहण कियाकरते हैं। उपवासकेबाद पारनो रूपसे ग्रहण, करतेहैं अन्यथा सदाएकवार ही ग्रहणकियाकरते हैं

४४६। सदोष आहार ग्रहण करने वालोंको क्या हानिहोती है— सदोष आहार ग्रहण करने से षट्काय के जीवों की हिंसा होतीहै और हिंसा होनेसे उनका मौनव्रत यम उपवास योग आदि सब व्यर्थ होजाते हैं।

४५०। आदाननिक्षेपणसमिति किसे कहते हैं- पुस्तक कमंडलु आदिधर्मोपकरण कहीं रखनेहों वा कहींसे उठानेहों तो मुनिगण उसे खूबदेखकर और कोमलपीछीसे बारंबार शोधकर रक्खेंगे वा उठावेंगे जिससे किसी सूक्ष्मजीव का घात न हो जाय इसीको अर्थात् धर्मोपकरणको देख शोधकरउठानेरखनेको आदाननिक्षेपणसमितिकहते हैं

४५१। पिच्छि (पीछी) कैसी होनी चाहिये—जोरज (धूलि) को हटासके स्वेद (पसीना) को सोख सके जो मृदु हो सुकोमल हो और छोटी हो अर्थात् जिसमें रजको हटाना पसीना सोखना मृदुता कोमलता और लघु-

ता ये पांच गुण हों वही पीछी उत्तम है। ये गुण प्रायः मयूरपुच्छकी बनीहुई पीछीमें ही पायेजाते हैं।

४५२। इस आदाननिक्षेपणसमितिके विना क्या हानि होती है- मुनियोंकेधर्मोपकरण रखने उठाने आदिकार्योंमेंस्थूल तथा सूक्ष्मजीवोंकीहिंसाहोतीहै और हिंसाहोनेसेउनका दीक्षालेनातपकरना और जन्मलेनासबव्यर्थहोजाताहै

४५३। प्रतिष्ठापनासमिति किसे कहते हैं-किसी एकांत भूमिको बड़े प्रयत्नसे देख और पीछीसे शोधकर मलमूत्रआदिकाउत्सर्गकरना प्रतिष्ठापनासमितिकहलातीहै

४५४। इस प्रतिष्ठापनासमितिकेविना क्या हानि होती है-प्रतिष्ठापनासमितिकेबिना छोटे २ पंचेंद्रियजीवोंतककी हिंसा औरउनकोपीड़ाहोतीहै फिरविकलत्रयजीवोंकेघातका तोकहनाही क्याहै। अर्थात् उनकी भीहिंसाहोतीहैऔर हिंसाहोनेसे नरकादिदुर्गतियां अवश्यभोगनीपड़तीहैं।

४५५। हे भगवन्! श्रीजिनेन्द्रदेवने इन पांच समितियोंका निरूपण किसलिये किया-केवल अहिंसा महाव्रतकी पूर्णतया सिद्धि होनेके लिये। क्योंकि ये समिति अहिंसाव्रतकी जननीहैं। इनसे पूर्णतया अहिंसाव्रत पालन होताहै।

४५६। जो मुनि समितियोंकापालन नहीं करते उनकी क्या हानि

होती– हैउनके महाव्रत सब नष्ट होजातेहैं। तपकरना और घरछोड़ना भी व्यर्थहोजाताहै उनकाकेवल संसार हीबढ़ता रहताहै। क्योंकिसमितियोंकेबिना हिंसाअवश्यहोतीहै और हिंसासेये उपर्युक्त सबबातें होतीहैं।

४५७। समितियोंकोपालन करनेसे क्या लाभ होता है–उनके महाव्रतपूर्णतयापालनहोतेहैंसमितियोंकेपालनकरने सेसंवरनिर्जरा ध्यानतप अनर्घमोक्षपदकीप्राप्तिहोतीहै

४५८। तीन गुप्ति कौनसेहैं- मनोगुप्ति वचनगुप्ति और कायगुप्ति। मनवचनकायकीक्रियाकोरोकनागुप्तिकहलाती है येगुप्तिहीआस्रवकोरोकनेवाली औरमोक्षदेनेवालीहैं

४५९। मनोगुप्ति किसे कहते हैं–मनके संपूर्ण संकल्प रोककर उसे केवल ध्यान अध्ययन और संयममें लगाना मनोगुप्ति कहलाती है।

४६०। मुनियोंको मनोगुप्तिसे क्या लाभ होता है—संपूर्ण कर्मोंका संवरहोताहै, ध्यानकीशुद्धिहोनेसे अनंतकर्मोंका क्षयहोताहै औरकर्मक्षयसे [illegible]क्षकी प्राप्तिहोतीहै

४६१। मनोगुप्ति पालन न करनेसे क्या हानि होतीहै-चिरकाल तकसंसारमेंपरिभ्रमणकरनापड़ताहै इसलियेमनोगुप्तिपालनकरनेवालोंका तपश्चरणकरनासर्वथाव्यर्थ है

४६२। वचनगुप्ति किसे कहतेहैं-मौन धारणकर वचनरूप क्रियाको सर्वथा रोकना अथवा वचनकी अन्यक्रियाओंको रोककर उसे केवल सिद्धांतके पठन पाठनमें लगाना वचनगुप्ति कहलाती है।

४६३। वचनगुप्तिसे क्या लाभ होता है—रागद्वेषसब छूट जातेहैं निर्विघ्नतासे उत्तम ध्यानकी प्राप्तिहोतीहै और ध्यानसे स्वर्गमोक्षादि संपूर्ण अर्थोंकी सिद्धि होजातीहैं।

४६४। वचनगुप्तिके बिना क्या हानि होतीहै-जो मुनि वचन गुप्तिपालननहीं करते उनसेबहुतसेवचन यद्वा तद्वा,अनर्थक और धर्मसेरहित भी निकलजाया करतेहैं जिससेकि उन्हें संसारमें परिभ्रमण करना पड़ता है।

४६५। कायगुप्ति किसे कहते हैं-कायोत्सर्गआदि दृढ़ आसन धारणकर शरीरको पर्वतके समान निश्चल रखना कायगुप्ति कहलाती है।

४६६। तीनों गुप्तियोंके पालनकरनेसे क्या लाभ होता है--धर्म्य ध्यान वा शुक्लध्यानकी प्राप्ति होतीहै जिससे आत्माको शुद्धात्मजन्य एक अद्भुत आनंदकी प्राप्ति होतीहै उस आनंदसे अनंत कर्मोंका क्षय होजाताहै औरज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीय मोहनीय येघातिया कर्म सब नष्ट

होजातेहैं। घातियाकर्मोंके नष्ट होनेसे लोकालोकको प्रकाशकरनेवालेउसकेवलज्ञानकीप्राप्तिहोताहै जिससे त्रैलोक्यनाथ तीर्थंकर भी पूज्यसमझे जातेहैं और अंत मेंअनंतसुखोंकेसमुद्र मोक्षपुरुषार्थकी प्राप्ति होतीहै।

४६७। इन गुप्तियों के पालन न करने से क्या हानि होती है—

जोगुप्तियोंका पालननहींकरते उनकें न संवरहीहोताहै औरननिर्जराहोतीहै उनकेसदाकर्मोंकाआस्रवहीहोता रहताहैजिससे उन्हेंफिरसंसारमें भ्रमण करनापड़ताहै

४६८। मनवचनकायकी क्रियाओंमेंसे ऐसीकौनसीक्रिया है जिस सेनिरंतर कर्मोंकाआस्रव होता रहताहै-ऐसी मनकी क्रियाहै। क्योंकि चंचलचित्त होनेसेनिरंतरकर्मकाआस्रवहोताहै औरवचनतथाकायकी क्रियासे कभी२ कर्मास्रवहोताहै

४६९। तीनोंगुप्तियोंमें से किसगुप्तिकेद्वाराकर्मक्षयअधिक होताहै-

मनोगुप्तिकेद्वारा। क्योंकिसद्ध्यानमनोगुप्तिसेहीहोताहै सद्ध्यानसे क्षणभरमें अनंतकर्मोंका क्षय होजाताहै।

४७०। इसका क्या कारण है अर्थात् मनकी क्रियासे कर्मास्रव अधिक२ क्योंहोता है और मनोगुप्तिसे क्यों अधिक कर्मक्षय होता है

क्योंकि रागद्वेषरूपमनकेविकल्पोंसे क्षणभरमें अनंत कर्मोंका बन्ध होजाता है, और रागद्वेषरहित बीतराग

अवस्थासे क्षणभरमें अनंतकर्मोंका क्षय हो जाताहै, इसी लियेऐसा कहागया है।

४७१। ऊपर कहेहुए तेरहप्रकारके चारित्र पालन करने से क्या लाभ होता है—सर्वार्थसिद्धि तकके उत्तम२ सुख और महोदय प्राप्त होतेहैं।

४७२। इस संसारमें किसका जीवन प्रशंसनीयहै-उसीका कि जो प्रमाद रहित चन्द्रमाके समान निर्मल चारित्र का पालन करताहै।

४७३। किसका जीवन निष्फलहै-जो व्रतोको धारण कर के भी मोहके वश होकर निर्मल चारित्र पालन नहीं कर सकते उनका यह जीवन सर्वथा निष्फल है।

४७४ आयुष्य किसका प्रशंसनीय है-जो पुरुष स्वर्ग और मोक्षके कारण थोड़ेसेभी व्रतोंका बड़े प्रयत्न सेपालन करतेहैं उन्हींका आयुष्य प्रशंनीय गिना जाता है।

४७५। निंद्यनीय आयुष्य किसका है-जो इस पवित्रचारित्र का पालन नहीं करते निरंतर दुर्गतिके कारण पापों काही संग्रह करते रहते हैं उनका चिरकाल तक जीवित रहनाभी निंद्यनीय है।

४७६। यह उपर्युक्त विषय समझकर बुद्धिमानों को क्या करना

उचित है-मोहरूपी तस्करको मारकर मोक्षप्राप्त होनेके लिये जगतके सारभूत इस पवित्र चारित्रका पालन करनाही बुद्धिमानोंको सर्वथा उचित है।

४७७। संसारके सारभूत पदार्थोंमें उत्तम साररूप क्या है-यह रत्नत्रय ही तीनों जगतमें उत्कृष्ट साररूप है श्रीजिनेन्द्रदेवके समान जगद्वंद्य यही है।

४७८। इन तीनों लोकोंमें सबसे दुर्लभ वस्तु क्या है-अंधेके लिये अद्भुत निधान (खजाना) के समान मनुष्योंकेलिये सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र की प्राप्ति होना ही अतिशय दुर्लभ है।

४७९। इंद्र जिनेन्द्र आदि बड़े२ पुरुषभी निरंतर किसकी आराधना करते हैं-नितांत एकांत बनमें रहनेवाले योगीजिन आदि सभी बड़े यत्नसे निरंतर इस रत्नत्रय का ही आराधन किया करते हैं।

४८०। इंद्र आदि बड़े२ देवभी क्या चाहते रहते हैं-सदा रत्नत्रयका पालन करना और मोक्षकी प्राप्ति होना।

४८१। मनुष्योंकेलिये सबसे उत्तम भूषण क्या है-संसारमें सबसे अच्छीशोभाबढानेवालातथातीनोंलोकोंकोलक्ष्मीको वशकरनेवाला अतिउत्तमएक रत्नत्रयही परमआभूषणहै-

४८२। मुक्तिरूपी सुन्दर स्त्री किसपर आसक्त रहती है—जोपुरुष रत्नत्रयआभूषण से सुसज्जित हैतपोधनसेधनाढ्य है उसीपुरुषपरयहमुक्तिकामिनी सदा प्रसन्न रहतीहै।

४८३। संपूर्ण जैनसिद्धांतोंका सारभूत रहस्य क्या है-महात्माओंकेलिये सम्यग्दर्शन ज्ञान और चारित्रकी पूर्ण प्राप्ति का होनाही जैनसिद्धांतोंका रहस्य है। संपूर्णकल्याणोंको देनेवालाभी उनकेलिये यही है।

४८४। मुनियोंका जीवन क्या है-यही रत्नत्रय।

४८५। संसारके संपूर्ण प्राणियोंको हित करनेवाला कौन है—यह ही रत्नत्रय।

पूज्य महात्माओंकेलिये सदाप्रियवस्तु कौनहै-यह ही रत्नत्रय

४८७। तीनोंलोकोंमें अतिउत्तम वस्तु क्याहै-यह ही रत्नत्रय

४८८। विश्वनाथ श्रीजिनेन्द्रदेवभी किसको नमस्कार करते हैं—इसी निर्मल रत्नत्रय को।

४८९। उर्ध्व और मध्यलोकमें सज्जनोंके परमपूज्य वस्तु क्याहै-यह ही विशुद्ध रत्नत्रय।

४९०। पूर्वकालके दृढ़पुरुष किसकारणसे मोक्ष गये-इसी रत्नत्रयके सेवन करनेसे।

४९१। अब किसकारणसेभव्यजीव मोक्ष जारहे हैं-इसी रत्नत्रयके सेवन करनेसे।

४९२। आगे किस कारणसे मोक्ष जांयगे इसी रत्नत्रय के सेवन करनेसे।

४९३। क्यो२ शुभाचरण करनेसे सज्जन पुरुषोंको यह रत्नत्रय सिद्ध होता है-ज ादिक यथार्थ तत्त्वोंकी श्रद्धा करनेसे उनका यथार्थज्ञान होनेसे और तद्रूप आचरन करने से यह उत्कृष्ट रत्नत्रय सिद्ध होजाता है।

४९४। यह तत्त्वश्रद्धानरूप व्यवहार रत्नत्रय किसका साधक है-यह व्यवहार रत्नत्रय निश्चय रत्नत्रयका साधक है।

४९५। योगियोंके जो निश्चय रत्नत्रय होताहै उसका क्यालक्षणहै-निश्चयरत्नत्रयका स्वरूप आगेके परिच्छेदमें कहेंगे।

यह रत्नत्रत्र जोकि मुक्तिरूपी स्त्रीको वश करनेवाला है जन्ममरणरूपसंसारको हरण करनेवाला है, कर्म रूपी शत्रुओंकानाश करनेवाला है, जगत्पूज्य है, गुणों काघर है, संपूर्णप्रयोजनोंको सिद्धकरनेवाला है, समस्त सुखोंको देनेवालाहै, संसारमें जिसकोअन्यकोई उपमा नहीं, जिसके सब वंदनाकरतेहैं, तीनोंलोक नमस्कार करताहै, जोसबधर्मोंकासार है औरजिसकास्वरूपइस अध्यायमें मैंनेनिरूपणकियाहैवह निर्मलरत्नत्रय सदा मेरे हृदयमें प्रगट-रूपसेविराजमान रहो

सबकेहित करनेवाले जिनतीर्थंकरदेवने भव्यजीवों को मोक्षप्राप्तहोनेकेलिये यह श्रुतज्ञाननिरूपण किया है तथाजो सिद्धभगवान् इसीश्रुतज्ञानके प्रभावसे अशरीर होकर मुक्त हुयेहैं जोआचार्य स्वपर कल्याणार्थ बड़ीभक्तिसे निरंतर इसीश्रुतज्ञानका उपदेश देते रहते हैं जो उपाध्याय और साधु रातदिनइसका मननकरते रहते हैंउनकोमैं बारंबार नमस्कार करताहूं ।

इति श्रीधर्मप्रश्नोत्तरमहाग्रन्थेसकलकीर्त्याचार्यविरचिते मोक्षमार्गवर्णनो नाम तृतीयपरिच्छेद ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थः परिच्छेदः ।

संपूर्ण तत्त्वोंको निरूपण करनेवाले श्रीजिनेन्द्रदेव तथा सिद्धभगवानकी और इन्हीं तत्त्वोंका उपदेश देने वालेआचार्य उपाध्याय साधुगणोंकी मैं (सकलकीर्तिआचार्य) स्तुति करता हूं ।

४६६ । भगवन् निश्चय सम्यग्दर्शन किसे कहतेहैं—अपने अंतःकरणमें चिदानँदस्वरूप पँच परमेष्ठियोंका औरसिद्धो के शुद्धस्वरूपके समान अपने शुद्ध आत्माका विश्वास करना, प्रतीति करना तथा श्रद्धान करना निश्चय

सम्यग्दर्शन कहलाता है यह शुद्ध आत्माको श्रद्धान व्यावहारिक संपूर्ण विकल्पोंसेरहित है और मुक्तिरूपी स्त्रीको साक्षात् वश करनेवाला है।

४१७। निश्चयनयसे यह अपना आत्मा सिद्धोंके समान कैसे हो सकता है-सिद्धोंमें जो गुणहैं वे निश्चयनयसे इसआत्मा में भी पाये जाते हैं इसलिये यह आत्मा सिद्धोंके समान कहा जाता है।

४१८। तब फिर सिद्ध और संसारी जीवोंमें क्याभेदहै-सिद्धोमें जो अनंतदर्शनज्ञानादि गुणहैं वे सब संसारी जीवोंमें विद्यमान हैं। अंतर केवल इतना ही है कि सिद्धोंके ज्ञानावरणादि कर्म सर्वथा क्षय होगये हैं इसलिये उनके वे गुण व्यक्त होगयेहैं और संसारीजीवोंके कर्मोंका उदय विद्यमान हैं इसलिये उनके वे गुण व्यक्त नहीं हुये हैं कर्मोंसे ढके हुये शक्तिरूपसे विद्यमानहैं। बस यही गुणोंके व्यक्ताव्यक्त भेदसे सिद्ध और संसारी जीवों में भेद है।

४१९। यह किस दृष्टांतसे समझा जाय कि संसारीजीवमें सिद्धों के संपूर्ण गुण शक्तिरूप से विद्यमान हैं—जैसे दूधमें घीहै और तिलीमें तेल है इसी प्रकार इस आत्मा में शक्तिरूप

से परमात्मा विद्यमान है।

५०० । निश्चयज्ञान किसे कहते हैं—जिस स्वसंवेदन ज्ञान में निर्विकल्परूपसे अपने आप अपने आत्माका परिज्ञान होताहै ऐसा वीतराग मुनियोंके जो ज्ञानहै वही केवलज्ञानविभूतिकोदेनेवालानिश्चयज्ञानकहलाताहै

५०१ । ज्ञान आत्मा से भिन्न है या आत्मस्वरूप ही है—आत्मा सब ज्ञानस्वरूप ही है अर्थात् ज्ञान आत्मा से भिन्न नहीं है आत्म स्वरूप ही है और जिस ज्ञानस्वरूप आत्मा है वही निश्चयज्ञान है।

५०२ । निश्चयचारित्र किसे कहते हैं—अपने शुद्ध स्वरूप आत्मामें निश्चयज्ञानकेद्वारा अथवा बार बार किये हुये ध्यान और आचरणकेद्वारा बाह्य और आभ्यंतर क्रियाओंकारुकजाना अर्थात् शुद्धआत्माका केवल आत्म स्वरूपही परिणत होने लगना महात्माओंका निश्चय चारित्र कहलाताहै। अनंतज्ञानदर्शन आदि नौ लब्धियां इसी निश्चयचारित्रसे प्राप्त होती हैं।

५०३ । इसउपर्युक्त निश्चय रत्नत्रयके पालन करनेसेक्या फल होताहै यह निश्चयरत्नत्रय चरमशरीरियोंके ही होताहै और उन्हें इसीके प्रताप से केवलज्ञान प्राप्त होताहै तथा

वे जगतपूज्यभी इसी निश्चय रत्नत्रयसे होतेहैं।

५०४। यह रत्नत्रय आत्मासे भिन्नहै या अभिन्न-अभिन्न। क्यों कि निश्चयनयसे संपूर्ण आत्मा सदा रत्नत्रय स्वरूपहो है कोई जीव ऐसा नहीं है जो रत्नत्रयस्वरूप न हो।

५०५। इसका क्या कारण है अर्थात् यह आतमा निश्चयनयसे रत्नत्रय स्वरूप क्योंहै-क्योंकि निश्चनयसे ये संपूर्ण जीव अनादिकालसे स्वतः स्वभाव सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्र स्वरूपही हैं। वे न कभी इनसे अलग हुये और न कभी अलग हो सक्तेहैं इसलिये वे सदा रत्नत्रयस्वरूपहीहैं।

५०६। रत्नत्रय चाहनेवालोंको क्या करना चाहिये- वाह्य संपूर्ण संकल्प विकल्प छोड़कर निरँतर आत्मध्यान करना उचित है यह आत्मध्यानहो रत्नत्रय देनेवालाहै।

५०७। जिन तत्त्वोंका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन कहलाताहै वे तत्व कौन२ हैं—जीव, अजीव, आस्रव, वंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष जिनशासनमें ये हीसाततत्त्वकहे हैं। निश्चयरत्नत्रयके ये ही मूलकारणहैं। क्योंकिइनको श्रद्धानकरना सम्यग्दर्शन, इनको जानना सम्यग्ज्ञान और इन रूप आचरण करना सम्यक्चारित्रा कहलाताहै।

५०८। जीवतत्व किसे कहते हैं-चेतनाही जिसका लक्षण

है तथा जो उपयोगस्वरूप है और जिसमें अन्य अनेक स्वाभाविक गुण पाये जातेहैं उसे जीव कहते हैं।

५०६। इसको जीव संज्ञा क्यों है-क्योंकि दश प्राणोंके द्वारा यह अनादिकालसे जीवितथा तथा उन्ही दश प्राणों से अबभी जीवित रहनेसे इसकी जीव संज्ञा सार्थकहै।

५१०। दश प्राण कौनर हैं-स्पर्शन १ रसना २ घ्राण ३ चक्षु ४ और श्रोत्र ५ ये पांच तो इंद्रियें तथा मन ६ बचन ७ काय८ ये तीन योग और आयु ६ तथा श्वासोच्छ्वास १० ये संसारी जीवोंके बाह्य दशप्राण कहलातेहैं

५११। चेतना किसे कहते हैं-आत्मा के परिणाम विशेषोंको चेतना कहते हैं। यह चेतना दो प्रकार की है, एक शुद्ध चेतना और दूसरी अशुद्ध चेतना। कर्म रहित शुद्धआत्माके ज्ञानस्वरूप परिणामोंको शुद्धचेतना कहते हैं और कर्मसहित आत्माके रागद्वेषरूपपरिणामोंको अशुद्ध चेतना कहते हैं।

५१२। उपयोग कोनर है-आत्माके चेतनारूपपरिणामों को ही उपयोग कहतेहैं।यहउपयोगभीदोप्रकार हैंशुद्धोपयोगऔरअशुद्धोपयोगकेवलज्ञानऔरकेवलदर्शनआ-

द्वि आत्माके शुद्ध परिणामोंको शुद्ध उपयोग कहते हैं और चक्षु आदिक इन्द्रियोंसे होनेवाले मतिज्ञान श्रुतज्ञान आदि चेतनारूप अशुद्ध परिणामोंको अशुद्ध उपयोग कहते है।

५१३। आत्माके स्वाभाविक गुण कौन२ हैं—केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तवीर्य और अनंतसौख्य आदि आत्माके स्वाभाविक गुण हैं।

५१४। वैभाविक गुण कौन२ हैं—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान तथा चक्षुर्दर्शन अचक्षुदर्शन, ये वैभाविक गुण हैं। इन स्वाभाविक और वैभाविक गुणोंमेंसे स्वाभाविक गुण-ग्रहणकरनेयोग्य हैं और वैभाविकगुण सर्वथा त्याज्य हैं।

५१५। यह जीव कर्मोंका कर्त्ता है अथवा अकर्त्ता—यह जीव व्यवहारनयसे शरीर तथा ज्ञानावरणादि कर्मोंका कर्त्ता है परंतु निश्चयनयसे यह किसीका कर्त्ता नहीं है इसलिये अकर्त्ता है।

५१६। यह जीव कर्मोंका भोक्ता है या नहीं—यह आत्मा व्यवहारनयसे वेदनीय ज्ञानावरणादि कर्मोंके विपाकरूप सुख दुःखादिकाभोक्ता है किंतु निश्चयनयसे किसीका भोक्ता नहीं है

५१७। यह जीव मूर्तिमान् (मूर्तीक) है या अमूर्त्तीक—मूर्तिमान्

उसे कहतेहैं जिसमें स्पर्श रस गंधवर्ण ये पुद्गलके गुण पायेजायं। निश्चयनयसे जीवमें ये कोई गुण नहीं पाये जाते इसलिये निश्चयनय से यह जीव अमूर्त है। किन्तु व्यवहारनयसे मूर्त्तिमान् है क्योंकि पौद्गलिक शरीरादि कर्म सहित है।

५१८। इस जीवका परिणाम कितना है अर्थात् यह जीव कितना बड़ाहै-निश्चयनयसे यह जीव असँख्यात प्रदेशीहै किंतु व्यवहारनयसे प्राप्तशरीरके परिमाण बराबर ही रहता है। जैसे दीपकके प्रकाशमें सँकोच विस्तारकी शक्तिहै वह जितने छोटेबड़ेकमरेमें रक्खाजाताहै उतनाही छोटा बड़ा हो जाताहै उसीप्रकार आत्माके प्रदेशोंमें भी संकोच विस्तारहोनेकी शक्तिहै वे प्रदेशभी कर्मानुसार जितना छोटाबड़ाशरीर पातेहैं समुद्घात अवस्थाकोछोडकर उतनेही छोटेबड़ेहो जातेहैं। इसीलिये कहाजाता है कि यहजीवपर्यायार्थिकनयसे अपने शरीरके परिमाण के बराबर है।

५१९। समुद्घात कितनेहैं-सात। बेदना, कषाय, वैक्रियिक मारणांतिक, तैजस, आहार और केवल समुद्घात।

५२०। यहजीवकब मुक्त (सिद्ध) होताहै-जब यह जीव सम्य

ग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र प्राप्तकर तपश्चर णके द्वारा कर्मरूपी शत्रुओंको सर्वथा नाश करदेता है तब यह सिद्ध अथवा मुक्त कहलाता है। कर्मों को नाश किये विना यह कभी सिद्ध नहीं हो सक्ता।

५२१। सिद्धकिसे कहते हैं और वे कितनेहैं-जो अष्टकर्म रहित हैं। शुद्ध चैतन्यस्वरूप और दिव्य अष्ट गुणोंसेविभूषित हैं उन्हें सिद्ध कहते हैं। ऐसे सिद्धोंकी संख्याअनंतहै।

५२२। सिद्धोंके गुण कौन२ हैं-सिद्धोंके आठ गुणहैं क्षायिकसम्यक्त्व १ क्षायिक ज्ञान २ क्षायिकदर्शन ३ अनंत वीर्य ४ सूक्ष्मत्व ५. अवगाहन ६ अगुरुलघुत्व ७ और अव्यावाध८ येगुणअतिशय दिव्य और उपमारहितहैं।

५२३। सिद्धोंके कौनसा सुख है-जो सुख सर्व संकल्प विकल्परहितहै,अतिउत्तमहै केवलआत्मजन्यहै,अन्य सर्वविषयोंसे रहितहैसर्वोत्कृष्टहै,अंतररहितहै,आधिव्याधिरहितहै,उपमारहितहै,सदारहनेवालानित्यहै तथा जिसको प्राप्त करनेकेलिये अन्य किसी द्रव्यकी अपेक्षा वा आवश्यकता नहीं होती ऐसे अनँत सुखको वे सिद्ध सदा अनुभव किया करते हैं।

५२४। क्या यह सिद्धोंका सुख इंद्र महमिंद्र आदिके सुखों से भी

अधिक है- इंद्र अहमिंद्र तथा संपूर्ण देव विद्याधर चक्रवर्त्ती राजा महाराजा भोगभूमिज आदि बड़े २ पुण्याधिकारी पुरुष जिस अनंत सुखको भोग चुके, भोग रहे हैं, और भोगेंगे उस अनंत सुखका अनुभव सिद्ध भगवान केवल एक समयमें कर लेते हैं। इससे सहज ही सिद्ध होता है कि इन बड़े २ पुण्याधिकारियोंसे भी सिद्धोंका सुख अतिशय अनंत है।

५२५। लोकशिखर पर निवास करनेवाले इन सिद्ध भगवानको कौन २ नमस्कार करता है तथा कौन इनका ध्यान करता है-गणधर मुनिवर तथा त्रैलोक्यनाथ तीर्थंकर आदि संपूर्ण उत्कृष्ट पदाधिकारी पुरुष सिद्धोंका ही ध्यान करते हैं उन्हींको प्रणाम करते हैं और उन्हींका पद प्राप्त होने के लिये निरंतर आकांक्षा किया करते हैं।

५२६। सिद्धोंका ध्यान करने और उन्हें नमस्कार करनेसे क्या फल मिलता है-जो जीव अन्य सबको छोडकर निरंतर इनका ध्यानादि करते हैं वे शीघ्र वैसे हो अर्थात् सिद्ध होजाते हैं।

५२७। सिद्धोंका ध्यान नमस्कार आदि करनेसे ऐसा उत्तम फल मिलता है यह समझकर बुद्धिमानोंको क्या करना चाहिये-हमें तुमें तथा और भी जो मोक्षाभिलाषी पुरुष हैं उन्हें सदा सिद्धोंका ध्यान करना चाहिये। उनकी स्तुति और उन्हें सदा प्रणाम

करते रहना चाहिये। जिससे कि शीघ्र हो सिद्ध पदको प्राप्त हो

५२८। यदि गुणों की भिन्नतासे भेद कियेजायं तो जीवों के कितने भेद होते हैं--तीन। बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा।

४२६। बहिरात्मा किन्हें कहते हैं--जो जीव धर्म अधर्मकी तत्व कुतत्त्वको; शास्त्र कुशास्त्रको, देव कुदेवकी तथा गुरु कुगुरु की परीक्षा करना नहीं जानते, न धर्मायतनोंमें दान देना जानते हैं जो दान कुदानमें अंतर हो नहीं समझते, तथा जो विवेकशून्य हैं, कुबुद्धि हैं और उन्मत्तके समान हिता हित विचार रहित मूर्ख हैं वे बहिरात्मा कहलाते हैं।

५३०। बहिरात्मा और कौन कहलाते हैं जो लोग सुख मान कर हलाहल बिषसे भी अधिक दुःख देनेवाले इन इंद्रियोंके सुखोंका सेवन करते हैं वे अतिशय मूर्ख बहिरात्मा कहलाते हैं।

५३१। इनके सिवाय और बहिरात्मा कौन हैं—जो पुरुष हेय और उपादेय पदार्थोंका विचार नहीं करते और न अपना कल्याण ही समझते हैं वे मूर्ख भी बहिरात्मा कहलाते हैं

५३२। तीव्र बहिरात्मा किन्हें कहते हैं—जो पुरुष गाढ मिथ्या त्वी हैं सदा खोटे मार्ग और खोटे मतोंमें लीन रहते हैं वे अतिशय मूर्ख और आत्मकल्याणसे रहित तीव्र

बहिरात्मा कहलातेहैं ।

५३३ । ये बहिरात्मा जीव अपनी मूर्खता से क्या कार्य करतेहैं—येकुमार्गमें चलनेवाले बहिरात्मा जीव पुण्य मानकर अनेक प्रकारके कायक्लेश सहन करतेहैं परन्तु ये पुण्य के बदले उससे महापाप उपार्जन करतेहैं ।

५३४ । इन बहिरात्माओंको परलोकमें क्या फल मिलता है—नरक अथवा तिर्यंचगतिमें निरतर भ्रमण करना पड़ता हैं । अथवा नीच मनुष्ययोनिमें किंवा कभी २ नीचदेवगतिमें घूमना पड़ता है ।

५३५ । अंतरात्मा किन २ गुणोंसे कहलाते हैं—जो पुरुष देव शास्त्र गुरु धर्म पात्र अपात्र आदिकी परीक्षा करनेमें बहिरात्मासे विपरीत हैं अर्थात् जो देव शास्त्रादि की परीक्षा करनेमें कसौटीके समान हैं सम्यग्दृष्टी और विचारज्ञहैं वे विद्वज्जन अंतरात्मा कहलाते हैं ।

५३६ । अंतरात्मा और कौन हैं—जो जीव इँद्रियविषयों से उत्पन्नहुये सुखको हलाहल विषकेसमान मानते हैं वे भी अंतरात्मा कहलाते हैं ।

५३७ । अंतरात्माओंका अन्तः क्या है अर्थात् जिसके निमित्तसेवे अंतरात्मा कहलाते हैं वह क्या है-देव शास्त्र गुरुकीनित्यपूजा

करना, उत्तमक्षमादि धर्मधारण करना, पात्रदान देना तथा औरभी अनेक गुग धारण करना अंतरात्माओंका अंतः अर्थात् अंतरात्मा बननेके लक्षग कहजाते हैं।

५३८। उत्कृष्ट अंतरात्मा कौन हैं—जोजीव शरीरादिसे सर्वथा भिन्न चिदानंदस्वरूप आत्माकाचिंतवन करते हैं जो आठ नौ दश ग्यारहबारह इनगुगस्थानोंमें रहतेहैं वे उत्कृष्ट अंतरात्माकहलाते हैं तथा जो पांचवें छठे और सातवें गुणस्थानमें रहतेहैं वे मध्यमअँतरात्मा कहलाते हैं, जोजीव सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानगुणसे सुशोभित हैं चौथे अविरतगुणस्थानमें रहतेहैं वे जघन्यअँतरात्मा कहलातेहैं। किसी एकदिन इन जघन्य अंतरात्माओंके भी घातियाकर्म नष्ट होतेहैं और केवलज्ञानादि उत्तम गुणप्रगट होतेहैं। उत्कृष्ट और मध्यम अंतरात्मा की तो कथाही क्या है उनकेतो ये गुण अवश्य होतेहैं।

५३९। परात्मा कैसे होते हैं—परमात्मा दोप्रकारके होते सकल और निकल। जो दिव्य परमौदारिकशरीरसहित होतेहैं वेसकलपरमात्मा कहलातेहैं। और जोशरीरकर्मरहित होतेहैं वेनिकलपरमात्मा कहलातेहैं।

५४०। सकल परमात्मा किन्हेंकहतेहैं-जिनके दिव्य परमौ-

दारिक शरीरहै चारघातियाकर्म जिनके नष्ट होगयेहैं अ अंत केवलज्ञान जिनके प्रगट होगयाहै इंद्रधरणेंद्र चक्रवर्तीआदि सभीभव्यजन जिनकीपूजा बन्दना स्तुति आदिकरतेहैं जो बारह सभाके मध्य विराजमान रहतेहैं वे अरहंतदेव सकलपरमात्मा कहलाते हैं।

५४१ सकल परमात्मा और कौन हैं—जिनमें अरहंतके संपूर्ण गुणहै ऐसे जगत्पूज्य सामान्यकेवलीभी सकल परमात्मा गिने जातेहैं।

५४२। निकल परमात्मा कौनहैं—जो लोकशिखरपरविराजमान हैं, शरीर रहित हैं कर्मरहितहैं सम्यक्त्वादि अष्ट गुणविशिष्टहैं जिन्हेंतीर्थंकर गणधर मुनीश्वर आदिसब नमस्कारकरतेहैं जिनका सब ध्यान करतेहैं वेगुणस्थानरहित सिद्धभगवान् निकलपरमात्मा कहलाते हैं।

५४३। इन तीनों आत्माओंमेंसे हेय कौन है—उन्मत्त, धर्म रहित, विकलेंद्रियपशुओंकेसमान बहिरात्माही हेयहै

५४४। उपादेय कौन है—उत्तम अंतरात्मा उपादेयहैतथा तत्त्वविचार करते समय उपेक्षा बुद्धिसे अर्थात् त्याग करनेकेलिये बहिरात्माभी उपादेय हैं।

५४५। साक्षात् उपादेय कौन है—जगज्ज्येष्टजगद्वंद्यवा सर्वज्ञऐसेसकलनिकलपरमात्माही साक्षात् उपादेयहै

५४६। उपादेय और कौन हैं—संपूर्ण भव्यजीवोंका हित करनेवाला महापुरुषोंमेंभी अत्युत्तम ऐसे पूज्यअरहंत, सिद्ध आचार्य, उपाध्याय साधुयेपंचपरमेष्ठीउपादेय हैं

५४७। बहिरात्मा पुरुषोंकी संगति करनेसे क्या हानि होतीहै— सम्यग्दर्शन ज्ञान व्रतआदिगुणसबनष्टहोजातेहैंऔर दुर्बुद्धिमूढ़ताआदिपापउत्पन्नकरनेवालेदोषसबआउपस्थितहोतेहैं। अतएवसर्पसिंहादिहिंसक जीवोंकासंसर्ग करनाअच्छाहैजलतीहुईअग्निमेंपड़जानावाजलमेंडूब मरनाअच्छाहै, बिषखाकरमरजानावनमेंनिवासकरना वाप्राणत्यागदेनाअच्छाहै, किंतु मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा पुरुषोंकेसाथएकक्षणभरभीसंसर्गकरना अच्छानहींहै।

५४८। अंतरात्मा पुरुषोंकी सङ्गतिकरनेसे क्या लाभ होता है— अंतरात्मापुरुषोंकी संगतिकरनेसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यकचारित्र संवेग वैराग्य आदि उत्तम२ गुण सदा बढ़तेरहते हैं।

५४९। सङ्गतिसे गुणदोष बढ़ते हैं इसका दृष्टांत क्या है- जैसे जल अग्निकेसयोगसे उष्ण होजाताहै और कतकफल

(निर्मली) फिटकरी आदिकेसंयोगसे निर्मल तथास्वच्छ होजाताहै। यदि सुगन्धपदार्थके साथएकक्षणभी दुर्गंध पदार्थकासंयोग होजाय तोवहसुगन्ध पदार्थ उसीसमय दुर्गंधहोजाताहै। यदिस्वेतपदार्थके साथ एक क्षणभीकृ-ष्ण (काले) पदार्थका संयोग होजाय तोवहसफेदपदार्थ उसीक्षण मेंकालाहोजाताहै इन उदाहरणोंसे सिद्धहोताहै किजैसा संयोगऔर संगति होतीहैवैसेहीगुणप्राप्त होजातेहैं। अच्छीसंगतिसे संसारकेसारभूत उत्तम गुण प्राप्तहोते हैं और कुसंगतिसे दोषहीदोष प्राप्त होतेहैं।

५५० इस प्रकार सुसङ्गति कुसङ्गतिका फल जानकर सज्जनोंको क्या करनाचाहिये—जो गुणवानहैं अथवा धर्मात्माहैंउन्हीं की सदाभक्ति करनी चाहिये, उन्हींमें प्रीति करनाचाहिये और उन्हींकी सदा संगति करना चाहिये।

५५१ सकल परमात्मा अर्थात् अरहंतोंकी भक्ति सेवा आदि करने से क्या फल मिलता है—सातिशय कल्याण होता है धर्म अर्थ काम इनतीनों पुरुषार्थोंकी सिद्धी होतीहै और क्रमसे मोक्ष पुरुषार्थ भी सिद्ध होता है।

५५२। जो पुरुष अरहंतोंकी अनन्यभक्ति करतेहैं उन्हें कैसा उत्तम फल मिलताहै—उन्हें तीनोंलोकोंको क्षोभ करनेवाले अर-

हँत पद की प्राप्ति होतीहैतथाशीघ्रहीमोक्षप्राप्तहोताहै।

५५३। निकल परमात्मा अर्थात् सिद्धोंका ध्यान करनेसे तथा उन्हें प्रणाम करनेसे सज्जनोंको क्याफलमिलताहै-तीनों लोकोंके साररूप उत्तम सुख प्राप्त होतेहैं तथा अनुक्रमसेसिद्ध पदकी प्राप्ति होती है।

५५४। परमात्माकी भक्ति सेवा आदि का ऐसा फल जानकर पंडितोंको क्या करना चाहिये--स्वयं परमात्मा होनेकेलिये जपध्यान स्तोत्र आदिके द्वारा अन्य सबको छोड़कर केवल उन्हींपरमात्माका ध्यान करना चाहिये और उन्हें ही नमस्कार वंदना आदि करना चाहिये।

५५५। स्वाभाविक उर्ध्वगमन करनेवाले अर्थात् मुक्त जीवोंको शीघ्रगति कितनीहोसकती है—गतिमान् मुक्तजीवों को स्वाभाविकगतिनीचेसेऊपरकीओरएकसमयमें सातराजूकीहै

५५६। संसारी जीवोंकाविभाव पर्याय कौन२ हैं-व्यवहारनय सेअपने२ कर्मके अनुसारहोनेवाले मनुष्य,तिर्यंच,देव और नारकी येसंसारीजीवोंकी विभाव पर्याय हैं।

५५७। निश्चयनयसे आत्माके स्वभाव पर्याय कौन २ हैं—प्रत्येक जीवके जो असंख्यात प्रदेश हैं वे शुभ प्रदेश ही निश्चयनयसे संपूर्णजीवोंके स्वभाव पर्यायहैं।

५५८। सिद्धोंकी पर्याय कौनसी मानी जाती है-सम्पूर्ण कर्मों केक्षयहोनेसेजाआत्माकेप्रदेशअंतकेशरीरकेआकारसेकुछकमआकारमेंपरिणतहोजातेहैं वहीसिद्धोंकीपर्यायहै

५५९। इस प्रकार जीवतत्वकास्वरूप जानकर भव्यजीवोंको क्या करना उचितहै-उन्हें मुक्तिप्राप्तहोनेकेलिये अपना आत्मा रत्नत्रय तपश्चरण आदिसे विभूषित करना चाहिये।

५६०। हे भगवन् अब मेरेलिये यथाक्रम से अजीवतत्त्वका उपदेश दीजिये--पुद्गल धर्म अधर्म आकाश और काल ये पाँच अजीवतत्त्वहैं। ये पांचों ही गुण पर्यायसहित हैं और उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मकहैं। इनमेंसे पुद्गलके छह और आकाशके दोभेद है।

५६१। अजीव तत्त्व किसे कहते हैं—जो जीव न हो उसे अजीव कहते हैं अर्थात् जिसमें जीवका चेतना लक्षण न पायाजाय उसे अजीवतत्त्व कहते हैं।

५६२। पुद्गलों के छह भेद कौन २ हैं—सूक्ष्मसूक्ष्म, सूक्ष्म, सूक्ष्मस्थूल, स्थूलसूक्ष्म, स्थूल और स्थूलस्थूल ये छह भेदपुद्गलोंके हैं जोपुद्गलपृथक् २ परमाणुरूपहैंउन्हेंसूक्ष्मसूक्ष्मकहतेहैं जोपुद्गलज्ञानावरणादिअष्टकर्मरूपपरिणतहोगयेहैं वेसूक्ष्मकहलातेहैं। जोपुद्गलनेत्रगोचर

नहोंहोतेकिंतुअन्यस्पर्शनरसनाघ्राणऔरश्रोत्रइंद्रियोंसे जानेजातेहैं ऐसेसुगंधस्वादशब्द आदिपदार्थसूक्ष्मस्थूल हकलातेहैं। छायाआतापउद्योतआदि पदार्थ जोनेत्रगोचर तोहैंकिंतु पकड़नेमें नआवें उन्हेंस्थूलसूक्ष्मकहते हैं। जल वायुआदि स्थूल पदार्थ कहजाते हैं और पृथ्वी पर्वत स्थूलस्थूलकहेजाते हैं इनकेसिवाय, अणु और स्कंधों केभेदसे और भी अनेक भेद होते हैं।

५६३। पुद्गलोंके स्वाभाविक गुण कौन२ हैं-स्निग्ध, रूक्ष, लघु, गुरु, मृदु, कठिन, शीत, उष्ण ये आठ स्पर्श, सुगन्ध, दुर्गंध भेदसे दोगंध, मीठा कड़वा चिरपराकषायला खट्टा येपांचरस तथास्वेतपीतनीलकृष्णरक्त येपांचवर्ण। इसप्रकारयेबीसगुणजबपरमाणुमेंएक अविभागोप्रतिच्छेदरूपसे रहतेहैं तब स्वाभाविकगुण कहलातेहैं।

५६४। पुदगलोंके वैभाविक गुण कौन २ हैं-येउपर्युक्तस्पर्शादिकबीसगुण जबपुद्गलस्कँधमें अनेक अविभागप्रतिच्छेदरूपसे रहतेहैं तब वैभाविकगुण कहलाते हैं।

५६५। पुदगलोंके स्वभाव पर्याय कौन २ हैं—पृथक् २ परमाणु स्वभाव पर्याय हैं।

५६६-पुद्गलोंकी विभाव पर्याय कौनर हैं—शब्द, बंध, सूक्ष्म, स्थूल, संस्थान, भेद, तम, छाया, उद्योत, आतप, आदि स्कँधरूप सब विभाव पर्याय हैं।

५६७। ये पुदगल, जीवोंका क्या उपकार करते हैं-शरीर, बचन, मन, स्वासोच्छ्वास, सुख, दुख, जीवित, मरण, तथा रोग, आरोग्यआदि अनेकप्रकारसेयेस्कँधरूपपुद्गलनित्य जीवोंकाउपकारकियाकरतेहैं। अर्थात् शरीरबचनादिके द्वाराजीवोंकाजोउपकारहोताहैयहपुद्गलकाहीउपकारहै

५६८। जीव क्या उपकार करते हैं-जीव परस्पर उपकार करतेहैं। जैसे गुरु सदुपदेश देकर शिष्यकाउपकार करताहै और शिष्य सेवा वैयावृत्तिआदिसे गुरुका उपकार करता है इसीप्रकार संपूर्णजीव परस्पर एक दूसरेका उपकार किया करते हैं। ये जीव अन्यपुद्गल; धर्म अधर्म आदि द्रव्योंका कभी कुछ उपकार नहीं करते।

५६९। धर्मद्रव्य किसे कहते हैं-जो गमन करनेमें सहायक हैं, निष्क्रियहै, नित्यहै, अमूर्त्तहै, तीनों लोकोंमें व्याप्त असंख्यातप्रदेशीहैऔरगुणवान्हैउसेधर्मद्रव्यकहते हैं।

५७०। इस धर्मद्रव्यका मुख्य गुण क्याहै-मछलीको जलके

समान गतिरूप परिणमें जीवपुद्गलोंके गमन करने में सहायक होना ही इसका मुख्य गुण है।

५७१। अधर्मद्रव्य किसे कहते हैं-जो लोकमें व्याप्त है, असंख्यातप्रदेशी है, अमूर्त्त है, निष्क्रिय है, नित्य है और जीव पुद्गलोंकी स्थितिमें सहायक है वह गुणवान् अधर्मद्रव्य है।

५७२। अधर्मद्रव्यमें कौनसा मुख्य गुण है पथिकोंको छायाके समान स्थिररूप परिणमें जीवपुद्गलोंको स्थिर होने में सहायता करना ही इसका मुख्य गुण है।

५७३। आकाशद्रव्य किसे कहते हैं-जो नित्य, निष्क्रिय, अमूर्त्त, और संपूर्ण पदार्थोंको अवकाश देने वाला है तथा जिसके लोकाकाश और अलोकाकाश ये दो भेद हैं उसे आकाश द्रव्य कहते हैं।

५७४। लोकाकाश किसको कहते हैं-जितने आकाशमें जीव पुद्गल धर्म अधर्म और काल ये पांच द्रव्य देखे जाते हैं उतने आकाशको लोकाकाश कहते हैं ऐसे इस लोकाकाशके असंख्यात प्रदेश हैं।

५७५। अलोकाकाश किसे कहते है-जो अन्यसंपूर्ण द्रव्यों से भिन्न, अमूर्त्त और अनंतप्रदेशी एक अखंड द्रव्य

है उसे आलोकाकाश कहते हैं।

५७६। आकाशका मुख्य गुण क्याहै-संपूर्ण द्रव्योंको अवकाश देना ही आकाशका मुख्य गुणहै।

५७७। इस अखंड आकाश द्रव्यकी पर्यायें कौन२ है-व्यवहारनयसे घटाकाश मठोकाश आदि अनेक पर्याय हैं।

५७८। काल किसे कहते हैं—जो पदार्थोंकी नवजीर्णादि अवस्था बदलनेमें कारणहै अमूर्त्त और निष्क्रिय है गुणवान् है तथा जिसके निश्चय और व्यवहार ये दो भेदहैं उसे कालद्रव्य कहते हैं।

५७६। निश्चयकाल किसे कहते हैं-रत्नोंकी राशिके समान लोकाकाशके एक२ प्रदेश पर पृथक२ एक२ कालाणु स्थित है और उन कालाणुओंकी संख्या लोकाकाशके प्रदेशोंके समान असंख्यात है जिनशासनमें इन्हीं असंख्यात कालाणुओंको निश्चयकाल कहतेहैं

५८०। इस निश्चयकालका मुख्य गुण क्याहै--जीवादि कद्रव्योंके परिणमनमें तथा स्वकीय परिणमनमें सहायता करना ही इसका मुख्य गुण है।

५८१। व्यवहारकाल किसे कहते हैं--समय घडी घंटा पहर दिन महीना वर्ष आदि व्यवहारकाल कहलाताहै।

५८२। व्यवहारकालके गुण क्या हैं--जीव पुद्गलादि पदार्थों को उनकी पर्यायों द्वारा नवीनसे जीर्ण कर देना व्यवहारकालका मुख्य गुण है।

५८३। व्यवहारकालकी पर्यायें कौन २ हैं--समय पहर दिन वर्ष आदि इसकी अनेक पर्याय हैं।

५८४। छह द्रव्य कौन २ कहलाते हैं--उपर्युक्त धर्म अधर्म आकाशकाल पुद्गल और जीव ये ही छह द्रव्य श्री जिनेन्द्रदेव ने कहे हैं।

५८५। पंचास्तिकाय कौन २ कहलाते हैं--काल द्रव्य के विनाजीवादिक पांच द्रव्यही पांच अस्तिकायकहलाते हैं। जिसकी सत्ता विद्यमानहो और जो बहुप्रदेशी हो उसे अस्तिकाय कहते हैं। काल बहुप्रदेशी न होने से अस्तिकाय नहीं है।

५८६। पुद्गलपरमाणु भी एकप्रदेशी है फिर उसकी अस्तिकाय संज्ञा क्योंहै--उपचारसे है क्योंकि वहअन्य किसी स्कन्ध मेंमिलकर बहुप्रदेशी होसक्ता है इसलिये शक्ति की अपेक्षासे उसे अस्तिकाय कहते हैं।

५८७। उपचारसे कालाणु भी काय क्यों नहीं कहलाता--क्योंकि उसमें न स्निग्धगुणहै औरनरूक्षगुण। स्निग्ध

वह रूक्ष गुणके बिना बंध नहीं होसक्ता और बिना बंधके वह कभी किसी स्कँधमें मिल नहीं सकता इसलिये वह कालाणु उपचारसेभी। अस्तिकाय नहीं होसकता।

५८८। प्रदेश किसेकहतेहैं—आकाशके जितने भाग को एक अविभागी पुद्गलपरमाणु रोक लेता है उसे प्रदेश कहते हैं

५८९। यह अजीवतत्त्व ग्रहणकरने योग्य है अथवा छोड़ने योग्य-अजीव तत्त्व केवलतत्वोंके विचार करते समय ग्राह्यहै और ध्यान करते समय हेय है। ध्यानके समय केवल जीवतत्त्व ही ग्राह्य है।

५९०। पुद्गलकी स्वाभाविक मंदगति कैसी है तथा स्वाभाविक शीघ्र गति कैसी है—पुद्गल परमाणु एक समयमें अपनी स्वाभाविक मंदगतिसे आकाशके प्रदेशसे दूसरेप्रदेशतक जा सकता है और शीघ्र गतिसे चौदह राजू तक गमन कर सकताहै।

५९१। आस्रव तत्त्व किसे कहते हैं—आत्माके प्रति जोकर्मरूपसे परिणत हुए पुद्गल परमाणु आते हैं उसे आस्रवतत्त्व कहते हैं वह आस्रव दोप्रकारका है एक भावास्रव और दूसरा द्रव्यास्रव।

५६२। भावोस्रव क्या है-आत्माके जिनरागद्वेषादिपरि-णामोंसे निरंतर कर्म आते हैं उन्हें भावास्रव कहते हैं।

५६३। द्रव्यास्रव किसे कहते हैं--रागद्वेषादि भावास्रवके निमित्तपाकर आत्माके प्रति जो कर्म समूह आते हैं उसे द्रव्यास्रव कहते हैं।

५६४ भोवास्रव के कारण कौन२ हैं—मिथ्यात अविरत प्रमाद कषाय और योग ये पांच भावास्रवके कारण हैं, येही अनर्थोंके समुद्र हैं।

५६५ मिथ्यात्व किसे कहते हैं—अल्पज्ञानियोंने जिनशास-न से अन्यजो मिथ्यामत कल्पना करलिये हैं उन कोमानना वा भला समझना मिथ्यात्व है। संक्षेप से मिथ्यात्वके पाच भेद हैं एकांत विपरीत वैनयिक सांशयिक और अज्ञान इनमेंसे भी प्रत्येकके अनेक भेद हैं और वे सब नरकके कारण हैं।

५६६। एकांत मिथ्यात्व किसे कहते हैं—आत्माको किसी प्र-कारकर्त्ता वाभोक्तानहींमाननाउसेसर्वथाक्षणिकहीमा-नना इत्यादि बौद्धादिकल्पित सर्वथा एक धर्मात्मक ही पदार्थोंका स्वरूपमानना एकांतमिथ्यात्व कहलाता है

५६७। विपरीत मिथ्यात्व किसे कहते है—रागी द्वेषी वा

स्त्रीआयुध सहितदेवों को पूजना, परिग्रह सहित रागी द्वेषीभेषी गुरुओंको पूज्य समझना, जीवोंको घात करने वाली यज्ञादिक क्रियाओं को धर्म मानना, गाय आदिपशुओंकोनमस्कारकरना, अतिथिदान समझकर चील कौवोंकोनिरंतर खिलाना आदिजो ब्राह्मणोंने अनेकप्रकार कल्पनाकररक्खीहैं उन्हेंविपरीत मिथ्यात्वकहतेहैं

५९८। वैनयिकमिथ्यात्व किसेकहतेहैं-अपने कल्याणार्थसंपूर्ण गुणियोंको संपूर्णदेव कुदेवोंको नमस्कार करना उनकाविनय करना आदि तापसादि प्रणीत वैनयिक मिथ्यात्व कहलाताहै।

५९९। सांशयिकमिथ्यात्व किसे कहतेहैं—केवलीभगवान्‌को कवलाहारी मानना, स्त्रीको उसी भवमेंमुक्त होना मानना मुनिअवस्था में भी स्वेच्छानुसार अन्नपान ग्रहण करना, धर्मोपकरण मानकरलकड़ीरखना भोजनके पात्र रखना कठिनबालोंकी पीछी रखना आदि स्वेतांबर जैन सांशयिक मिथ्यादृष्टी कहलाते हैं।

६००। अज्ञान मिथ्यात्व किसे कहतेहैं-किसी कल्पित ईश्वरको सृष्टिका कर्त्ता मानना भक्ष्य अभक्ष्य आदिका कु-

छ विचार नहीं करना आदि म्लेच्छोंसे उत्पन्न हुआ धर्म अज्ञान मिथ्यात्व कहलाता है।

६०१। अविरति क्या है-मन और पंचइन्द्रियोंके विषयों, कोस्वइच्छानुसार सेवनकरना तथा षट्कायके जीवोंको रक्षा न हिंकरना यहबार प्रकारकीअविरति कहलाती।

६०२। प्रमाद कौन कौन हैं—राजकथाचोरकथा स्त्रीकथा भोजनकथा, येचार विकथा, क्रोध मान माया लोभ ये चार दुष्कषाय धर्मको हरानेवाले पांचों इन्द्रियोंके पांच विषयतथास्नेहऔर निद्रा येपंद्रह प्रमाद हैंयेसब पापरूप शत्रुको बढ़ानेवालेमहाशत्रु हैं इसलिये यत्नाचाररूप खड्गके द्वारा इनका नाशकरना ही सर्वथा योग्य है।

६०३। कषाय कौन २ हैं-अनंतानुबंधी-क्रोध मान माया लोभ, अप्रत्याख्यान-क्रोध मान माया लोभ, प्रत्याख्यान-क्रोध मान मायालोभ, संज्वलन क्रोधमान माया लोभ तथा हास्यरति अरतिशोक भय जुगुप्सा स्त्रीवेद पुरुषवेद नपुंसकवेद ये नव नोकषाय। इसप्रकार सब पच्चीस कषाय हैं औरउत्तमक्षमादिकेद्वारानाशकरनेयोग्यहैं।

६०४। योग कितने हैं-पंद्रह। चार मनोयोग, चार वचन

योग, और सात कायायोग। सत्यमनोयोग, असत्यमनो योग उभयमनोयोग अनुभयमनोयोग ये चार मनोयोग कहलातेहैं। सत्यवचनयोग असत्यवचनयोग उभयवचनयोग अनु भयवचनयोग ये चारवचनयोगकहलातेहैं औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रियिकवैक्रियिकमिश्रआहारक, आहारकमिश्र और कार्मण ये सात कायायोग कहलाते हैं ये सब पंद्रहयोग हैं। शुभाशुभकरनेवालेयेहीहैं

६०५। अनादि कालसे लगे हुये महापाप मिथ्यात्वसे कैसाआस्रव होताहै-मिथ्यादृष्टियोंको मिथ्यात्वसे वह आस्रव होता है जिससे इस जीवको सातवें नरकतकके अनंत दुख भोगने पड़ते हैं।

६०६। अविरतियोंसे कैसा आस्रव होताहै-इँद्रिय और मन को वशमें नहीं रखनेसे तथा जीवोंका घात करनेसे निरंतर महापापका आस्रव होताहै जिससे इस जीवको अपरिमित दुःखसागरमें अनेक गोते खाने पड़तेहैं।

६०७। प्रमादसे कैसा आस्रव होताहै-विकथा अशुभध्यान वृथा वृक्षादिकोंका घातकरना आदि प्रमाद करनेवाले जीवों के निरँतर पापका आस्रव ही होताहै।

६०८। कषायसे कैसा आस्रव होता है-संसारके अनँतदुःख

ने नेवाला और पापकर्मोंकी अनंत परंपरा संततिको बढ़ाने वाला आस्रव।

६०९। योगोंसे कैसा आस्रव होताहै-योग दो प्रकार के हैं शुभ और अशुभ। शुभयोगोंसे शुभास्रव होताहै शुभास्रवसे इसजीवको सुखकी सामग्रीमिलतीहै और अशुभास्रवसे दुःखकी सामग्री मिलती है।

६१०। मिथ्यात्वरूप शत्रु किस प्रकार नष्ट होता है-सम्यग्दर्शनरूपी तीक्ष्ण बाणोंके प्रहार से।

६११। अविरतियों का नाश कैसे होता है-जीवों पर दया करने और इंद्रियोंको निग्रह करने से।

६१२। प्रमादोंको किसप्रकार नष्ट करना चाहिये-धर्म यम नियम आदि पालन करने और यत्नाचारपूर्वक प्रवृत्ति रखने से प्रमाद नष्ट होते हैं।

६१३। कषाय किसप्रकार जीतने चाहिये क्षमा मार्दव आर्जव और संतोष के द्वारा अर्थात् क्षमा के द्वारा क्रोध मार्दवके द्वारा मान, आर्जव के द्वारा माया और संतोष के द्वारा लोभ जीतना चाहिये।

६१४। योगोंका निग्रह किसप्रकार किया जाताहै-ध्यान अध्ययन आदि आयुधोंकेद्वारा योगोंका निग्रह होताहै। इस

प्रकार अपने२ प्रतिपक्षियोंकेद्वारा मिथ्यात्व अविरति प्रमाद कषाय योग इन सबका नाश होता है।

६१५। कर्मोंका आस्रव होता रहनेसे क्या होताहै-सदा अशुभास्रव होनेसे व्रत यम नियम पालन करना, मनुष्ययोनिमें जन्म लेना, तपश्चरण करना, दीक्षा लेना आदि सब व्यर्थ होजाते हैं।

६१६। इसका क्या कारणहै अर्थात् अशुभास्रव होते हुए तपश्चरणादि सब व्यर्थ, क्योंहो जातेहैं--क्योंकि व्रत तपादिके द्वारा जितने कर्मोंका निरोध होताहै उससेअधिककर्मोंका आस्रवहोजाताहै जिससेसंसारकीवृद्धिहीहोतीहै। तपश्चरणादिकेद्वारामोक्षप्राप्तहोनाचाहियेथासोनहीं होता अतएवउअकेद्वाराकियेहुयेतपश्चरणादिसबव्यर्थही हैं।

६१७। भगवन् इसे किसी दृष्टांतकेद्वारा समझाइये--जैसे ऋण (करज) लेनेवाला पुरुषवार२ ऋणलेताहै और बार २ चुकाता रहता है परंतु वह देने लेनेसे कभी सुखी नहीं होता सदादुखीही रहताहै इसीप्रकार जिसजीवके सदा कर्मास्रव होता रहता है वह सदा दुःखीही रहताहै।

६१८ आस्रवको इतना दुःखप्रद समझकर सज्जनोंको क्याकरना चाहिये-अपनी इंद्रियोंका निग्रहकर पूर्णप्रयत्नोंसे समस्त

कर्मोंके आस्रवका निरोध करना । सर्वथा उचितहै ।

६१९ । बंध किसे कहते हैं-आये हुये कर्म पुद्गलोंके साथ आत्माके प्रदेशोंका संबँध होना बंध कहलाता है । वह दो प्रकारका है भावबंध और द्रव्यबंध ।

६२० । भावबंध किसे कहते हैं-आत्माके जिसरागद्वेषादि परिणामसे कर्मसमूह बंधते हैं उसे भावबँध कहतेहैं ।

६२१ । द्रव्यबंध किसे कहते हैं-भावबंधके द्वारा आत्मप्रदेश और कर्मप्रदेशोंका परस्पर मिलजाना द्रव्यबंध कहलाता है ।

६२२ । बंधके कितने भेद हैं-चार । प्रकृतिबंध, स्थितिबंध अनुभागबंध और प्रदेशबंध ।

६२३ । प्रकृतिबंध किसे कहते हैं-ज्ञान दर्शन आदि आत्माके भिन्न२ गुणोंका घात करनेवाले भिन्न२ स्वभावरूप ज्ञानावरण दर्शनावरण आदि अनेक प्रकार कर्मसबंध को प्रकृति बंध कहते हैं ।

६२४ । स्थितिबँध किसे कहतेहैं--आत्माके साथ जितने दिनतक कर्म टिकतेहैं उसे स्थिति कहतेहैं वह स्थिति तीनप्रकारकी है उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य ।

६२५ । अनुभाग बंध किसे कहते हैं—कर्मोंमें सुखदुःखादि देनेकी शक्ति होना अनुभागबंध कहलाता है। इसीहीनाधिक शक्तिके अनुसार कर्मोंका उदय हुआ करताहै।

६२६। प्रदेशबंध किसे कहते हैं--आत्मप्रदेशोंके साथ प्रति समय जो अनंतानंत कर्मवर्गणाओं का बंध (एकपना) होता है उसे प्रदेश बंध कहते हैं।

६२७। प्रकृतिबंध और प्रदेशबंध किससे होता है--मन वचन कायके योगोंसे।

६२८। स्थितिबंध और अनुभागबँध किससे होताहै—कषाय समूहसे।

६२९। यह जीव कर्मबंधसे दुःखी कैसे रहता है—जैसे रस्सी साँकल आदिसे बंधाहुआ कोई पुरुष बंदीगृहमें पड़ा २ अनेक दुःख भोगता है उसीप्रकार कर्मबंधसे बंधा यह आत्मा नरक निगोदादि दुर्गतियोंमें पड़ा२ अनेक प्रकारके दुःख भोगता रहता है।

६३०। यह समझकर बुद्धिमानोंको क्याकरना चाहिये—रत्नत्रय और तपश्चरण आदि शास्त्रोंकेद्वारा शीघ्रही बँधरूप शत्रुका नाश करना चाहिये और तीनों लोकोंके साम्राज्यरूप मोक्षकी प्राप्ति करना चाहिये।

६३१। आस्रव और बंध हेय हैं अथवा उपादेय-रागीगृहस्थियों के लिये पापास्रव और पापबंधकी अपेक्षा पुण्यास्रव तथा पुण्यबँध उपादेय अर्थात् ग्रहण करने योग्य है और पापास्रव तथा पापबँध सर्वथा छोड़ने योग्य है। क्योंकि ये दोनों ही अनेक अनर्थ उत्पन्न करनेवालेहैं। किंतु जो वीतराग मुनिहैं उन्हें पुण्यास्रव पुण्यबंध पापास्रव पापबँध सब छोड़ देने योग्य हैं।

६३२ संवर किसे कहते हैं—आते हुये कर्मरूप जल का निरोध करना सँवर है। वह दो प्रकारका है भाव सँवर और द्रव्यसंवर।

६३३। द्रव्यसंवर किसे कहते हैं—भावसँवरके द्वारा ज्ञानी पुरुषोंके जो कर्मास्रवरुक जातेहैंउसेद्रव्यसंवरकहतेहैं

६३४। भावसंवर किसे कहते हैं—आत्माका जो परिणाम कर्मास्रव रोकनेमें कारणहै उसे शुद्ध भावसंवर कहतेहैं

६३५। भावसंवर के कारण कौन२ हैं-पांच महाव्रत, पांच समिति, तीनगुप्ति, उत्तमक्षमादिक दशधर्म, बारह अनुप्रेक्षा, बाईस परिषहोंका विजय, पांच चारित्र, ध्यान, श्रुताभ्यास आदि भावसंवरके कारण हैं।

६३६। बारह अनुप्रेक्षा कौन२ हैं-अनित्य, अशरण, संसार

एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और उत्तमधर्म ये वैराग्यकी जननी बारह अनुप्रेक्षा कही जाती हैं।

६३७। अनित्यानुप्रेक्षा किसे कहते हैं-अपनी आयु, संपदा, घर, बंधु, स्त्री, कुटुम्ब आदि संपूर्ण परिग्रह बिजली के समान चंचल और क्षणस्थायी मानकर तद्रूपही उन का अनुभव अर्थात् उनके संयोग वियोगादिमें हर्ष विषादि नहीं करना अनित्यानुप्रेक्षा कही जातीहै।

६३८। तब फिर संसारमें नित्य किसको मानना-निर्वाण अर्थात् मोक्षही एक नित्य और उत्कृष्ट तत्त्वहै। अनंतगुणों और कल्याणोंका सागरभी यहीहै। तपश्चरण और रत्नत्रयके द्वारा सज्जनोंको यह प्राप्तहो सक्ताहै।

६३९। अशरणानुप्रेक्षा किसे कहते हैं-जैसे सिंहके मुखमें पड़े हुये हरिणको कोई नहीं बचा सकताउसी प्रकार इस जीवको भी रोग क्लेश और मृत्यु आदि दुःखों से कोई नहीं बचा सक्ता है। इस प्रकार सबको अशरण चिंतवन करना अशरणानुप्रेक्षा है।

६४०। क्या मंत्र तंत्र औषधी आदि शरण नहींहै अर्थात् क्या इन से यह जीव नहीं बच सक्ता-नहीं। क्योंकि मँत्र तंत्र और

ओषधीवाले जीवभी रोग क्लेश और मृत्यु आदि से दुःखी देखे जातेहैं । इसलिये सिद्धहै कि इस जीव का मंत्र तंत्रादि कोई शरण नहीं है।

६४१ । क्या देवभी इस जीवको मृत्यु आदिकसे नही बचा सक्के नहीं। क्योंकि आयु पूरण होनेपर उन्हें स्वयं इंद्र अह-मिंद्र आदि ऊँचे २ पद छोड़कर कालके मुखमें जाना पड़ता है । जब वे अपनी ही स्वयं रक्षा नहींकर सकते, तब वे दूसरोंकी रक्षा कैसे कर सकते हैं ।

६४२ । मंत्र तंत्रादि करनेसे रोगी पुरुषोंको क्या फल मिलता है- उनके रोग क्लेशादि निरंतर बढ़ते चलेजातेहैं और यह शेष जीवनभी उन्हें निःशेष करदेना पड़ताहै क्योंकि मंत्र तंत्रादि करना मिथ्यात्वहै । मिथ्यात्वसे पापास्रव होता है और पापसे रोगक्लेशादि बढ़तेहैं ।

६४३। तब फिर मंत्रवादी मंत्र तंत्रादि क्यों करते हैं--वे संसारको ठगनेवाले धूर्त्त और अज्ञानीहैं मंत्रवादी लोग केवलअपनापेटभरनेकेलियेहीयेसबढोंगकियाकरते हैं

६४४। किसप्रकार जानना चाहिये कि यह सब उनकीधूर्तताऔर ढोंग है वे लोग पलपलपर झूठ बोलतेहैं मंत्र तंत्रादिके बदले में द्रव्य लेतेहैं और तरह२ के विचित्र उन्मार्ग

(धर्मविरुद्ध तथा लोकविरुद्ध कार्य) किया करते हैं जिनसे स्पष्ट जान पड़ता है कि वे सब मंत्रतंत्रादि करना केवल उनकी धूर्तता और ढोंग है।

६४५। ऐसे लोग कौन हैं-जो घर २ अपना मस्तक नचाते फिरते हैं ऐसे भील और उनकी स्त्रियां आदि हैं जो महापापी पाखंडी और दुष्ट होते हैं।

६४६। कैसे मालूम हो कि ये लोग वास्तवमें धूर्त और ढोंगी हैं-जो लोग हर किसीके सुख दुःखादिको यों ही यद्वा तद्वा पूछा करते हैं अथवा जो अपना शरीर जलाकर अज्ञानी लोगोंको झूठा विश्वास दिलाया करते हैं समझलेना चाहिये कि ये लोग अवश्य महामूर्ख, धूर्त और ढोंगी हैं।

६४७। तब फिर रोग क्लेशादिको शांत करनेकेलिये क्या उपाय करना चाहिये--संपूर्ण अनिष्ट शांत करनेकेलिये तपश्चरण करना चाहिये नमस्कारादि मंत्रोंका जप करना चाहिये अथवा पंचपरमेष्ठियोंकी पूजा करनी चाहिये।

६४८। संसारमें शरण कौन हैं—जगत्प्रसिद्ध अरहंत, सिद्ध भगवान् आचार्य, उपाध्याय, साधु और केवलीप्रणीत धर्म ये ही सबके रक्षक और शरण हैं।

६४९। ये अरहतादिक ही शरण क्यों हैं—क्योंकि अरहँत, सि

द्ध, साधु और केवली प्रणीत धर्म ये ही चारों मंगलदा यक हैं ये ही लोकोत्तम हैं और येही उत्तम शरण हैं। इनके सिवाय न तो कोई मंगलदायक है न लोकोत्तम है और न कोई शरण है।

६५०। इन चारोंकी शरण लेनेसे क्या लाभहोताहै—जैसे वायुकेचलनेसे मेहविलीन होजाते हैं उसीप्रकार इनअरहंतादिकी शरणलेनेसे रोगक्लेश आदिसंपूर्ण दुःख क्षणभर मेंनष्ट होजातेहैं इसमें तनिकभी संशय नहींहै।

६५१। इन अरहन्तादिकोंकी शरणलेनेसे और क्या लाभ होताहै. पाप सब नष्ट होजातेहैं उत्कृष्ट धर्मकी प्राप्ति होती है और तीनों लोकोंकी शोभा और सुखके सुमुद्ररूप मोक्षकी प्राप्तिहोतीहै।

६५२। अरहंतादिकी शरणलेनेसे पाप सब नष्ट होजाता है और मोक्षादिकी प्राप्ति होती है यह बात क्या कहीं प्रत्यक्षभी देखपड़तीहै-हां अवश्य। क्योंकिजो पुरुष संसारके दुःखोंसे अतिशय संत्रस्त होजाते हैं। वेमोक्ष प्राप्त होनेके लियेअन्य सबको छोड़करकेवल इन्हीं अरहंतादिका शरण लेते हैं। क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि इनकी शरण लेनेसे अवश्य मोक्षप्राप्तहोता है किंतु अवश्य सिद्ध होता है।

६५३। इन अरहन्तादिकोंका ऐसा अद्‌भुत माहात्म्य जानकर पंडितोंको क्या करना चाहिये—ऐहिक और पारलौकिक संपूर्ण पदार्थोंकी सिद्धि होनेके लिये इन्हीं अरहंतादिकों के चरणकमलोंका सेवन करना चाहिये।

६५४। ऐसा कौन है जो इसजीवको सदा शरण हो—अनंतसुखदेनेवालामोक्षहीइसजीवनकोसदाशरणहै संसारके दुःखोंसेभयभीतहुयेपुरुषोंकोतपश्चरणऔरसम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्रकेद्वारा यहीएकमोक्ष प्राप्तकरना उचित है

६५५। संसारानुप्रेक्षा किसे कहतेहैं-यह जन्ममरणरूप संसार अनंतहै दुःखोंका सागर है कल्याणरहित है अनादि अनिधनहै नित्यहै और पंचपरावर्तन द्वारा परिभ्रमणरूपहै इसप्रकार संसारका दुःखप्रद स्वरूप चिंतवन करनेको संसारानुप्रेक्षा कहतेहैं।

६५६। परावर्त्तन पाँच कौनर हैं-द्रव्य क्षेत्र काल भवऔर भाव। इनकेभेदसे संसारही पांचप्रकार कहलाता है।

६५७। द्रव्यसंसार किसे कहते हैं—द्रव्यसंसार (पुद्गलपरार्त्तन) दोप्रकारहै एक नोकर्मद्रव्यसंसार औरदूसराकर्मद्रव्यसंसार। औदारिक वैक्रियकआहारक इन तीनशरीर और [illegible] प्तियोंके योग्य पुद्गलवर्गणाओंको नो-

कर्म और ज्ञानावरणादिकी कर्म संज्ञाहै। यहजीव प्रति समय एक अनंत नोकर्मवर्गणाओंकाग्रहणकरता रहताहै। मानलोकि किसीजीवनेएकसमयमेंनोकर्मवर्गणाग्रहणकी औरवे द्वितीय तृतीयआदि समयमें निर्जीर्ण होगईं। उनवर्गणाओंकी जितनीसंख्याथो और जितना उनमें स्निग्ध रूक्ष वर्ण गंध तथाइनका तीव्र मध्यम मंद परिणामकोलिये जबयहजीव ग्रहणकरे तब एकनोकर्मसंसारहोताहै। मध्यके अपरिमित समयमेंएकजोवने अनंतअग्रहोतवर्गणाग्रहणकी अनंतमध्यग्रहीत और अनंत मिश्रवर्गणा ग्रहणकी परंतु वे सब गिनतीमें नहीं हैं।

इसीप्रकार किसीजीवने किसीसमयमें ज्ञानवरणादि कर्मोंकेयोग्य पुद्गलवर्गणा ग्रहणकी और वे द्वितीय तृतीयादिसमयमें निर्जीर्ण होगईं। उनवर्गणाओंकोभी जितनीसँख्या औरजितनाउसमें स्निग्ध रूक्ष वर्ण गंध तथो इनका तीव्रमंदमध्यम परिणाम था कालांतरमें वहजीवउतनीही संख्या और परिणामको लिये उन्हीं वर्गणाओंकोजबग्र .णकरेगातब एकद्रव्यकर्मसंसारगिनाजायगा। मध्यमेंअगृहीतमिश्र वा मध्यगृहीत अनंत

बार ग्रहण करेगा परंतु वहग्रहण इसपरिवर्त्तनकोगिन-
तीमें नहींहै। इसप्रकार इससंसारमें भ्रमणकरतेहुएइ
स जीवनेनोकर्मकेयोग्य तथा ज्ञानावरणादि अष्टकर्मोंकी
सँपूर्ण पुद्गलवर्गणायें अनंतवार ग्रहणकोऔर छोड़दीं
इसप्रकारके विस्तृतपरिभ्रमणको द्रव्यसंसार कहते हैं।

६५८। क्षेत्र संसार क्या है—कोई सूक्ष्मनिगोदियाअपर्या
प्तकजीवजघन्य अवगाहनाके शरीरकोधारणकर मेरुके
नीचेलोकके मध्य भागमें जन्मले और वहइसप्रकार जन्म
लेकि जिसमें उस जीवके मध्यकेआठ प्रदेशलोकके मध्य
के आठप्रदेशोंमेंआजांय। आयु पूर्ण होनेपर मरजाय।
फिरसंसारमें भ्रमणकरकिसी कालमें वहीं उसी प्रकार
जन्मलेकरफिर संसारमेंभ्रमणकरवहीं उसीप्रकार जन्म
ले। इसप्रकार भ्रमणकरता२ असंख्यबार वहींउसी प्र-
कार जन्म ले। अनंतर एकप्रदेश अधिकक्षेत्रमें जन्मले।
फिर भ्रमणकरता२ किसीकालमें दोप्रदेश अधिकक्षेत्रमें
जन्मले। इसीप्रकार श्रेणीवद्धक्रमसे एक२ प्रदेश बढता
हुआ लोकाकाशके सम्पूर्णप्रदेशोंमेंजन्मले क्रमरहित प्र-
देशोंमें जन्मलेना इसमें शामिल नहींहोता इस प्रकार

जितने अपरिमितकालमें वहजीव अपनेजन्मद्वारालो-काकाशकेसंपूर्ण प्रदेशपूरा करे उतना उसकावह अप-रिमितकाल क्षेत्रपरिवर्त्तन कहलाता है ।

६५६। कालसंसार क्या है—कोई जीव उत्सर्पिणीकालके पहिलेसमयमें उत्पन्न हुआ। मरकरसंसारमें भ्रमणकरता२ फिरकिसी दूसरीतीसरीयाचौथो उत्सर्पिणीकाल के दूसरे समयमेंउत्पन्न हो इसीप्रकार प्रत्येककिसी उत्सर्पिणीकेतीसरे चौथे आदिसमयमें जन्मलेकर क्रमसे उत्सर्पिणीके अवसर्पिणीके संपूर्ण समयोंको अपने जन्मद्वारापूराकरे। मरण द्वाराभी इसीप्रकार क्रमसे उत्सर्पिणी अवसर्पिणी केसब समयोंको पूरा करे। क्रमरहित मध्यके समयोंमें जन्म मरण करना इसमें शामिल नहींहै। इस प्रकारका सुविस्तृत परिभ्रमण एक कालपरिवर्त्तन व कालसँसार कहाजाता है।

६६०। भव संसार किसे कहते हैं—कोईजीव प्रथमनरकमें दशहजारकी जघन्यआयु पाकरउत्पन्न हुआ और आयु समाप्तकर मरगया तदनंतर फिरसँसारमेंभ्रमणकरता हुआ किसीकालमें वहीं उतनीहोआयु पाकरउत्पन्नहु-

आ और मरगया, पश्चात् फिर भ्रमणकरता २ तीसरी चौथीआदिबार वहींउसीप्रकार जन्म ले। इसप्रकार दश हजारवर्षकेसमयोंकेबराबर वहींजन्म ले, तदनंतर फिर किसीसमय मेंएक समय अधिक दशहजारवर्षकी आयु पाकर जन्मले, फिर किसीकालमें दोसमय अधिक दश हजारवर्षकी आयुपाकर जन्मले। इसप्रकारएक२ समय अधिक आयुपाकर जन्मलेता हुआ नरकायुकेतेतीससागर पूराकरे। क्रमप्राप्तआयुसे हीनाधिकआयुपाकर नरकमें जन्मलेना गिनतीमेंनहींहै। इसीप्रकारक्रमसेतिर्यंचयोनि औरमनुष्ययोनिकीअंतर्मुहूर्तसेलेकरतीनपल्य तककीआयुपाकरजन्मले फिर देवगतिमेंभी इसीप्रकार जघन्यदशहजार वर्षकोआयु लेकर इकतीस सागरतक कीआयुपाकर जन्म मरण करै। यहां सबजगह भी क्रम प्राप्त आयुसेहीनाधिक आयुपाकर जन्म मरण करना गिनतीमें नहींहै। इसप्रकार यह महा विस्तृत परिभ्रमणभवसंसार कहालाता है।

६६१। इस भवसंसार के परिभ्रमण में देवगतिकी तेतीससागरको आयु क्यों नहीं लीगई—नवग्रैवेयककी उत्कृष्टआयुइकतीस सागरहै। मिथ्यात्वयुक्त यहजीवनवग्रैवेयकतक ही जा-

ताहै इसलिये भव संसारकेपरिभ्रममें इकतीस सागर तककीआयुही लीगईहै। नवग्रैवेयकके आगे अनुदिश और अनुत्तरविमानोंमें सम्यग्दृष्टी जीवहीउत्पन्नहोते हैं जो किएक या दोभव धारणकर अवश्यमुक्त होजातेहैं। उन्हेंसंसारमें अधिक भ्रमणनहींकरनापड़ता। इसलिये उनकी आयु इसपरिभ्रमणमें शामिलनहीं है।

६६२। भाव संसार किसे कहते हैं—अनंतपरिणामोंकेद्वारसंसारमेंपरिभ्रमणकरना भावसंसारकहलाताहै। यहजीव कर्मोंकीस्थितिकेकारण संसारमेंभ्रमणकरताहै। स्थितिकेलिये कषायाध्यवसायस्थान कारणहैं और कषायाध्यवसायकेलिये अनुभागस्थानऔरअनुभागस्थानकेलिये योगस्थान कारणहोतेहैं। उत्कृष्ट मध्यमजघन्य जैसीस्थितिहोगी उसकेलिये वैसेहोकषायाध्यवसाय अनुभागाध्यवसायऔर योगाध्यवसाय कारणहोंगे।

मानलोकि किसी संज्ञी पँचेंद्रियपर्याप्तक मिथ्यादृष्टि जीवने भाव परावर्त्तन प्रारंभ किया उसके ज्ञानावरण कर्म की जघन्य स्थिति अंत:कोड़ाकोड़ी (करोड़ गुणित करोड़से भीतर) सागर पड़तीहै उसकी

उत्कृ जघन्य स्थिति केलिये असंख्यातलोकपरिमाणकषाया ध्यवसायस्थान कारणहोतेहैं (स्मरण१ हेकिएक २ कषायाध्यवसायस्थानमेंअनंतानँत अविभागीप्रतिच्छेदहोतेहैं और वेषट्स्थानपतित हानिवृद्धिरूपहोतेहैं)एक२ कषायाध्यवसायस्थानकेलियेअसंख्यातलोकपरिमाणअनुभागाध्यवसायस्थानकारणहोतेहैंएक२ अनुभागाध्यवसायस्थानकेलिये श्रेणीकेअसंख्यातभागपरिमाणयोगस्थानकारणहोतेहैं। अभिप्राययहहैकि-जघन्यस्थितिकेलियेजैसेजघन्ययोगस्थानचाहिये उनमेंसे [illegible]र चतुःस्थानवृद्धिहानिरूपहोताहुआ दूसराहुआ, तीसराहुआइसप्रकारजबउनकीसंख्याश्रेणीकेअसंख्यातवेंभागपरिमाणहोजायगी तबएकअनुभागाध्यवसायस्थानहोगाफिरइसीप्रकारदूसराअनुभागाध्यवसायस्थानहोगा। इसप्रकार जबअसँख्यातलोकपरिमाणअनुभागाध्यवसायस्थान होजांयगे तब एक कषायाध्यवसाय स्थान होगा इसीक्रमसेदूसरातीसराआदि असंख्यात लोक परिमाणकषायाध्यवसायस्थान होनेपर एकजघन्यस्थितिस्थानहोगा। यह जघन्यस्थितिस्थान उसपंचेंद्रियजी

वका वही अंतःकोड़ाकोड़ी सागर समझना चाहिये। अंतः कोड़ाकोड़ी सागरस्थिति के योग्य कषायाध्यवसाय स्थानपूर्णहोजाने परफिर एकसमय अधिक अंतःकोड़ाकोड़ीसागर स्थितिके योग्य कषायाध्यवसाय, पूर्ण हो जानेपर फिर एक समय अधिक अंतःकोड़ाकोड़ीसागर स्थिति के योग्य कषायाध्यवसाय, अनुभागाध्यवसाय और योगाध्यवसायस्थान लेने चाहिये। अनंतर दो समय अधिक अंतःकोडाकोडी सागरस्थितिकेयोग्य कषायाध्यवसायादि स्थान लेने चाहिये। इसप्रकार मूलोत्तरप्रकृतियोंकी जघन्यस्थिति सेलेकर उत्कृष्टस्थिति तकके योग्य संपूर्ण कषायाध्यवसाय अनुभागाध्यवसाय और योगस्थानरूप आत्माके परिणाम पूर्णहो जांय तब एक भावपरिवर्त्तन होता है।

द्रव्यपरिवर्त्तनका अनँतकाल है उससे अनंतगुणा क्षेत्रपरिवर्त्तनका, उससे अनंतगुणा कालपरावर्त्तनका, उससे अनतंगुणा भवपरावर्त्तनका और उससे अनंतगुणा भावपरिवर्त्तनका कालहै। इस जीवने अबतक ऐसे २ अनंत परावर्त्तन किये हैं।

६६३। कौनर जीव इन पंच परावर्तनोंमें परिभ्रमण किया करतेहैं- अव्रती मिथ्यादृष्टी जीवहो इनमें परिभ्रमण करते रहते हैं सम्यग्दृष्टीजीवोंकोकभीइनमेंभ्रमणनहींकरनापड़ता

६६४। इस संसारमें सुख कितना है और दुःख कितना—पांचों इंद्रियोंके विषयोंसे उत्पन्न हुआ सुख केवल सरसों के समानहै और उन विषयोंके सेवन करनेसे जो पापहोते हैं उनसे उत्पन्न हुआ दुःख मेरुपर्वतके समानहै।

६६५। तब फिर सांसारी जीव इस बातको क्यों नहीं जानते हैं- क्योंकि वे मोहनीय कर्मके उदयसे उन्मत्तके समान हो रहेहैं उन्हें कार्य अकार्यका कुछभी ज्ञान नहीं है, इस लिये वे नहीं जान सकते कि विषयभोग जरासा सुख दिखाकर अंतमें महादुःख देनेवाले होजाते हैं।

६६६। ज्ञानी लोग इन विषय भोगों से उत्पन्न हुए सुखको कैसा जानते हैं—ज्ञानीलोग जानते हैं कि विषय सेवन करनेसे अनंतपाप उत्पन्न होताहै और पापोंसे दुःखहोता है। इसलिये वे इस सुखाभासको संपूर्ण दुःखोंका निधान और अशुभ ही मानते हैं।

६६७। जो लोग पंचेंद्रियोंके सेवन करने से कल्याण और सुख चाहते हैं वे कैसे हैं--वे मूर्ख मिथ्यादृष्टी लोगकाल

कूट विष पीकर जीवित रहना चाहते हैं।

६६८। पंचेद्रियोंसे उत्पन्न हुये सुख निषिद्ध क्योंहैं—क्योंकिये सुख वास्तविक सुख नहींहैं। केवल भूख प्यास आदि दुःखोंके शांत करनेकेलिये एक प्रतीकारमात्र हैं जैसे किसी रोगके लिये कोई औषधि प्रतिकार हो।

६६९। यह बात कैसे प्रगटहो कि ये इंद्रियोंसे उत्पन्न हुए विषय भोग केवल भूख प्यास आदि दुःखोंके प्रतीकार मात्रही हैं-यदि भूख प्यास आदिका कोई किंचित् मात्रभी दुःख नहो और उस समय अच्छेसे अच्छाभी भोजन कियाजाय अथवा दूध-पानीआदि पियाजाय तो उस समय उस भोजनपानसे किंचित् सुख नहीं मिलताहै। यदि इंद्रियों से उत्पन्न हुये विषयोंसे सुखको प्राप्ति होती तो बिना भूख प्यासके भोजनपान करनेपरभी सुखकी प्राप्ति होनी चाहियेथी। किंतु नहीं होती इससे स्पष्टसिद्धहै कि विषयसेवन केवल प्रतीकारमात्रहै सुखजनकनहींहै।

६७०। तब फिर इस संसारमें चक्रवर्ती आदि महापुण्यवान पुरुष तो अवश्य सुखी होंगे-नहीं! क्योंकि उन्हेंभी मानभंग आदि अनेकदुःखदेखने पड़तेहैं। जैसेश्रीवृषभदेवतीर्थंकरके पुत्रभरतचक्रवर्त्तीको मानभंगकादुःखसहनकरना पड़ा,

६७१। संसारी जीवोंको कैसे २ दुःख भोगने पड़तेहैं--पापकर्म केउदयसेउन्हें अनेकप्रकारकेदुःखभोगने पड़ते हैं जैसे कोई किसी रोगसे दुःखीहै कोई किसी बंधु मित्रादिके विरहसेही पीड़ितहैं। कोई किसीके शोकमें ही डूबा है कोई दरिद्रताके दुःखभोगरहाहै कोई लोभके फंदेमें फंसकर विषयरूपी घोर अटवीमें(बनमें) इधर उधर घूम रहाहै। कोई सेवाकररहाहै कोई अन्य परिश्रमकर रहाहै कोई कामज्वरसे जरजरितहोरहाहै। कहांतककहाजाय वे लोग सदा दुःखी रहते हैं उन्हें कभी लेशमात्रभी सुख नहीं मिलता है।

६७२। भगवन्! कोई उदाहरण देकर समझाइये-जैसे गायके सींगोंसे दूध नहीं निकलता,दावानल अग्निसे कमल उत्पन्न नहीं होता सर्पके मुखमें अमृत नहीं रहता और विष भक्षण करनेसे जीवितव्य नहीं रहता। इसीप्रकार विषय सेवन करनेसे बुद्धिमानोंको लेशमात्र भी सुख कहीं नहीं देख पड़ता है।

६७३। तब फिर इस दुःखसागर संसारमें कोई सुखीहै या नहीं-हां है। जो वीतराग मुनीन्द्र हैं अथवा परम संतोषी हैं वे ही इस संसारमें सुखीहैं। इनके सिवाय सं-

सार में अन्य कोई सुखी नहीं है।

६७४। इन मुनियोंको कैसा सुख प्राप्त होता है-जो सुख परमोत्कृष्ट कहलाताहै, केवलज्ञानगोचरहै. ध्यानके द्वारा परमानंदस्वरूप आत्मासे उत्पन्न होताहै और जो चिंतारूपी अग्निसे सँतप्त हृदयवाले इंद्र चक्रवर्त्ती आदि महापुण्यवान् पुरुषोंको करोड़ों उपाय करनेसेभी नहीं प्राप्तहो सक्ता वह केवल आत्मजन्य सुख उन मुनियोंको सदा प्राप्त होता रहता है।

६७५। निश्चयनयसे मुनियों को किस सुख की प्राप्ति होती है—निर्वाणजन्य परम सुखकी।

६७६। बुद्धिमानों को वह निर्वाण किसप्रकार प्राप्त होता है—रत्नत्रयके द्वारा।

६७७। स्वात्महित चाहनेवालोंको यह शुद्ध व्याख्यानसुनकरक्या करना उचित है—तपश्चरणरूपी शस्त्रके द्वारा मोहोदय से उत्पन्न हुये इंद्रियरूपी शत्रुओंको दमनकरके शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करना चाहिये।

६७८। एकत्वभावना किसे कहते हैं—इस सँसारमें यह जीव अकेलाही उत्पन्न होताहै अकेलाही मृत्युको प्राप्त होताहै। अकेलाही सुखी, अकेलाही दुःखी, अकेलाही रो

गी-और अकेलाही निरोगी रहताहै। कर्मरूपी शत्रुके फँदेमें पड़ा हुआ यह जीव अकेलाहो चतुर्गतियोंमेंभ्रमण करताहै अन्य काईभी इसको सहायक नहीं हो सक्ता। इस प्रकार चिंतवन करनेको एकत्वानुप्रेक्षा कहते हैं।

६७६। यह जोव अपना कुटुंब पालन पोषण करनेकेलिये प्रतिदिन अनेक पाप किया करताहै उसकाफल किसर को भोगना पड़ता है—उन पापोंके करनेवाले इस जीवको ही वेसब पापों के कटुकफल भोगने पड़ते हैं। उन कटुकफलों से कुटुम्बी जन सर्वथा अलग रहते हैं।

६८०। वास्तवमें यह कुटुम्ब क्याहै-जैसे अनेक पक्षीगण इकट्ठे होकर केवल फल खानेकेलिये किसी फले फूले बृक्षपर बैठ जातेहैं और जब वह वृक्ष फलरहितहो जाता है तब वे सब पक्षी उसपरसे उड़जाते हैं। ठीक इसीप्रकार स्त्री पुत्र भाई बहिन आदि कुटुम्बी और स्वजन जन केवल अपने२ स्वार्थकेलिये इस कुलरूपी बृक्षपर आ बैठते हैं और चले जाते हैं।

६८१। 'यह स्त्री मेरीहै, यह पुत्र मेराहै, यह धन मेराहै, इत्यादि कहने और चिंतवन करने वाले लोगों का उन स्त्री पुत्रादिकों से क्या लाभ होता है-उन्हें उन स्त्री पुत्रादिकोंसे लाभतो कुछ नहीं

होता किंतु वे लोग रातदिन उनके लिये पापउपार्जन करते रहते हैं और अंतमें उन सबको छोड़कर दुर्गतियोंमें पड़े २ अनेक दुःख भोगा करते हैं।

६८२। हे नाथ! वास्तवमें यह कुटुम्ब कैसाहै-मोही जीवोंके लिये यह कुटुम्ब धर्मको नाश करनेवाला, पाप को बढ़ानेवाला और नरकका मुख्य कारण है।

६८३। इस जीवको कुटुम्बके निमित्तसे ऐसा पाप क्यों होताहै-क्योंकि मोही गृहस्थके दोनोंही शुभ ध्यान सर्वथा नहीं होते और वह कुटुम्बके लिये अनेक दुःख देने वाले महापाप उपार्जन किया करता है।

६८४। तब फिर कुटुम्बका क्या करना चाहिये—सर्वथात्याग

६८५। कुटुम्बको छोड़कर क्या करना चाहिये—बनमें जाकर दीक्षित हो जाना चाहिये।

६८६। दीक्षा लेकर क्या करना चाहिये-सँयम और तपश्चरणपालनकरनाचाहिये।एकत्वभावनाकाचिंतवनकरना चाहियेऔरसदाअपनेआत्मध्यानमेंहीलीनरहनाचाहिये

६८७। एकत्वभावनाके चिंतवन करनेसे क्याफल मिलताहै-एकत्वभावनाके चिंतवनकरनेसे कर्मक्षयहोजातेहैं कर्मों के अत्यंतक्षयहोजानेसे मोक्षगतिप्राप्तहोतीहै और वहां

इस आत्माको शुद्ध एकत्व सिद्धपद प्राप्तहो जाताहै।

६८८। घर कुटुम्बादिकोंमें ममत्व रखनेसे क्याहोताहै—अनेक पापऔरदुःखभोगनेपड़तेहैं आत्माकेममत्वरूप परिणामोंसेमरणसमयमें अशुभआर्त्तरौद्रादिकध्यानहोजाता है और अशुभ ध्यानसे अवश्यदुर्गतियोंमें पड़नो पड़ताहै।

६८९। इसका क्या कारणहै अर्थात् ममत्वरूपपरिणामोंसेइसेपाप और दुःख क्योंभोगने पड़तेहैं-क्योंकि इस जीवके प्रतिसमय निर्ममत्व(मोहनाममत्वरहित) परिणामोंसे अनंतकर्मों की निर्जराहोतीरहतीहै औरममत्वरूपपरिणामोंसेप्रति समय अनंत कर्मोंका आस्रव, बंध होता रहता है। इसलिये ममत्वरूप परिणामोंसे इसे सदापाप और दुःख ही भोगने पड़ते हैं।

६९०। यह सब समझबूझकर बुद्धिमानोंको क्याकरना उचितहै उन्हें सदा ध्यानरूपी अग्नि प्रज्वलितकर इसी एकत्व भावनाका चिंतवन करना चाहिये और वह चिंतवनभी इस प्रकार करना चाहिये कि जो आत्माज्ञानदर्शनस्व-रूपहै सम्यक्त्वरूपहै अनंतसुखका स्थानहै और अनंत-गुणोंकासमुद्रहै वह मेरा आत्माहीसदानित्यहैवहीमेरी संपत्तिहै। इसआत्मासेअन्यशरीरादिकमेरेनहींहैं वे तो

कर्मजन्य पौद्गलिक हैं। इनसे मेरा कुछ भी संबंध नहीं है इत्यादि।

६६१। अन्यत्व भावना किसे कहते हैं-ये पुत्र स्त्री गृह कुटुम्ब धनादिक मेरे आत्मासे बिलकुल भिन्न हैं मेरे नहीं हैं और न मेरा इनसे कोई संबंध है क्योंकि ये सब कर्मोदयसे होते हैं। जो२ कर्मोदयसे होते हैं वे सब आत्मासे भिन्न होते हैं इत्यादि चितवन करना अन्यत्व भावना कहलाता है।

६६२। पुत्र स्त्री शरीरादिक कहां और किसप्रकार आत्मासे भिन्न देखे जाते हैं—जन्ममरण जरा रोगक्लेश आदिके समय ये शरीरादिक प्रत्यक्ष आत्मासे भिन्न जानपड़ते हैं उस समय मूर्ख विद्वान सबको यह प्रतीति होजाती है। क्योंकि आत्मा ज्योंका त्यों रहता है जन्ममरणजरारोगादिक शरीरको ही होते हैं इसलिये ये आत्मासे अवश्य भिन्न हैं।

६६३। क्या इस आत्माके साथ २ उत्पन्न होनेवाले इंद्रिय और शरीर भी इस आत्माके निजके नहीं हैं-नहीं। ये इंद्रियशरीरादिक आत्माकेसाथ २ उत्पन्न होकर तथा सदा साथ२ रहकर भी इसी आत्माके उत्तम क्षमादिक अथवा सम्यग्दर्शनादिक धर्मरूपी रत्नोंके भीतरी चोर हैं। इसलिये ये कभी आत्माके निजके नहीं होसकते।

६६४। आत्माके खास प्रदेशोंके साथ होनेवाली मनवचनकायकी क्रियायें आत्माकी निजकी हैं या नहीं-नहीं। क्योंकि ये मनवचनकायकी क्रियायें कर्मके द्वारा दिये हुए दंडके समान हैं कर्मप्रायः इन्हींके द्वारा आत्माको दुःखादिक दिया करता है। इसके सिवाय नवीन दुष्कर्म आनेके लिये ये मूल कारण हैं शरीरको बधबंधनादिकमें डालनेवाली और अनेक अनर्थ उत्पन्न करनेवाली हैं। इसलिये ये मनबचनकाय की क्रियायें भी आत्माकी निजकी कभी नहीं होसक्तीं।

६६५। तब फिर आत्माका निजका क्या है-सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्ररूप स्वकीय आत्माही। इस आत्मा का स्वकीय (निजका) है। इस आत्मासे भिन्न शरीर पुत्र धनादिक इस आत्माके निजका कभी नहीं हो सकते।

६६६। अन्यत्वभावनाके चिंतवन करनेसे क्या लाभ होता है- -यह जीव सदा सुखी रहता है स्त्रीपुत्र धनादिके वियोग होनेपर भी इस भावनाके चितवन करनेसे इसको कभी दुःख नहीं होता किंतु, ऐसे समयमें भी इसका संवेग गुण सदा बढ़ता जाता है। यह अपूर्व लाभ केवल इसी भावनाके चिंतवन करनेसे होताहै।

६६७। इस भावनाके चितवनकरनेसे परलोकमें क्यालाभ होताहै

इन अनित्य शरीरादिकसे सर्वथा भिन्न शुद्धबुद्ध चिदानंदस्वरूप आत्माकी प्राप्ति होतीहै। अर्थात् अनित्यानुप्रेक्षाके चिंतवनकरनेसे शीघ्रही मोक्षकी प्राप्ति होती है।

६९८। अनित्यानुप्रेक्षाका ऐसा सुन्दर और उत्तम फल समझकर बुद्धिमानोंको क्या करना चाहिये—उन्हें शीघ्र मोक्ष प्राप्तकरलेनेकेलिये हृदयसे संपूर्णममत्वरूप परिणामछोड़कर शरीरादिकसेसर्वथाभिन्न शुद्ध बुद्ध चिदानंद स्वरूपअपने आत्माकाहीसदा चिंतवनऔरध्यान करतेरहनाचाहिये

६९९। अशुचिभावनाकिसे कहतेहैं—यहशरीर हड्डी मांस रुधिरसे बनाहुआ है मलमूत्रादिसेभराहुआ है महा अपवित्र और वीभत्स है इत्यादि चिंतवन करना अशुचि भावना कहलातीहै।

७००। वस्त्रालंकारादिकसे विभूषित यह शरीर बाहरसे शोभायमान दृष्टिगोचर होताहै परंतु यह भीतरसे कैसा है—ठीकवैसाही जैसेकि किसीचीज से ढके हुये मलमूत्रादिक।

७०१। इस शरीररूपी झोंपड़ेमें इसके साथ२ उत्पन्न होने वाली कौन २ अग्नि सदा प्रज्वलित रहताहै—इस शरीररूपझोंपड़ेमें क्षुधातृषाकाम क्रोध रोग कषाय आदि दुःसह दावानल सदा प्रज्वलित रहा करती है।

७०२। इस शरीरमें धर्मभक्षक कौन२—दुर्धर कषायादिक।

७०३ धर्मको हरण करनेवाले कौन २ इस शरीरमें रहते हैं—इंद्रियरूपी चोर।

७०४। जो लोग स्वेच्छानुचार अपनेशरीरका पालन पोषण करते हैं उन्हेंइसलोकमें क्या फल मिलता है और परलोकमें क्या मिलताहै-उन्हें इसलोकमें रातदिन सैकड़ों रोग क्लेशादिक घेरे रहते हैं और परलोकमें नीचगतियोंके अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं।

७०५। शरीरके पालनपोषणकरनेवालोंको रोग क्लेशादि दु:ख क्यों सहने पड़ते हैं—जिन्हें एक उपवास करनेको शक्ति है वे-एक उपवास भी नहीं करके जबकभी रोगी होतेहैं तब उन्हें महीनोंका लंघन करना पड़ताहै। भावार्थ-उपवासकरना आरोग्यताकाभी कारणहै महीनेमें दोचारउपवासअवश्यकरना चाहिये। जोपुरुषकभी उपवासनहीं करता निरंतरशरीरपुष्टकरतारहताहै वहअवश्यहोरोग ग्रस्तहोजाताहै औरउसे महीनोंकेलँघन करनेपड़तेहैं।

७०६। उपवासादिककेकरनेसे क्या लाभ होताहै—आरोग्यता बढ़जातीहै नेत्र इंद्रियोंका तेज बढ़जाताहै और परलोकमें स्वर्गमोक्षादिके सुख प्राप्त होतेहैं।

७०७। शरीर किसका सफल है—जिन्होंने तपश्चरण व्युत्सर्ग और ध्यानादिके द्वारा अपना शरीर कृश करलिया है उ ोंका वह शरीर सार्थक है तथा वही शरीर पूज्य है

७०८। सर्वथा असाररूप इस शरीरमें सार क्या है— स्वर्ग और मोक्षके साधनरूप तपश्चरण करना, धर्म पालन करना श्रेष्ठ आचरण पालना और यमनियमादिकका पालन करना ही इस संसारमें सार है।

७०९ वह सब समझकर और यह उत्तम मनुष्य शरीर पाकर बुद्धिमानोंको इससे क्या काम लेलेना चाहिये—बुद्धिमानोंको इसशरीरसे उत्पन्न हुये किंचित् सुखमें भूलना नहीं चाहिये किंतु इससे शीघ्रही स्वर्ग मोक्ष दिका उपाय संचय कर लेना चाहिये।

७१०। आस्रवानुप्रेक्षा किसे कहतेहैं—इस आत्माके मनवचनकायद्वारा जो प्रतिसमय कर्म आते रहते हैं उनका चिंतवन करना आस्रवानुप्रेक्षा है। इस आस्रवका स्वरूप चिंतवन करनेसे वैराग्य उत्पन्न होता है तथा संवरकी ओर चित्त बढता है।

७११ निरंतर कर्मास्रव होनेसे क्या होता है—कर्मास्रवसे ही यह जीव संसाररूपी समुद्रमें सदा गोते खाता रहता है और-

रअपरिमित पंचपरावर्त्तनोंमें भ्रमण करता रहता है। जैसे किसी नावमें छिद्र होजानेसे बराबर जल आ रहाहो तोवहनावशीघ्रहीडूब जाती है ठीकइसीप्रकार कर्म स्रव होनेसे यह जीव संसाररूप समुद्रमें डूबजाता है।

७१२। संवरानुप्रेक्षा किसेकहतेहैं—आतेहुएकर्मोंका रुकना कैसे हो इत्यादि विचारकरते रहना संवरानुप्रेक्षा कहीहै

७१३। संवरसे सज्जनोंको क्या लाभ होता है—जैसे किसी जहाजके छिद्रबंदहो जानेसेउसमें आता हुआपानी रुक जाताहै तब यहमनुष्य उस जहाजकेद्वारा शीघ्रही इष्ट स्थानपर पहुंचजाता है। ठीक इसीप्रकार संवरकेद्वारा यहजीव संसाररूपी समुद्रसे पारहोकर अपने इष्टस्थान मोक्षरूपीमहाद्वीपमें पहुंचजाता है।

७१४। निर्जरानुप्रेक्षा किसे कहतेहैं—तपश्चरणके द्वारा अथवा स्वतः स्थिति पूर्णहोजाने पर एकदेश कर्मका क्षय होना निर्जराकहलाती है। निर्जराका चिंतनकरना निर्जरानुप्रेक्षाकहलातीहै। यहनिर्जरा दोप्रकारकी है एक सविपाकनिर्जरा और दूसरी अविपाकनिर्जरा।

७१५। सविपाकनिर्जरा किसे कहते हैं—जोकर्म अपनाफल देकर स्वयंगलजातेहैं उसे सविपाकनिर्जरा कहतेहैं

यह सविपाकनिर्जरा प्रत्येक प्राणीके प्रतिसमयमें हुआ करतीहै और प्रायः संपूर्णकर्मोंको हुआकरतोहै।

७१६। अविपाक निर्जरा किसे कहते हैं—मुनिगणमोक्ष प्राप्तहोनेकेलिये घोर तपश्चरणकेद्वारा जाकर्मक्षय करते हैं वह अविपाकनिर्जरा है। यह अविपाकनिर्जरा ही साक्षात् मोक्षदेनेवाली है।

७१७। इन दोनों निर्जराओंमें कौनसी निर्जरा हेय हैं और कौनसी उपादेय है-संपूर्णजीवोंके स्वयं कर्मके उदयसे होनेवाली सविपाकनिर्जरा हीहेय अर्थात् त्यागकरने योग्य है क्योंकियहनिर्जरा अन्यनवीनकर्मोंका आस्रव करनेवालीहै अर्थात्जैसा२ कर्मोदयहोतारहताहै उसीप्रकार आत्माकेरागद्वेषादिरूप परिणामहोते रहतेहैं औरउनसे फिर नवीनकर्मोंका आस्रवहोता रहताहै,इसलिये स्वयं कर्मोदयसे होनेवाली सविपाकनिर्जरा सदा हेयहै।

७१८। उपादेयनिर्जरा कौनसी है—तपश्चरणादि के द्वारा मुनियोंके होनेवाली अविपाकनिर्जरा उपादेय अर्थात् ग्राह्यहै क्योंकि यहनिर्जरा हीसाक्षात् मोक्षप्रदहै।

७१६ कौनसीनिर्जरा श्रेष्ठ गिनी जाती है—जो निर्जरा संवर पूर्वकहोतीहै तथातपश्चरण संयम औरध्यानादिकेद्वा-

राहोती है और उसीभवमेंसाक्षात् मोक्ष देनेवालीहोती है वहनिर्जरा अतिशय श्रेष्ठ गिनीजातीहै ।

७२० इस उपर्युक्त निर्जरासे सज्जनोंको मोक्ष कैसेहो जाता है— ज्यों २ यह संवरपूर्वकनिर्जराहोती जातीहै त्यों २ मोक्ष भीसमीपहीआता जाताहै । क्योंकि संवरहोनेसे नवीन कर्मोंकाआना रुकजाता है और समय २ मेंकर्मक्षयहो-तेहोजातेहैं । ऐसीअवस्थामें संपूर्णकर्मअवश्य क्षय हो जांयगे । संपूर्णकर्मोंका क्षय होनाही मोक्षहै । इसलिये संवरपूर्वक निर्जरासे अवश्यमोक्ष प्राप्तहोताहै ।

७२१ । इस संवरपूर्वक निर्जरासे मोक्षकी प्राप्ति कब होती है— ध्यानादिकेद्वारा जब संपूर्ण कर्मक्षय होजाते हैं उसी समय उनयोगियोंको साक्षात् आत्मस्वभावरूप मोक्ष प्राप्तहोजाताहै ।

७२२ । निर्जराके गुण कौन २ हैं—सांसारिक दुःखोंका नाश होजाना, उत्तमसुख सद्धर्म तथा अनेकऋद्धियोंकी प्राप्ति होनाऔर केवलज्ञानादि उत्तमगुणोंकी प्राप्ति होना आ-दिनिर्जराकेउत्तम २ गुणहै ।

७२३ । निर्जराके ऐसे उत्तम गुण जानकर क्या करना चाहिये-- मोक्षार्थी पुरुषोंको अपनी संपूर्णशक्ति औरसंपूर्णयत्नोंसे

सँपूर्णकर्मोंकेनाश करनेवाली इस पूज्य निर्जरा होने का उपाय करना चा..ये।

७२४। लोकानुप्रेक्षा किसे कहते हैं—अधो मध्य ऊर्ध्वलोक-का चितवन करना सो तीनों लोकोंको प्रकाश करने वालीदोपकके समान लोका..प्रेक्षा है।

७२५। अधो मध्य ऊर्ध्व इन तीनोंलोकोंका आकार कैसा है—अधा..ोक वेत्रासन (मूढा) केसमाननीचे अधिक चौ-डा और ऊपरकम चौडाहै। मध्यलोक थालीके समान सपाट और गोल है और ऊर्ध्वलोक ठीक ..दंगक(प-खावजके) समान है।

७२६ यह लोक कृत्रिम है या अकृत्रिम। अर्थात् इसे किसीने बना-या है या नहीं-यह लोक न किसी ब्रह्मा ने बनाया है न किसी विष्णुने पालन.किया है और न किसी ईश्वरने (महेश) इसका प्रलयकिया है।

७२७। तब फिर यह लोक कैसा है--यह सदा नित्य और अकृत्रिम .। अधोलोक मध्यलोक और ऊर्ध्व..ोकक भे-दसे इसके तीन भेदहोगये हैं यह समस्त..ोक जीवा-दिद्रव्योंसे सर्वथा भरा हुआहै।

७२८। इसके अधोभागमें क्या है—सात नरक. । नरकों

में चौरासीलाख विल हैं और वे बिल सब नारकि-
यों से भरे हुये हैं।

७२६। लोकके मध्यभाग में क्या है—मध्यलोकमें असंख्यात द्वीप समुद्र हैं उनसबके मध्य भागमें जंबूद्वीप है इसका व्यास एकलाखयोजन है। जंबूद्वीप थालीकेसमान गोल है। इसके चारोंओर कंकणके समान लवणसमुद्र है। इसकी एकओरकी चौडाई दोलाखयोजन है। लवणसमुद्रके बाद धातकीद्वीप है। वह भी लवणसमुद्र को घेरे हुयेचार लाखयोजन चौडा है। इसी प्रकार उत्तरोत्तर द्विगुण २ चौडाईवाले असंख्यात द्वीपसमुद्र पड़े हुयेहैं। जंबूद्वीपके मध्य भागमें एकलाखयोजनऊंचा गोलसुदर्शननामकामेरुपर्वतहै। इसकेसिवायइस द्वीपमें लवण समुद्रकेतटतक पूर्वपश्चिम लंब दीवारकीतरह छहकुल पर्वत और पड़ेहुये हैं, इनसेइसद्वीपके सात खंडहोजाते हैंजोकि भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत ये सातक्षेत्र कहलातेहैं। छहकुलपर्वतोंपर छह हृद हैं। इनसेगंगासिंधु आदिचौदह नदियाँ निकलती हैं औरवे प्रत्येक क्षेत्रमें दोदोके हिसाबसे उपर्युक्तसातों क्षेत्रोंमें वहतीहैं। प्रथमऔरअंतके हृदसेतीन२ नदियाँ

और शेष हृदोंसे दोदो नदियां निकलतीहैं। भरतक्षेत्रमें पूर्वकी ओर गंगा और पश्चिमकीओरसिंधुनदीबहतीहै इसकेमध्यभागमें लवणसमुद्रके तट तक पूर्व पश्चिम लंबाएक वैताडयपर्वत औरपड़ाहुआहै जिसकी भिन्न २ दोगुफाओंमेंसे गँगा सिंधुनदियांपार होती हैं । इनगंगा सिंधुऔर वैताडयपर्वतसे इस भरतक्षेत्रकेछह खँड हो जातेहैं जिनमेंसे पांच म्लेच्छ खँड और एक (गंगासिंधु वैताडयऔर लवणसमुद्रकेबीच वालाखंड) आर्यखँड वा आर्यक्षेत्रकहलाताहै। म्लेक्षखंडोंमेंम्लेक्षआर्यक्षेत्रमें आर्यऔरवैताडयपर्वतपरविद्याधर रहतेहैं।ऐरावतक्षेत्र मेंजघन्यभोगभूमिहै ।हरिऔररम्यकक्षेत्रमें मध्यमभोग भूमिहै।विदेहक्षेत्रकेअन्तर्गतदेवकुरु तथाउत्तरकुरुमेंउ-त्तमभोगभूमिहै भरतऐरावतऔर शेषकेक्षेत्रोंमें कर्मभू-मि (असिमसिआदिछहकर्मोंको प्रवृत्तिकर्मभूमि,प्रवृत्ति नहो भोगभूमि)है द्वितीय धातकीद्वीपमेंमेरु,कुलपर्वत औरक्षेत्रनदियोंकीरचना जंबूद्वीपसेदूनी है।धातकी द्वीपकेबादकालोदसमुद्र औरकालोदसमुद्रकेबादपुष्कर द्वीपहै पुष्करद्वीपकेबीचोंबीच कंकणाकार एकमानुषो-त्तरपर्वतपड़ाहै हुआहै जिससेइसद्वीपकेदोभागहोजाते

हैं। पूर्वके आधेभागकी रचना धातकीद्वीपके समान है इसप्रकार जंबूद्वीप धातकीद्वीप आधा पुष्करद्वीप यह लवणोद कालोद समुद्रसहित अढ़ाई द्वीप मनुष्यलोक कहलाता है। मानुषोत्तर पर्वतके बाहर असंख्यात द्वीपसमुद्रोंमें जघन्यभोगभूमिके समान तिर्यंच रहते हैं। जिसभूमिपर द्वीपसमुद्रादि हैं वह रत्नप्रभा भूमि कहलाती है इसके तीन भाग हैं खरभाग पंकभाग और अब्बहुलभाग। अब्बहुलभागमें पहला नरक है। खरभाग पंकभागमें भवनवासी और व्यंतरोंके भवन तथा आवास हैं। व्यंतरोंके आवास असंख्यातद्वीप समुद्रोंमें भी हैं। इस भूमिके समान भागसे ७९० योजनकी ऊंचाईसे लेकर ९०० योजनकी ऊंचाईतक ११० योजनके पटलमें दिशा विदिशाओंमें असंख्यात द्वीपसमुद्रतक बराबर फैले हुये ज्योतिषीदेवोंके विमान हैं।

७१०। ऊर्ध्वलोकमें क्या है—सूर्य, चंद्रमा, ग्रह, नक्षत्र और प्रकीर्णतारे इन पांच प्रकारके ज्योतिषीदेवोंके विमान हैं। सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेंद्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर लांतव, कापिष्ट, शुक्र, महाशुक्र, सतार, सहस्रार आनत, प्राणत

आरण और अच्युत येसोलहस्वर्गहैं। इनमें कल्पवासी देवरहतेहैं। इनकेऊपरनव ग्रैवेयक हैं नव अनुदिश हैं और विजयवैजयंत जयंत अपराजित तथा सर्वार्थ-सिद्धि ये पांच पंचोत्तर हैं इन विमानोंमें कल्पातीत अहमिंद्रदेव रहते हैं।

७३१। फिर इनके ऊपर क्या है—इनकेऊपरजगत का सा-रभूत,नित्य,मनुष्यक्षेत्र के प्रमाण केबराबर, स्वेतवर्ण अनंतसिद्ध जीवोंसभरा हुआ मोक्ष स्थानहै।

७३२। अधोगतिमें कौन २ से जीव जाते हैं—नीचकर्मकरने वालेनीचोंकेसाथ रहनेवालसप्तव्यसनादिनीचव्यसनों कोसेवनकरनेवालेनीचपुरुषहीअधोगतिकोप्राप्तहोते हैं।

७३३। मध्यलोक में कौन २ जीव उत्पन्न होते हैं—जोपुण्यऔर पापदोनोंकासंचयकरतेरहतेहैंवेजीवमध्यलोकमेंउत्प-न्नहोतेहैं। देवविद्याधरभी इसलोकमें जन्मलेतेहैं और पापीजीव इसीलोकमें तिर्यंचहोकर जन्म लेतेहैं।

७३४। ऊर्ध्वलोकमें कौन २ जीव गमन करतेहैं—श्रीजिनेंद्रदे-वकेभक्तजन,व्रती,शीलव्रतोंको पालनकरनेवाले,सदा-चारी उत्तमश्रावक और मुनिगण हीऊर्ध्वलोकमें जाकर स्वर्गादिकके उत्तम सुख भोगते रहतेहैं।

७३५ लोकके अग्रभाग अर्थात् मोक्षस्थानपर कौन २ जीव जासकते हैं — जो रत्नत्रयरूपी धनसे धनी हैं जिन्होंने तपश्चरणादिकेद्वारा अपने संपूर्ण कर्म नष्टकरदिये हैं ऐसे संसार पूज्य श्रीजिनेन्द्रदेवादिक ही उस पूज्य मोक्षस्थान पर जासकते हैं।

७३६। लोकका ऐसा अनेक प्रकार स्वरूप चिन्तवनकर बुद्धिमानों को क्या करना चाहिये-तपश्चरणरूपी तलवारके द्वारा कर्मरूपी शत्रुओंको शीघ्रही नष्टकरके लोकके अग्रभाग पर विराजमान होजाना चाहिये।

७३७ बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा किसे कहते हैं—इस अपरिमित संसारमें मनुष्यजन्मप्राप्तहोना अतिशयदुर्लभ है तथा मनुष्यजन्ममें भी आर्यक्षेत्र उत्तमकुल और निरोगशरीर आदिकामिलनाऔरभीदुर्लभहै इत्यादिचिंतवनकरना बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा है।

७३८। यह मनुष्यजन्म किस प्रकार दुर्लभ है—जैसे समुद्रमें फेंकेहुए चिंतामणिरत्नका मिलना अतिशयदुर्लभहै। औरजमान्धको ऐश्वर्यका मिलजाना अतिशयदुर्लभ है। उसीप्रकारनष्टहुएमनुष्यजन्मका प्राप्तहोना अतिशय दुर्लभहै।

७३६ मनुष्यजन्मकी प्राप्तिसे और दुर्लभ क्या है—आर्य क्षेत्र मेंजन्मलेनाउससे भीदुर्लभ है। क्योंकिवहकाकतालो- य (तालसेफलगिरनाबीचमेंकौवेकामरना) न्यायकेस- मान बड़ीकठिनतासे प्राप्तहोताहैं और इसकाभी कार- ण यहहै कि आर्यक्षेत्रसे म्लेक्ष पांचगुणे अधिकहैं।

७४० आर्यक्षेत्रमें जन्मलेनेसे भी और दुर्लभ क्या है—कल्पवृक्ष की प्राप्तिके समान उत्तमकुल में जन्म लेना उससे भी और अधिकदुर्लभ है।

७४१। उत्तमकुलमें जन्म लेने से और दुर्लभ क्या है—दीर्घ आयुका प्राप्त होना।

७४२। दीर्घआयु प्राप्त होनेसे और दुर्लभ क्या है—निरोग श- रीरका मिलना।

७४३। निरोगशरीर मिलजानेसे भी और दुर्लभ क्या है—पांचों इंद्रियोंकीचतुरता अर्थात् सब इंद्रियोंमेंअपने २ विषय ग्रहणकरनेकी अच्छी शक्तिहोना अतिशयदुर्लभ है। इ- नकेसिवाय निर्मल बुद्धि और ज्ञानादिकी प्राप्ति आदि श्रेष्टगुण उत्तरोत्तर दुर्लभ हैं।

७४४। इन सबसे और अतिदुर्लभ क्या है-सच्चेदेव और स- च्चेगुरुको प्राप्ति होना, धर्म श्रवण करना, सम्यग्दर्शन

की प्राप्तिहोना, निरंतरज्ञानरूप उपयोग बना रहना, कषायोंकी मँदता होना, राग,द्वेषछूटना, और व्रतधारणकरना आदि अनेक शुभ आचरण करना निधिके समानअतिशय दुर्लभ हैं।

७४५। वह बोधि अर्थात् रत्नत्रय किसके सफल है—जो जीव रत्नत्रयको प्राप्तकर तपश्चरणादिके द्वारा शीघ्रही मोक्ष प्राप्तिके साधनमें लगजाताहै उसी का यह रत्नत्रय प्राप्तहोना सफल गिनाजाता है।

७४६। ये रत्नत्रय निष्फल किसकेहै-जो रत्नत्रयको पाकर प्रमादकरताहै और मोक्षसाधन करनेमें आलस वा निरादर करताहै उसकारत्नत्रयप्राप्तहोना सर्वथा व्यर्थ है।

७४७। जो जीव रत्नत्रय को पाकर प्रमादवश उसे छोड़ देते हैं उन्हें क्या फल मिलता है—उन्हें अर्द्ध पुद्गलपरावर्त्तन तक करोड़ों योनियोंमें परिभ्रमण करना पड़ता है।

७४८। यदि बाल्यकालमें ही रत्नत्रयकी प्राप्ति हो जाय तो उन्हें क्या करना चाहिये—उन्हें समझना चाहियेकि मृत्यु हमारे मस्तकपरही खड़ीहै और यह समझकर तपश्चरण यम नियमादिके द्वारा मोहरूपीशत्रुकोनष्टकर उन्हें शीघ्र हीमोक्षप्राप्त करलेना चाहिये।

७४९। यदि युवावस्थामें रत्नत्रयकी प्राप्ति हो तो उन्हें क्या करना चाहिये—उन्हेंभी स्वर्ग अथवा मोक्षप्राप्तहोनेकेलिये घोर तपश्चरणकेद्वारा मोहरूपीशत्रुकोनष्टकर अपने आत्मा काहित साधनकरना चाहिये।

७५०। यदि वृद्ध अवस्थामें रत्नत्रयकी प्राप्ति हो तो उन्हें किस प्रकार अपना हित साधन करना चाहिये—जैसे जलतेहुए घरमें सेवस्त्रअलंकारादि अपनासामान बहुतशीघ्र २ निकाला जाताहै। इसी प्रकार जिन्हें वृद्धावस्थामें रत्नत्रय प्राप्त हुआ है उन्हें अपने शरीरमेंफंसेहुये प्राणोंकोशीघ्रहीमहाव्रतोंके द्वाराकिसी निरापद और सुखप्रदस्थानमें पहुंचाना चाहिये अर्थात् उन्हें अतिशीघ्र स्वर्ग मोक्षादिक प्राप्तकरलेना चाहिये।

७५१। इस रत्नत्रयका ऐसा माहात्म्य समझकर सज्जनोंको क्या करना उचित है—उन्हें तपश्चरण व्रत और कठिन२ यम द्वारा संपूर्ण कषायऔर प्रमादोंको छोड़कर शीघ्रही स्वर्ग अथवा मोक्ष प्राप्त करलेना चाहिये।

७५२। धर्मानुप्रेक्षा किसे कहतेहैं-उत्तमक्षमादि दश धर्मों का चिंतवन करना अथवा ये ही दश धर्म ग्राह्य हैं ये ही अनिंद्य और सर्वथा सुखकर हैं इत्यादि चिंतवन

करना धर्मानुप्रेक्षा है ।

७५३ । इन बारह अनुप्रेक्षाओंके चितवन करनेसे सज्जनों को क्या फल मिलता है—संसारके भोगोपभोग पदार्थोंसे तथा इंद्रियोंके विषयोंसे रागद्वेष नष्टहोजातेहैं तथा संवेग और वैराग्यकी प्राप्ति होती है ।

७५४ । किन २ सज्जनोंने इन अनुप्रेक्षाओंका चितवन किया है—तीर्थंकरआदि महापुरुषोंने इनका चितवन किया है तथा हृदयमें वैराग्यधारणकरके मुक्तिकेलियेतपश्चरणकरने वाले अनेकमहर्षियोंने इनका चितवन किया है ।

७५५ । अनुप्रेक्षाओं का इतना बड़ा माहात्म्य समझकर विद्वानों को क्या करना चाहिये—तपश्चरण पालनकरने और संवर की प्राप्ति होनेकेलिये वैराग्यको उत्पन्न करनेवाली इन अनुप्रेक्षाओंकारातदिन चितवन करतेरहना चाहिये तथा इन्हींका निरंतर ध्यान करनाचाहिये ।

७५६ । परीषह कौन २ हैं-क्षुत् १ (क्षुधा) पिपासा २ शीत ३ उष्ण ४ दंशमशक ५ नाग्न ६ अरति ७ स्त्री ८ चर्या ९ निषद्या १० शय्या ११ आक्रोश १२ वध १३ याचना १४ अलाभ १५ रोग १६ तृणस्पर्श १७ मल १८ सत्कारपुरस्कार १९ प्रज्ञा २० अज्ञान २१ और अदर्शन २२ ये बाईस परीषह हैं । कर्मसमूहको नष्ट करनेकेलिये तथा रत्नत्रय और

मोक्षमार्गमें दृढ़ रहनेके लिये इन परीषहोंको सहन किया जाता है। इसलिये मोक्षार्थीपुरुषोंको अपनी पूर्ण शक्तिकेअनुसार इन्हें सहन करना चाहिये।

७५७। क्षुधा परीषह किस प्रकार सहन करना चाहिये--जो लोगबंदीगृहमें (कैदखानेमें) पड़ेहुएहैं वे सदा क्षुधासे पीडित रहतेहैंउनके सामने यहमेरी क्षुधा कितनोहै इ-त्यादिचिंतवनकरऔरसंतोषरूपअत्युत्तमअन्नभक्षणकर क्षुधापरीषह सहनकरना चाहिये।

७५८। पिपासापरीषह किस प्रकार से सहन की जाती है—निर्जलस्थानमें रहनेवालेजीवोंको देखकर चारित्ररूपो जलसे संपूर्णशरीरको शोषण करनेवाली यह पिपासा परीषह सहनकरना चाहिये।

७५९। शीत परीषह किस प्रकार सहन करना चाहिये--दरिद्र और पशुपक्षियोंको देखकर।

७६०। उष्णपरीषह किसप्रकार सहनकी जातीहै---निराश्रय जीवोंको देखकर।

७६१। दंशमशकपरीषह किसप्रकार सहन करना चाहिये—जोजीव डांस मच्छर मक्खी, जूआदि जीवोंसे सदा पीड़ित रहरहे हैं उन्हें देखकर।

७६२। नाग्न्य (नग्नरहना) परीषह किसप्रकार सहन कीजातीहै·नग्नरहनेसे कामादिके जो विकार होतेहैं उनसे सर्वथा

रहित होकर नाग्नपरीषह सहन करना चाहिये।

७६३। अरतिपरीषह किसप्रकार सहनकरना चाहिये-सद्ज्ञान और ध्यानमें तल्लीन रहकर।

७६४। स्त्रिपरीषह अर्थात् स्त्रीयोंके द्वाराकिये हुये उपद्रव किसप्रकार सहनकरना चाहिये—धैर्य और ब्रह्मचर्यव्रत धारणकर

७६५। चर्यापरीषह किसप्रकार सहनकी जाती है—पराधीन रहनेवाले तिर्यंचों और सेवकोका परिश्रम देखकर

७६६। निषद्यापरीषह किस प्रकार सहन करना चाहिये—ऐसे पशुओंको देखकरकि जो विचारे संकल और रस्सियों से बंधे हुये रहतेहैं।

७६७। शय्यापरीषह अर्थात् एक पार्श्व (करवट) से सोना आदिपरीषह किसप्रकार सहनकरना चाहिये—जो प्राणी संकलोंसे जकड़ेहुएहैं इधर उधर हिलनहीं सकते उनका दुःख चिंतवनकर शय्यापरीषह जीतना चाहिये।

७६८। आक्रोश और वधपरीषह किसप्रकार सहनकरना चाहिये-उत्तमक्षमा आदि महागुणोंके द्वारा।

७६९। याचना और अलाभपरीषह किसप्रकारसहनकरनाचाहिये-संतोष और धैर्य धारणकर तथा लोभ छोड़कर याचना और अलाभपरीषह जीती जाती है।

७७०। रोग परीषह किसप्रकार सहनकरना उचितहै—जितने

रोगक्लेशादि होतेहैं। वेसब पूर्वोपार्जित अशुभकर्मकेउद-
यसे होतेहैं। कर्मोंकाउदय अनिवार्य है इत्यादि चिंतवन
सेरोगपरोषह सहन करना चाहिये।

७७१। तृणस्पर्श और मलपरीषह किसप्रकार सहनकरना चाहिये-
शरीरसे ममत्व छोड़कर।

७७२। सत्कार पुरस्कारपरीषह किसप्रकार सहनकरना चाहिये-
अहंकार छोड़कर।

७७३। प्रज्ञापरीषह किसप्रकार सहनकरना चाहिये—गूढ़ और
सूक्ष्मपदार्थोंका समझना अत्यंत कठिन है। अल्पज्ञा-
नियोंकोप्रायः इनका बोध नहीं होता इत्यादि चितवन
करप्रज्ञापरीषह सहनकरना चाहिये।

७७४। अज्ञान परीषह किस प्रकार सहन करना चाहिये—ज्ञान
कोरोकनेवाला ज्ञानावरणकर्महै इसीकेउदयसेसंसारी
प्राणीअज्ञानीहोरहेहैं। इसके क्षयोपशम होनेसे मुझे
स्वयंज्ञान प्रगटहोजायगा इत्यादि चिंतवनकर अज्ञान
परीषह सहनकरना चाहिये।

७७५। अदर्शन परीषह किस प्रकार सहन करना चाहिये—यह
कालदोषहै अथवायहक्षेत्रवा मेरेपरिणामही ऐसेहैंजो
निर्मल सम्यक्त्व नहीं होनेदेते। इत्यादि चितवन कर

अदर्शनपरीषह सहनकरना चाहिये।

७७६। ये संपूर्ण परीषह कैसे ध्यानसे वा अन्य किन २ कारणोंसे सहन करना चाहिये— शुभध्यानसे शुक्लादि शुभलेश्याओंसे और कर्मोंका विपाक चिंतवन करनेसे संपूर्ण परीषह जीती जातीहैं।

७७७। परीषह सहनकरनेवालोंके कौन२ गुण प्रगट होते हैं— इंद्रियांऔर मनवशमें होजाताहै,सदासंवर औरनिर्जरा होती रहतीहै तथाक्रमसे संपूर्णकर्म क्षयहो जातेहैं।

७७८। जो लोग परीषहों से डरते हैं उन्हें सहन नहीं करते उनके क्या २ दोष प्रगट होतेहैं-सज्जन औरउत्तमपुरुषोंमें उनकी हँसीहोतीहै,अपमान होता है,अपकीर्ति फैलतीहै और अनेकप्रकारके नानादुःख सहनकरने पड़ते हैं।

७७९। यह उपर्युक्त कथन समझ कर बुद्धिमानों को क्या करना चाहिये— चारित्ररूपीरणांगणमेंआकरव्रत और तपश्चरणरूप तीव्रआयुधोंको लेकर बड़ेयत्नके साथ कर्मरूपी शत्रुओंको नष्टकरनाचाहिये।

७८०। पांचप्रकार चारित्र कौन२ हैं-सामायिक,छेदोपस्थापन,परिहारविशुद्धि,सूक्ष्मसाँपराय और यथाख्यात ये पांचप्रकारकेचारित्रकहेजाते हैं।आत्माकोपूर्णचिदानंद

रूपसुखदेनेवाले येही चारित्रहैं ।

७८१ । सामायिक चारित्र किसे कहतेहैं— जोतृण सुवर्णमें सुखदुखमें तथा स्तुतिनिंदा आदिमें सर्वदा समताभाव रखना सबको एक दृष्टिसे देखना सामायिक चारित्र कहलाता है ।

७८२ । छेदोपस्थापनचारित्र किसको कहतेहैं—चारित्रकोनिर्मलपालन करनाचाहिये। यदिकदाचित् चारित्रमेंकोई दोषलगाहो तो उसे आत्मनिंदा वा प्रायश्चित्तादिकद्वारा शुरू करना छेदोपस्थापन चारित्र कहलाता है ।

७८३ । परिहारविशुद्धि चारित्र किसे कहतेहैं—जोमुनिदीक्षा लेकर कुछकालतक तीर्थंकरभगवान्के सन्निकट रहा हो जिसकीआयु ३०वर्षसे अधिकहो, जोअंग और पूर्वका जाननेवाला हो,दृढशरीरहो,जोयत्नपूर्वक प्रतिदिनकम सेकमदोकोश गमनकरताहो,उसकावहचारित्रपरिहार विशुद्धि चारित्र कहलाताहै ।

७८४ । सूक्ष्मसांपरायचारित्र किसे कहते हैं-जो दशवें गुणस्थानमेंरहनेवाले सूक्ष्मलोभकोनष्टकरनेवालाहैऔरजो केवलआत्माके ध्यानकरने मात्रसे उत्पन्न हुआ है उसे सूक्ष्मसांपरायचारित्र कहतेहैं ।

७८५। यथाख्यातचारित्र किसे कहतेहैं—जिसके द्वारायथार्थशुद्धआत्माका अनुभव कियाजाय वहउत्तमऔरपूज्य यथाख्यातचारित्र कहलाता है।

७८६। इस पंचप्रकार चारित्रके पालनकरनेसे क्या फल होताहै—घातियाकर्म नष्टहोजातेहैं केवलज्ञानप्रगट हो जाताहै उत्तम संवर और निर्जरा होतीहै तथा अन्तमें मोक्षकी प्राप्ति होती है।

७८७। इन उपर्युक्त गुप्ति समिति धर्म अनुप्रेक्षा परीषहजय और चारित्रकेसिवाय संवरके कारण और कौन २ हैं—ध्यान अध्ययन उत्तमसमाधि आदिऔर भी संवरकेअनेक कारणहैं

७८८। सज्जनोंको संवरसे क्या लाभहोता है—साक्षात् मोक्ष देनेवाली तपश्चरणकी प्राप्ति होतीहै चारित्रसफल होजाता हैकर्मोंकी निर्जरा होतीहै और केवलज्ञान की प्राप्ति होती है।

७८९। संवरकेबिना क्याहानि होतीहै—निरंतरकर्मोंका आस्रवहोताहै। जिससे केवल संसारकी वृद्धि होतीहै। अतएव संवरके विना संयमधारण करना व्यर्थ है तथा तपश्चरण करनाभी व्यर्थ है।

७९०। संवरका ऐसा माहात्म्य समझकर क्या करना चाहिये—

गुप्तिसमिति और चारित्रआदिकद्वारा संपूर्ण क र्मोंको रो-
ककर प्रयत्नपूर्वकसदा संवर करते रहना चाहिये ।

७११ । निर्जरा तत्त्व किसे कहते हैं—निर्जराका स्वरूप जो पहलेकहा गयाहै वहीहै अर्थात्एकदेश कर्मक्षय होनेको निर्जराकहतेहैं और वह सविपाक अविपाकके भेदसे दो प्रकारहै वा भाव द्रव्यकेभेदसेदो प्रकारहै। संसारके संपूर्ण सुखदेनेवाली और मुक्तिकीजननी यही निर्जरा है।

७१२ । मोक्षतत्त्व किसे कहते हैं—जब यह आत्मा संपूर्ण कर्मोंसे वा शरीरसेसर्वथा भिन्न होजाताहै । तब वह मुक्त कहलाताहै और इसकोही मोक्षतत्त्वकहतेहैं यह मोक्ष दोप्रकारकाहै एक भावमोक्ष और दूसरा द्रव्यमोक्ष ।

७१३ । भावमोक्ष किसे कहते हैं—संपूर्ण कर्मोंको क्षयकरने वालेआत्माकेअतिशयशुद्धपरिणामोंकोभावमोक्षकहाहै

७१४ । द्रव्यमोक्ष किसे कहतेहैं- -सपूर्ण कर्म और शरीरसे सर्वथा पृथक्अपने शुद्ध आत्माकी प्राप्ति होना द्रव्य मोक्षहै। यहमोक्ष तत्त्व आत्मा का खास स्वभाव है ।

७१५ । इस मोक्षतत्त्वका विशेष स्वरूप क्या है—उर्ध्व गमन करना आदि जो सविस्तर वर्णनपहले कहाजा चुका है वही इसका विशेषस्वरूप समझना चाहिये ।

७१६ इन सप्त तत्त्वोंके जान लेने से क्या फल होता है—तीनों लोकोंको प्रकाशकरनेवाले दीपकके समान सम्यक्दर्शनकी प्राप्ति होती है। तथा अनुक्रमसे सम्यग ज्ञान और सम्यक्चारित्रको प्राप्तिहोतीहै।

७१७। नव पदार्थ कौन हैं—पुराय और पाप मिलाने से ये ही सप्त तत्त्व नव पदार्थ कहलातेहैं।

७१८। पुराय पदार्थ किसे कहते हैं—शुभतिर्यंचआयु, और शुभमनुष्यआयु, शुभदेव आयु, ऊंचगोत्र, सातावेदनी, नामकर्मकी सैंतीस प्रकृति येसब मिलाकर बयालीस शुभप्रकृति पुरायप्रकृति कहलाती हैं।

७१९। इन पुरायप्रकृतियोंसे क्या फल होता है-पर्वतकीतराईमेंउत्पन्नहोनेवाले ऊंचे और वायुकेसमान वेगवाले घोड़ेमिलतेहैं। अतिशय सुन्दरी ललनायें प्राप्त होती हैं, कामदेवकेसमानसुन्दरशरीर, सर्वथा हितकरनेवाले बंधुवर्ग तथा दासी दास और सुख तथा धर्म बढानेवाले कुटुम्बकी प्राप्ति होतीहै। दीर्घआयु, सुन्दरशरीर, आरोग्यता; मान्यता, यश, विवेक, चातुर्य, और क्षमा आदिधर्मबढानेवाले अनेक गुणोंकी प्राप्ति होतीहै। समस्तभोगोपभोगोंकी सामग्री और संपूर्ण सुखोंकीप्राप्तिहोतीहै

सँसारमें पुण्यवान् पुरुषोंका ही एकछत्र राज्य होताहै उन्हेंही संपूर्ण इष्ट पदार्थोंकी प्राप्ति होती है। उन्हींका-मुखसुन्दरवाणीसेसदाअलंकृतरहताहैकहांतककहाजाय संसारमें कल्याण बढानेवाली वस्तुओंकी जो उन्हें प्राप्तिहोतीहै वह सब पुण्यरूपी कल्पवृक्षका ही फल समझना चाहिये।

८०० उत्तम पदार्थोंकी प्राप्ति किस कारणसे होती है—पुण्यके उदयसे पुण्यवानोंके घर सँपूर्ण सँपदायें दासी दास केसमान स्वयं आ उपस्थितहोती हैं।

८०१। इस पुण्यके फलसे और किस २ वस्तुकी प्राप्ति होतीहै-इस पुण्य का फल बहुतहै। कहांतक कहा जाय परंतु थोड़ेमेंइतनासमझलेना चाहियेकि तीनोंलोकों में जो वस्तुदूर है, कष्टसाध्य है, दुर्लभ है, अतिउत्तम है इष्टहै और कल्याणकारीहै वेसबपुण्योदयसेपुण्यवानोंकेघर स्वयं आकरप्राप्तहोतीहैं। इसमें किसीप्रकारका संदेहनहींहैं।

८०२। इसपुण्यकेउदयसेपुण्यवानोंकोपरलोकमेंक्याफलमिलताहै-पुण्यवान् पुरुष स्वर्गमें जाकर इंद्रअहमिंद्र लौकांतिक आदि उत्तम पदाधिकारी देव होते हैं। उत्तम २ सँपदायें सुख और श्रीजिनेंद्रदेवकी साक्षात् सेवा भक्ति करना

आदि विभूतियें प्राप्त होतीहैं। नौ निधि चौदह रत्न आदि उत्तम २ पदार्थ सब पुण्योदयसे ही होतेहैं ।

८०३। पुण्य संचय करनेके कौन२ कारण हैं-मन बचन काय की शुद्धता रखना, अहिंसादिकव्रत, गुणव्रतादि शील और सदाचारका पालन करना, पात्रदान देना, श्री जिनेंद्रदेवकी पूजा करना, तथा शुभध्यान शुभलेश्या आदि अनेक सदाचार और शुभ परिणामों से पुण्य प्रकृतियोंका सँचय होताहै ।

८०४। उत्कृष्ट पुण्यका संचय किनके होता है—तीर्थंकरादिकी समवरणादि विभूतिको देनेवाला उत्कृष्ट पुण्यकेवल सम्यग्दृष्टी पुरषोंके सम्यग्दर्शनको विशुद्धतासेही होताहै

८०५। पाप पदार्थ किसे कहतेहैं—ज्ञानावरणादि बियासी अशुभ प्रकृतियोंको पाप पदार्थ कहतेहैं ये प्रकृतियां इस जीवको केवल दुःख देनेवाली हैं ।

८०६। पापीजीवोंको इस संसारमेंही पापकाक्या२ फलमिलताहै पापी लोगोंको शीलरहित कुरूपा और कुत्सित स्त्रियें प्राप्त होतीहैं, सप्तव्यसन सेवन करनेवाले कुपुत्र होते हैं,कुरूपा और बांझ पुत्री होतीहै, शत्रुके समान सदा दुःख देनेवाले बांधव होतेहै,धर्म और सुखको

नाश करदेनेवाला कुटुम्ब मिलताहैं। उनको कुत्सित शरीर सदा रोगी रहताहै। उन्हें नीचकुलमें जन्म लेना पड़ताहै। उनका अपयश और निंदा सर्वत्र फैलती रहती है। वे लोगदरिद्र, निर्विवेक; मूर्ख, व्यसनी; पापी. बुद्धिहीन. अंगहीन लँगड़े और नीच भृत्य हुआ करते हैं। उन्हें सदा पुत्र पौत्रादिके इष्टवियोग तथा रोग शत्रु आदिके अनिष्ट संयोग हुआ करते हैं कहां तक कहा जाय कुत्सित जन्म और अँग उपांग ररित शरीरका मिलना आदि अनेक दुःख रूप फल पापरूपी विषवृक्षके हो समझना चाहिये।

८०७। पापसे और क्या २ हानि होती है-संसारमें जीवांको जो अनेक दुःख देखने पड़ते हैं रोग क्लेश दरिद्रता आदि अनेक अनिष्ट संयोग हुआ करते हैं वे सब पापका फलहो समझना चाहिये।

८०८। परलोकमें पापियोंकी क्या गति होतीहै-नरकगति नीचतिर्यचगति वाअस्पश्यआदिचांडालआदिमनुष्यगति

८०९। पापके कारण कोन २ हैं—मनवचनकायकी कुटिलता तथाअशुद्धता, निंद्यकर्मकरना, धर्मसेदूररहना, शील

व्रतादिपालन नहींकरना, अनेकदुराचार तथा सप्तव्यसन सेवनकरना, अशुभ ध्यान और अशुभ लेश्याओंका होना, सदाक्रूरपरिणामरखना, मिथ्यामार्ग तथा कुमार्गका (मिथ्यामतोंका) सेवन करना, पवित्र जैनधर्मकी निंदाकरना; इंद्रियोंके विषयोंमें ही उलझे रहना, नीच मनुष्योंकीसंगतिकरना कार्यअकार्यकाविचारनहींकरना आदिअनेक निंद्यकर्म हैं वेसब पापास्रवकेकारणऔर अनेकदुःख देनेवाले हैं। बुद्धिमानोंको इन सबसे सदा अलग रहना चाहिये।

८१०। पापका ऐसा स्वरूप समझकर बुद्धिमानोंको क्या करना चाहिये- -धर्मरूपतलवार हाथमेंलेकरअतिशय निंद्य इन पापरूपशत्रुओंको नाशकरना चाहिये। तथा मोक्ष प्राप्त होनेकेलिये सदाप्रयत्न करते रहना चाहिये।

८११। इन तत्त्वोंमेंसे किस२ तत्त्वका कौन२ कर्त्ता है—मिथ्यामार्गमें चलनेवाले मिथ्यादृष्टि पुरुष मुख्यतया पापबँध औरपापास्रवके सदाकर्त्ता हैं अर्थात् वे सदा पापास्रव और पापबंधही करतेरहते हैं।

८१२। मिथ्यादृष्टि पुरुष क्या कभी पुण्यास्रव वा पुण्यबंध भी करते हैं—हांकरतेहैं। जब उनका कर्मोदय मंद होता है

तबवे सुखी होनेकेलिये, गौणरीतिसे कभी २ पुण्यास्रव वा पुण्यबंधभी करलेतेहैं ।

८१३। तब फिरपुण्यास्रव और पुण्यबँधका मुख्य कर्त्ता (अधिकारी) कौन है—सम्यग्दृष्टि पुरुष ही इनको मुख्य कर्त्ताहै और वह भी केवल मोक्षप्राप्त होनेके लिये इन्हेंकरताहै सांसारिक सुखोंकेलियेनहीं ।

८१४। सँवर निर्जरा और मोक्ष इनतीनों तत्त्वोंका कर्त्ता (अधिकारी) कौन हैं—शुद्ध रत्नत्रय सहित भावलिंगी वीतराग मुनिही इनतीनों तत्त्वोंके अधिकारी होसकते हैं ।

८१५। इन आस्रव और बंधसे सँसारीप्राणियोंको क्या फल मिलताहै—जन्ममरणरूप संसारकी वृद्धि और रोगक्लेशादि अनेकदुःखआस्रव तथाबंधकेहीफलसमझनाचाहिये।

८१६। तपस्वियोंको संवर और निर्जरासे क्या फल मिलता है—तपस्वियोंको जोउसी भवमें वाअन्य किसीभवमें मोक्ष रूप सुखसागरकी प्राप्ति होताहै वह संवरतथा निर्जरा काही फलहै ।

८१७। मोक्षका उत्तम फलक्या है—मोक्षप्राप्त होनेसे इस आत्माको केवलआत्मजन्य ऐसेअनंत सुखकीप्राप्ति होतीहै जोनित्य अविनश्वर और दुखोंसे सर्वथा रहितहै। इसकेसिवाय सम्यक्त्व ज्ञानदर्शनवीर्य सूक्ष्मत्व अगुरु

लघु अव्याबाध और अवगाहन इन आठ सद्गुणोंकी प्राप्तिहोती है ।

८१८। इन सप्त तत्त्वोंका स्वरूप समझकर क्या करना चाहिये—

रत्नत्रय औरतपश्चरणरूपीवाणोंकेद्वारामोहादिकर्मरूपशत्रुओंकोनाशकर शीघ्रहीमोक्षप्राप्त करलेनाचाहिये। सप्ततत्त्वोंकेजानलेने कायही एक उत्तम फल है ।

जोभव्यपुरुष इनउपर्युक्त सप्ततत्त्वोंका स्वरूप सुनताहै चिंतवनकरताहै पड़ताहैपढ़ाताहै श्रद्धा औररुचि करताहै वहसम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान औरसम्यक्चारित्र कोपाकर तीनों लोकोंके संपूर्णउत्तम सुखोंका अनुभव करताहै केवल इतनाहीनहीं किंतुवह उसीरत्नत्रयके फलसे अनुपमेय घोर तपश्चरणधारणकरकर्म और इंद्रियरूपी प्रबलशत्रुओंको क्षणभरमें नष्टकर अति शीघ्र मोक्षरूपीसुखसागरमें निमग्न होजाताहै । अर्थात्उसे शीघ्रही मोक्षकी प्राप्तिहोतीहै ।

सप्ततत्त्वोंकेपरिज्ञानका ऐसा उत्तमफल समझकर भोभव्यजनहो मोक्षरूप परमसुखकी प्राप्तिकेलिये वीतरागसर्वज्ञप्रणीत इनतत्त्वोंकाश्रद्धानकरो,प्रतीतिकरो

विश्वासकरो तथा शुद्धमनबचनकायसे रातदिनइनका पठनपाठनकरो औरभरसक इनका श्रवण करो ।

इस अध्यायकेअन्तमें मैं (सकलकीर्ति)प्रथम ही श्री वृषभादि तीर्थंकरोंको नमस्कारकरता हूं। और दिव्यध्वनिद्वारा इनतत्त्वोंकाप्रथम निरूपण इन्होंने हीकिया है। अनंतर अपनेअपूर्व उपदेश द्वाराइनतत्त्वोंके प्रगट करनेकामार्गआचार्योंने दिखलायाहै इसलिये उन्हें नमस्कारकरता हूं। तत्पश्चात् मोक्ष प्राप्तिके लिये इन्हीं तत्त्वोंकापाठ करनेवाले तथा प्रतिदिन शिष्योंको पढ़ाने वाले उपाध्यायपरमेष्ठीकोभी नमस्कार करताहूं। तथा साधु परमेष्ठी सदाइन्हीं जीवादि तत्त्वोंमेंतल्लीन रहते हैंअर्थात् इन्हींकाध्यान चिंतवनादि करते रहतेहैं इसलिये इन्हेंभीबारंबार नमस्कारकरता हूं। ये उपर्युक्त परमेष्ठीगण मुझे अपने२ सब गुण प्रदान करें ।

इति सकलकीर्त्याचार्यविरचिते धर्मप्रश्नोत्तरमहाग्रंथे तत्त्वपृच्छा वर्णनो नाम चतुर्थः परिच्छेदः ॥ ४ ॥

अथ पंचमः परिच्छेदः

अब इस पंचम परिच्छेदमें प्रश्नोत्तर के जानने वाले संपूर्णतीर्थंकर, गणधरदेव, आचार्य, उपाध्यायसाधुसिद्धऔरतत्त्वोंकायथार्थस्वरूपजाननेवाले सद्गुरुकोनमस्कारकरशिष्यकर्मोंका विपाकदिखानेवालेप्रश्नकरताहै

८१९। हे भगवन् ज्ञानावरणकर्म क्या करताहै—यह ज्ञानावरण कर्म कपड़ेके पड़देकेसमान जीवोंकाज्ञान आच्छादन करताहै इसके रहतेहुए यह जीव किसी पदार्थको नहीं जानसकता है।

८२०। ज्ञानावरणकर्म का बंध किनर कारणोंसे होताहै-ज्ञान में किसीप्रकारका दोषलगानेसे, ज्ञानियोंकसाथ ईर्ष्यातथा मात्सर्यकरनेसे, ज्ञानकोछिपानेसे, किसीके पठनपाठन मेंअंतरायडालनेसेऔर ज्ञानकाघातकरने अर्थात् ज्ञानका अज्ञान बतादेनेसे ज्ञानावरणकर्मकाआस्रव होता है।

८२१। किस कर्मके उदयसे यहजीव पागल सरीखा हो गया है-यहजीव मतिज्ञानावरणकर्मकेउदयसे पागलऔरजड़ सरीखा होगयाहै। धर्म, अधर्मादिकार्योंको यह उन्मत्तके

समानकरताहै अच्छे रेका इसेकुछज्ञान नहींहै। इस मतिज्ञानावरणकर्मकेउदयसे ही यह जीव लोगोंको ठगनेकेलिये अनेकप्रकारकी कुटिलतायें करता रहताहै ।

८२२। किस कर्मके उदयसे यह जीव विकल हो जाता है—

मतिज्ञानावरणकर्मके उदयसे। क्योंकि मतिज्ञानके न होनेसे ही यहजीव अपना कल्याण समझ कर धर्म,अधर्म,शुभ अशुभ,गुणीनिर्गुणी,पात्रअपात्र,पूज्यअपूज्य आदि सबको सेवन करताहै दान मानादि द्वारा सबको पूजा करताहै यह उसकी मूर्खता और निर्विवेकता है। इसीकोविकलता कहतेहैं। अतएव मतिज्ञानावरणकर्म के उदयसे ऐसे जीव द्वीन्द्रिय आदि विकल जीवोंके समान ज्ञानशून्य विकल कहलाते हैं।

८५३। ये जीव किस कर्म के उदय से दुर्बुद्धि हो जाते है—

मतिज्ञानावरण कर्मके उदयसे। क्योंकिये अज्ञानीजीव मतिज्ञानावरण कर्मके उदयसे हो मिथ्या और खोटे मार्गका (मतका) निरूपण करते हैं तथा सेवन करतेहैं। अपने थोड़ेसे लाभकेलिये अन्यलोगोंको इन खोटे मार्गों के सेवन करनेकेलिये सदा कुबुद्धि दिया करतेहैं वे ही मूर्ख निंद्य दुर्बुद्धि कहलाते हैं।

८२४। सुबुद्धिमान् लोग कौन कहलातेहैं-जो लोग अपनी निर्मलबुद्धि और बड़े प्रयत्नसे जैनधर्म, जैनसिद्धांत, तीर्थंकर, निर्ग्रंथगुरु आदिकी परीक्षाकर इनको सेवन करते हैं तथा धर्मकी प्राप्तिकेलिये सदा ध्यान अध्ययनादि सत्कार्योंमें लगे रहतेहैं और जो अन्यलोगोंको भी जैनधर्मादिक सेवन करनेकेलिये तथा सत्कार्योंमें लगेरहनेके लिये सदा सुबुद्धि दिया करतेहैं। वे सुमार्गपर चलनेवाले सज्जन पुरुष सुबुद्धिमान् कहलातेहैं।

८२५। विवेकी पुरुष किस कर्मके निमित्त से होते हैं-ये जीव ज्ञानावरणकर्मकेक्षयोपशमसेविवेकीक .लाते हैं। क्योंकि जो जीव मोक्षमार्ग प्राप्त होनेकेलिये सदा देवशास्त्र गुरुओंको चिंतवन करते रहतेहैं तथा बारह अनुप्रेक्षा उत्तमक्षमादि दशधर्म, जीवादितत्त्व और शुभाशुभादि कर्मोंका सदा विचार करते रहतेहैं वे विचारशाली पुरुष विवेकी कहलातेहैं और यह ऐसा विचार ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे ही हो सक्ताहै। इसलिये विवेकी पुरुषभी इसी कर्मके क्षयोपशमसे होतेहैं।

८२६। किस कर्मके उदयसे मनुष्य निर्विवेकी होतेहैं—ज्ञानावर

र्मके उदयसे। क्योंकि जो पुरुष इसलोकमें अपना कल्याण चाहनेकेलिये विचार रहित होकर देवशास्त्रगुरुकी भक्ति करतेहैं पूजाकरतेहैं दानदेतेहैं वा धर्मसेवन करतेहैं वे दुर्बुद्धिजन निर्विवेकी कहलातेहैं। उनकी यह ऐसी बुद्धिज्ञानावरणकर्मकेउदयसेहोतीहै। इसलिये ज्ञानावरण कर्मके उदयसे निर्विवेको कहे जातेहैं।

८२७। विद्वान् किस कर्मके निमित्तसे होतेहैं—ज्ञानावरणकर्मके क्षयोपशमसे। क्योंकि जो पुरुष काल शुद्धि आदि देखकर अर्थात् शुद्ध समयमें निरंतर ज्ञानामृतका पान किया करतेहैं तथा अन्य भव्यजनोंको वही ज्ञानामृत पान कराया करतेहैं और जो अपना ज्ञान बढ़ानेकेलिये सम्यग्ज्ञानकी तथा सम्यग्ज्ञानको धारण करनेवाले ज्ञानीपुरुषोंकीसदास्तुतिभक्ति आदिकियाकरतेहैं वेविश्ववेत्ताविद्वान्कहलातेहैं उनकी ये ऐसी क्रियायें ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमविना नहीं होसक्ती इसलिये ज्ञानावरणकर्मके क्षयोपशमसे ही विद्वान् वनतेहैं।

८२८। मूर्ख किस कर्मके निमित्तसे होतेहैं-ज्ञानावरणकर्मके उदयसे। क्योंकि मूर्ख उन्हें कहते हैं जो थोड़ासा प

ढ़ लिखकर भी अपने शास्त्रादिके अहँकार में मस्त रहतेहैं श्रुतज्ञान वा शास्त्रादिक योग्य विद्यार्थियोंको कभी नहीं पढ़ाते और स्वयं ज्ञानको नित्य मानकर बिना कालादिशुद्धिके ही पठन पाठन करते हैं तथा जो सदा हिताहितविचाररहित हैं। यह ऐसा अहंकार तथा मूर्खता ज्ञानावरण कर्मके उदयसे ही होतीहै।

८२९। मूक अर्थात् गूगे किस कर्मके निमित्तसे होतेहैं-जो पुरुष भोजन करते समय मलमूत्र वा मैथुनादि करते समय इच्छानुसार भाषण किया करतेहैं। श्रुतज्ञानी वा धर्मात्माओंको गाली दिया करतेहैं दुर्वचन कहा करतेहैं तथा जो सदा पीड़ाजनक भाषण ही किया करतेहैं ऐसे पुरुष श्रुतज्ञानावरणकर्मके उदयसे वचन रहित गूगेहो जातेहैं। अभिप्राय यहहै कि भोजनादि करते समय मौन धारण करना चाहिये तथा धर्मात्माओंकी सदा प्रशंसा करनी चाहिये। परँतु ऐसा न कर वचनोंका दुरूपयोग करते हैं वे अवश्य मूक होतेहैं। मूकपना ज्ञानावरणकर्मकाही फलहै।

८३०। बधिर अर्थात् बहरे किस कर्मके उदयसे होतेहैं-ज्ञानावर

णकर्मके उदयसे। क्योंकि जो पुरुष जिनधर्म की तथा संघकी निंदा सुनते कुशास्त्रतथा विकथादि पढ़तेहैं ईर्षा के कारण सदोष श्रुतज्ञानका ही प्रतिपादन करतेहैं। ये ज्ञानावरणकर्मके उदयसे श्रुतज्ञानरहित बहरेहोजातेहैं

८३१। दर्शनावरण कर्मका बंध किन २ कारणोंसे होताहै-ज्ञान वा दर्शनमें किसी प्रकारका दोष लगाना उन्हें छिपाना तथा देखा विनादेखा आदि सब कुछ इच्छानुसार कहना इत्यादि क्रियायोंसेदर्शनावरणकर्मकाबंधहोताहै

८३२। अंधे कौन तथा किस कर्मके उदयसे होते हैं-जो पुरुष स्त्रियोंके मुखपैर योनि आदि अंग उपागोंको देखते रहते हैं। कुतीर्थ कुगुरु और कुशास्त्रोंके दर्शन किया करते हैं जो ईर्ष्याके कारण ईर्यापथ गमनके दृष्ट(देखे वा जाने हुये) दोषोंको भी नहीं कहते और न अदृष्ट (विना देखे वा विना जाने) दोषोंको कहते हैं वे मूर्ख दर्शनावरण कर्मके उदयसे अंधे होजाते हैं।

८३३। सातावेदनीयकर्मकाबंध किन२ कारणोंसे होताहै-जीवों पर करुणा रखनेसे, जीवोंकी रक्षा करनेसे, सराग संयम तथा सँयमासंयमको पालन करनेसे, लोभ छोड़ने

और पात्रोंको दान देनेसे, श्रीजिनेंद्रदेवकी पूजा भक्ति आदि करनेसे, शुभाचरण पालन करने और इंद्रियोंका निग्रहकरनेसे तथा इसीप्रकारके और श्रेष्ठ आचरणऔर श्रेष्ठक्रियाओंसे सातावेदनीयकर्मका बंध होताहै ।

८३४। यह सातावेदनीय कर्म क्याकरताहै-यह सातावेदनीयकर्म संसारमें जीवोकेलिये अनेकप्रकारके सुख देता है और वह द्रव्य क्षेत्रकाल भावके द्वारा चार प्रकारसे देताहै अर्थात् सुन्दर शरीर भोजन वस्त्र अलँकार आदि पदार्थोंके द्वारा जीवोंको सुख पहुंचाता है। विमान भवन आदि क्षेत्रद्वारा, बसंत आदि सुखप्रद समय द्वारा और शुभ तथा उपशमरूप परिणामों द्वारा यह सातावेदनीयकर्म जीवोंको सुख दिया करता है ।

८३५। ये संसारीजीव किन२ कारणोंसे तथा किस कर्मके उदयसे सुखी होतेहैं-जो जीव सांसारिक सुखोंसे ममत्व छोड़कर कायक्लेशतपश्चरण योग (समाधि) व्रत परीषहसन आदिके द्वारा शरीरकोकृष करते रहतेहैं तथाजो सज्जनोंको सदा सुख देते रहतेहैं वे सातावेदनीयकर्मके उदयसे सर्वत्र सुखी रहते हैं ।

८३६। असातावेदनीयकर्मका बंध किन२ कारणोंसे होताहै-दुख

शोक, सँताप, आक्रंदन (रोना) वध, बंधन अँगपीड़ा आदि स्वतः करनेसे, अन्य लोगोंको देनेसे असातावेदनीय कर्मका बंध होताहै। इनके सिवाय अव्रत, परिदेवन (करुणाजनक अतिशय रोना) मिथ्यात्व दुराचार आदिका प्रचार करने करानेसे भी असातावेदनीय कर्म का आस्रव होता है।

८३७। यह असातावेदनीय कर्म क्या करता है-यह कर्म जीवों केलिये इस लोक और परलोकमें द्रव्यक्षेत्रकाल भावके द्वारा चारप्रकारसे दुःखदिया करताहै। जैसे कुत्सित शरीर, विष आदि द्रव्योंके द्वारा, नरक, बंदीगृह आदि क्षेत्रके द्वारा, दुःसह शीत उष्ण आदिकाल के द्वारा और रागद्वेष आदि परिणामोंके द्वारा प्रत्येक संसारीप्राणीको दुःख दिया करता है।

८३८। संसारी प्राणी किन २ कारणोंसे तथा किस २ कर्मके उदय से दुख पाते हैं—जो जीवअपने थोड़ेसे सुखकेलिये वधबंधनादि द्वारा अन्यजीवोंको दुःख दिया करतेहैं, रातदिन पंचेंद्रियोंकेविषय सेवनमें तल्लीन रहतेहैं, सदाअभक्ष्य भक्षण करते रहते हैं और अनेक मिथ्यामार्गोंका निरूपणकरते रहते हैं वे जीव असातावेदनीयकर्मके उदय

से सदा दुःखी रहतेहैं।

८३९। रोग किन २ कारणोंसे तथा किस कर्मके उदय से होतेहैं- जो लंपटी पुरुष रातदिन अभक्ष्य और सचित्तादि पदार्थोंका भक्षणकिया करतेहैं जो तपश्चरण रहित हैं, व्रत शील रहित हैं, मिथ्यामार्गमें लीनहैं, धर्मसे बहुत दूर हैं और विषयोंमें अत्यन्त आसक्त हैं वे जीव असातावेदनीय कर्मके उदयसे सदा रोगी रहते हैं।

८४०। किन २ कारणोंसे तथा किसके निमित्तसे ये जीव नीरोग रहते हैं—जो जीवरातदिन तपश्चरण करतेहैं, जिनधर्म का पालन करतेहैं, श्रीजिनेन्द्रदेवकी पूजा करते हैं पात्रोंको दानदेते हैं व्रतधारण करते हैं, संसारके संपूर्णप्राणियोंकीरक्षा करतेहैं, पंचेंद्रियोंका निरोध करते हैं मन को जीततेहैं सदा संतोषधारण करतेहैं तथा जो औरभी अनेक शुभाचरण पालन करतेहैं वे जीव धर्मके प्रभावसे सदा निरोग रहते हैं।

८४१। दर्शनमोहनीयकर्म का बंध किन २ कारणोंसे होता है— केवली, श्रुत, संघ, धर्म, धर्मात्मा और सम्यग्दृष्टी आदि महापुरुषोंकी निंदा करनेसे, मिथ्यामार्गकी भक्ति और पुष्टि करनेसे, कुदेवोंकी भक्तिकरनेसे, कुगुरुओंकी स्तुति

करनेसे, वेदादि कुशास्त्रोंको माननेसे, कुमार्ग का सेवन करनेसे, जैनतत्त्वोंमें तथा जैनधर्ममें अश्रद्धानरूपसे शंकायें करनेसे, नीचमनुष्योंकी संगति करनेऔर नीच कर्मोंके करनेसे मूर्ख लोगोंको सदा दर्शनमोहनीयकर्मका बंध होता रहता हैं ।

८४२। यह दर्शनमोहनीय कर्म जीवोंको कैसा बना देता है— यह कर्ममद्यपानकेसमानहै। जैसेमद्यपानकरनेवाला मनुष्यउन्मत्त और कार्य अकार्यमें विचार हीनहोजाताहै । उसीप्रकार दर्शनमोहनीय कर्मके उदयसेयहजीव कार्य अकार्य में विचारहीनसुधर्मऔर सुमार्गसेपराङ्मुखहोजाताहै अनेक विपरीत कुमार्गोंका सेवनकरने लगता है और श्री जिनेन्द्रदेव और निर्ग्रंथ सुगुरु का शत्रु बनजाता है ।

८४३। हे भगवन् यह संसारीजीव दर्शनमोहनीयके उदयसे पदार्थोंको विपरीत किसप्रकार जानने लगता है—दर्शनमोहनीय कर्मकउदयसे यह जीव नीच देवोंकोआप्त तथा सच्चा देव समझने लगताहै, परिग्रह सहित कुगुरुओंको ही उत्कृष्ट सुगुरु समझताहै, कुपात्रोंको सुपात्र, हिंसादि अशुभकर्मोंको शुभकर्म, अधर्मको सुधर्म, झूठकोसत्य

कुतत्त्वोंको सुतत्त्व, निर्गुणियोंको गुणवान समझता है। दर्शनमोहनीयकेउदयसे उन्मत्तके समान यह जीव थोड़ीसी सदृशता ही देखकर उपर्युक्त प्रकारसे पदार्थों को विपरीत जानने लगताहै ।

८४४। इसी प्रकार यह जीव अन्य किन२ पदार्थोंको विपरीत समझता है—मोहनीय कर्मकेउदयसे ही यह जीव धर्मको हिंसास्वरूप मानने लगता है अर्थात् हिंसा करना कभी धर्मनहीं होसकता परंतु यह मोही जीव उसीको धर्म मानने लगता है ।

८४५। इस विषयके कोई दृष्टांत हों तो कहिये—जैसे उन्मत्त बुद्धिहीन, पित्तज्वरवाले और धतूरा खानेवाले पुरुष पदार्थोंकी परीक्षा तो कर नहींसकते अपनी इच्छानुसार चाहे जैसा स्वीकारकरलेते हैं। उन्मत्त पुरुष बहिनों को स्त्री और स्त्रीको बहिन कहदेता है। पित्तज्वरवाला पुरुष मीठेको कड़वा बतलाता है। इसी प्रकार मोहनीयकर्मरूप मद्यके नसेसे यहजीव तत्त्वोंको कुतत्त्व और कुतत्त्वोंको सुतत्त्व समझनेलगताहै तथा धर्मको अधर्म और अधर्मको धर्म समझलेता है।

८४६। चारित्रमोहनीयकर्मका बंध किन २ कारणोंसे होता है—

चारित्रमोहनीकर्मकेउदयसे होनेवाले तीव्र खोटे परि-णामोंसे, कषायोंकेतीव्रउदयसे, राग, द्वेष, मद, उन्मत्तता लोभ, क्रोध, इंद्रियोंके विषयोंका सेवन करना तथा और भी अनेक क्रूरकर्मोंके द्वारा यह कुतत्त्वलँपटी जीव चा-रित्रमोहनोयकर्मका बंधकियाकरता है अर्थात् इन उ-उपर्युक्तकारणोंसे चारित्रमोहनीय कर्मकाबँधहोता है।

८४७। इस कर्मकेउदयसे क्या होता है—इस चारित्रमोह-नीयकर्मकेउदयसे यह जीव चारित्र धारणनहीं कर स-कता कदाचित् किसीजीवके पहलेसेही चारित्रविद्यमा-न होतो वह इस कर्मकेउदयसे तुरंत छूटजाता है।

८४८। किन२ दुराचारोंसेपुरुषको स्त्रीपर्यायधारणकरनी पड़ेतीहै-अतिशय तीव्ररागरखनेसे, कामसेवनस.. लनहोनेसे, छलकपट करनेसे, ब्रह्मचर्यका घातकरनेसे, अतिशय मोह करनेसे, अतिशय मूर्खतासे तथा औरभी निंद्य कर्म करनेसे यह पुरुष स्त्रीवेदकेउदय होनेसे स्त्रीपर्यायमें उत्प-न्न होता है।

८४९। स्त्रियाँ कौन २ सत्कर्म करनेसे नरपर्याय धारण करतीहैं-शील पालन करने छलकपटका त्याग करने, काम राग और हास्यादिका त्याग करनेसे सरल परिणाम रखने

तथा औरभी शुभाचरण पालनकरनेसे स्त्रीपर्यायसे पुरुष पर्यायधारण कर सकती हैं ।

८५० । नंपुसक कौन२ कर्मोंसे होता है—अनंगक्रीड़ा (काम सेवनके अँगोंसे भिन्न अँगोंमेंक्रीड़ा)करनेसे, तीव्र राग तीव्र द्वेष और उत्कट अभिमान रखनेसे,शील व्रत आदि शुभाचरणोंके त्याग करनेसे,परस्त्री सेवनकी सदा आकांक्षा रखने से तथा और भी निंद्यकर्म करनेसे यह जीव नपुंसक नामक चारित्रमोहनीय कर्मके उदयसे नपुंसक होजाता है ।

८५१ । हास्यकर्मका बंध किन २ कारणोंसे होता है - जोर से हंसने,शरीरकी खोटी चेष्टाओंको करने,दूसरोंको हंसी उडानेवाले दुर्वचन कहने और सराग बचन कहनेसें हास्यकर्मका बंध होताहै ।

८५२ । हंसनेसें क्या हानि होतीहै-प्रतिष्ठाऔर पूज्यतानष्ट होजातीहै । हंसीकरनेमेंवेश्याकेसमानरागोत्पादक भंड वचनकहनेपड़तेहैं जिससेउन्हें तीव्रपापकाबँधहोताहै।

८५३ । रतिकर्मका बंध किन २ कारणोंसे होता है-सराग वचनोंकेसवन करने,कायकीखोटी चेष्टाकरने और प्र-

धिक बोलनेआदिसे रतिकर्मका बंध होताहै।

८५४ किन२ कार्योंमें रतिकरना शुभहै—ध्यान,अध्ययनकरनेमें,नमस्कारादिउत्तम मँत्रोंकेजपकरनेमें,समाधिधारणकरने तपश्चरणकरने और व्रतपालनकरने आदिमें शुभ रतिकरना चाहिये।

८५५। किन २ कारणोंसे अरति कर्मका बंध होताहै—परस्परकीमैत्रीभँगकरने,उद्वेगकरने तथाअन्य अरति (द्वेष)को उत्पन्नकरनेवाले कारणोंसेअरति कर्मकाबंधहोताहै।

८५६। किन २ कार्योंमें अरतिकरना शुभहै—सांसारिक और शारीरिकसुखोंमें,भोजन,शयन,कामसेवन और घर कुटुंबादिकमें अरतिकरना अर्थात् इन्हें छोड़करदीक्षाधारण करने की इच्छारखना शुभहै।

८५७। शोक कर्मका वंध किन २ कारणोंसे होता है—शोककरनेवाले वचन कहनेसेस्वयं शोककरने तथा अन्यलोगों को शोकउत्पन्न करानेसेतथाऔरभीशोक उत्पन्नकरने वालीक्रियाओंके करनेसे शोककर्मका बंधहोताहै।

८५८। किस विषयमें शोककरना अच्छा है—यदिशुभयोगबदलकरअशुभरूप होगये होंअथवाइंद्रियोंकेविषयरूपवन

करनेसेसम्यक् तपश्चरणमेंवा सम्यक् व्रतादिकोंमेंकोई अतिचार लगगयेहों तोवहाँ पर उनका शोककरनाबुरा नहींहै। क्योंकिवह शोकयोगोंको (मनवचनकायकोंक्रियाओंको) शुभरुपकरने और तपश्चरण वा व्रतादिकों को निर्मल पालन करनेकेलिये ही है।

८५९। जो लोग इष्टवियोग होनेपर शोक करते हैं उनकी क्या हानि होती है—उनके सुख, धर्म औरशुभध्यानादिक सब नष्ट होजाते हैं और परलोकमें नीच दुर्गतियोंमें पड़ना पड़ता है।

८६०। शोक किसका करना चाहिये—अपनेआत्माका। क्योंकि यह आत्मा यमकी दाढ़ोंके बीचमें पड़ाहुआहै और रातदिन बराबरमरनेके सन्मुख होरहा है।

८६१ भयकर्मकाबन्ध किन २ कारणोंसे होताहै—अन्यजीवोंको त्रासदेनेवाले अशुभदुर्वचन करनेसे और ताड़नादि के द्वाराअपने को तथा अन्य जीवोंको भयउत्पन्न करानेकी चेष्टा करनेसे भयकर्मका बंध होता है।

८६२ कहां २ भय करना अच्छा है—इस आत्माके साथ पंचेंद्रियरूपचोर लगे हुयेहैं ये आत्मा के सम्यग्दर्शनादि रत्नोंको अवश्यचुरावेंगे इसलिये इनसेभय करना

और इनसे आत्माको बचायेरखना अच्छा है । इसीप्रकार इस जन्ममरणरूपसंसारसे, पापरूप शत्रुओंकेसंगमसे और संसारसागरमेंडूबनेसे भयकरना और इनसे आत्माको बचाये रखना अच्छा है ।

८६३। जुगुप्साकर्मका बंध किन २ कारणोंसे होताहै—घोरतप आचरणकरनेकेकारण जिनके शरीरपर पसेव और धूलि आदि जमरही है ऐसेसाधु तपस्वियोंकी निंदा करने से तथा और भी ग्लानि उत्पन्नकरनेकी क्रियाओंको करने से जुगुप्सा कर्मका बँधहोता है ।

८६४। किन २ विषयोंमें जुगुप्सा करना अच्छाहै— शारीरिक कुत्सित दुःखोंमें, कामसेवनकरनेमें, इंद्रियोंके विषयसेवनकरनेमें तथा औरभी निंद्यकर्मोंमेंसदा जुगुप्सा करना चाहिये ।

८६५। और कहां २ जुगुप्सा करना चाहिये—स्त्रियों के साथ रमणकरनेमें तथा उनकेमुखादिककुत्सित अंग उपांगों में जुगुप्सा करना चाहिये ।

८६६। इनके सिवाय और कहां जुगुप्सा करना उचित है— स्त्रियोंकामुख लार श्लेष्मा आदिसे भराहुआहैं, उदर कीड़ेऔरविष्ठाका घरहै, स्तनद्वय मांस पिंडहो है, शरीर

रुधिरमांसआदिसप्तधातुकाबना हुआ अतिशयवीभत्स असार अपवित्र है। योनिआदि मलमूत्रादिके निर्गम द्वारहै। अतएव स्त्रियोंका यहऐसा शरीर अवश्य जुगुप्सा करने योग्यहै।

८६७। क्रोध नामक चारित्रमोहनीयकर्मका बन्ध किन २ कारणोंसे होताहै-अपनेको तथाअन्यपुरुषोंको क्रोध उत्पन्न कराने वाले वाक्य कहनेसे तथा क्रूरऔर रौद्र चेष्टाओंके करनेसे क्रोधकर्मका बंध होताहै।

८६८। कहां क्रोध करना अच्छाहै--कर्मरूप शत्रुओंके नाश करनेकेलिये इंद्रियरूप चोरोंके निग्रह करनेकेलिये और दुष्टकषायोंको जीतनेकेलिये क्रोधकरना अच्छाहै।

८६९। मान कर्मका बन्ध किन २ कारणोंसे होता है-अभिमानीपुरुष जोनिरंतर अभिमानऔर अहँकारमें चूर रहते हैं गुरु,धर्म आदिकोंका तिरस्कार किया करते हैं उससे उन मानकर्मका बंध होताहै।

८७०। अभिमान कहां करना चाहिये-पंचेंद्रियोंके मान मर्दनकरनेमें कर्मरूपशत्रुओंके जीतनेमें और परीषहरूप योद्धाओंकोविजय करनेमें अभिमानकरना अच्छाहै।

८७१। माया नाम कर्मका बन्ध किन २ कारणोंसे होता है—

मायावी पुरुषोंके कुकर्मकरनेसे, छलकपट करनेसे, झूठे प्रयोग करनेसे, कुटिलता करनेसे और अपने आत्माको तथा अन्यलोगोंको ठगनेसे मायाकर्मकाबंधहोताहै ।

८७२। माया कहां करना चाहिये-पंचेंद्रियसुखोंकोधोखा देनेकेलिये, कर्मरूपशत्रुओंकोघातकरनेकेलिये और सांसारिक दुःखनाशकरनेकेलिये मायाकरना बुरानहींहै। भावार्थ—ऐसी मायाकरना चाहिये।जिससे सांसारिक दु;ख और कर्मशत्रु सबनष्ट होजायं ।

८७३। लोभ कर्मका बन्ध किन २ कारणों से होता है——जोभी पुरुषक सुवर्णरत्न आदि सुन्दर२ बस्तुओंमें लोभआशा और आकांक्षारखनेसे लोभकर्मका बंध होता है ।

८७४। कहां लोभ करना अच्छा है—ध्यान, अध्ययन, यजन, योग तपश्चरण, धर्म, रत्नत्रय, जिनेंद्र सेवा और मोक्ष प्राप्तिकेलिये लोभकरना अच्छा है।

८७५। ऐसे कौन पुरुषहैं जो महालोभी होकरभी श्रेष्ठ गिनेजातेहैं- जोपुरुष वीतराग सर्वज्ञ को समवसरणादि विभूतिको सदाचाहते रहतेहैं तथा लोकशिखर पर विराजमान होकर तीनोंलोकोंकी राज्यसंपदा (मोक्षसंपदा) चाहते रहते हैं वे महालोभी पुरुष उत्तम गिने जाते हैं ।

८७६। प्रथमकषोयका नाम अनंतानुवंधी क्यों पड़ाहै– क्योंकि यह कषाय अनंत दुःख देनेवालाहै, अनँतभव और अनंत जन्ममरण करानेवालाहैं, और अनंत कर्मोंका कारण है इसलिये इसे अनँतानुबंधी कहते हैं।

८७७। यह अनंतानुबंधी कषाय क्याकरताहै—यह कषाय आत्माके सम्यग्दर्शन गुणका घात करता है और मनुष्यों के अनंत भव तथा अनंतदुःख सदा बढ़ाता है।

८७८। अप्रत्याख्यान कषाय क्या करता है—-अप्रत्याख्यान कषाय आत्माके एकदेश त्याग रूप परिणामोंका घात करता है अर्थात् अणुव्रत नहीं होने देता।

८७९। प्रत्याख्यानकषाय क्या करता है-महाव्रतका घात करताहै अर्थात् आत्माके त्यागरूप परिणामनहीं होनेदेता

८८०। संज्वलनकषाय क्या करता है—यह कषाय केवल ज्ञानरूप विभूतिको उत्पन्न करनेवाले मुनियों के यथाख्यात चारित्रको पूर्णतयाघात करताहै अर्थात् संज्वलनकषायके होनेसे यथाख्यातचारित्र नहीं हो सक्ता।

८८१। आयुकर्म क्याहै और वह कितनेप्रकारकाहै—जैसे कैदी के पैरमें पड़ाहुआ खोड़ा उसे वहीं रोकरखता है उसी प्र

कार जो नरनारकादिपर्यायोंमें रोके उसे आयुकर्म कहते हैं। वह चार प्रकार है देवायु मनुष्यायु नरकायु तिर्यक् आयु

८८२। सज्जनपुरुषोंके देवायुकर्मका बंध किन२ पुण्य कर्मोंसे हुआ करताहै- जो पुरुष सम्यग्दृष्टी हैं, व्रती हैं, मुनियों का संयम धारण करनेवाले हैं, अथवा श्रावकोंके व्रतधारण करने वाले हैं जो पुरुष धर्मध्यानमें सदा तत्पर हैं, पंचेंद्रियों के जीतने वाले हैं, सम्यग्ज्ञानी हैं, सुचतुर हैं, तपश्चरण पालन करनेमें सदा तत्पर हैं, शीलवान हैं, सदाचारी हैं, जिनभक्त हैं, वा गुरुभक्त हैं, जो पात्रदान तथा जिनपूजा आदिमें सदालीन रहते हैं और धर्मपरायण हैं। इनके सिवाय औरभी अनेक शुभाचरणोंसे सदा सुशोभित रहते हैं वे महापुरुष उस सम्यग्दर्शन व्रत, तपश्चरण, पात्रदान, धर्मध्यान. जिनपूजाआदिके प्रभावसे देवायुकर्मका बंध करते हैं अर्थात् वे मरकर अवश्य ही देव होते हैं।

८८३। कल्पवासी अथवा कल्पातीत देवों की आयुका बंध किस पुण्यकर्मसे होताहै— उत्तम सम्यग्दृष्टी पुरुषोंको सम्यग्दर्शनादि उत्तम धर्मके प्रभावसे नियमसे कल्पवासी वा कल्पातीत देवायुका ही बंध होता है।

८८४। जो जीव स्वर्गमें देव उत्पन्न होते हैं उन्हें किस २ प्रकार के

उत्तम सुख प्राप्त होते हैं—उन्हें इंद्रिय जन्य अनेकप्रकार के सुख प्राप्त होतेहैं गीत,नृत्य,वादित्र,इच्छानुसार क्रीड़ा करना,इच्छानुसार विहारकरना,दिव्य और अतिशय सुन्दर देवियोंके शृँगार हावभाव विलास कटाक्ष आदि का सुख मिलना तथा पंचेंद्रियोंको आल्हादनकरनेवाले दुःखरहित दिव्य अक्षय सुखोंकी निरंतर प्राप्ति होनाआदि अनेक सुख देवोंको प्राप्त हुआ करते हैं।

८८५। देवोंको और कैसा सुख मिलता है—देवोंको जो सुख मिलताहै वह उपमारहितहै। वैसा सुख और किसीको प्राप्तहो नहीं सक्ता। इसकारण उसकेलिये किसीको उपमा नहीं दे सकते।

८८६। मनुष्यायुका बंध किन२ कारणोंसे होताहै और किनके होताहै-जो उत्तम पुरुषहैं,जिनकेपरिणाम स्वभावसेही कोमलहैं जो आर्जव सत्य क्षमादिगुणोंसे विभूषित हैं,जिनभक्तहैं सदाचारीहैं,अल्पारंभी औरअल्पपरिग्रहीहैंवे जीव स्वाभाविक कोमलता अल्पारंभता अल्पपरिग्रहता आदि गुणोंके कारण उत्तम कुलमें धनी और नीरोग मनुष्य होतेहैं।

८८७। तिर्यंच आयुकर्मका बंध कितने और किन२ कारणोंसे हो

ताहै-जो जीव मायावीहैं व्रतरहितहैं शीलरहितहैं जिनका हृदय सदा कुटिल रहता है जो दूसरोंके ठगनेमें बड़े निपुणहैं झूठे लेख लिखने तथा झूठे प्रयोग करनेमें सदा उद्यत रहते हैं वे जीव उपर्युक्त पापोंके कारण तिर्यंच आयुका बंध करते हैं।

८८८। कौन२ रौद्र जीव किन२ रौद्रकर्मोंसे नरकायुकर्मकाबंधकरते हैं-जो जीव अतिशय क्रूरहैं, जिनके हृदय अतिशय क्रूर रहते हैं, जो कुमार्गगामीहैं, रौद्रध्यानमें सदा लीन रहतेहै, सदा रौद्रकर्म करते रहतेहैं, जो महापापीहैं, अतिशय विषयासक्तहैं. शीलरहितहैं सप्तव्यसनोंको सेवन करनेवालेहैं बहु आरंभीहैं महापरिग्रहीहैं. निरंतर पापोपार्जन करनेमें तत्पर रहतेहैं. अनंतानुबंधी कषाय तथा कृष्णलेश्याको धारण करनेवालेहैं, तीव्रकषायीहैं जिनमार्ग जिनसिद्धांत निर्ग्रंथमुनि और श्रावकों को सदा निंदा किया करतेहैं. सदा मिथ्यामार्ग का सेवन करते रहतेहैं। जो नीचदेव और कुगुरुओं की सेवा करतेहैं तथा तपश्चरण जिनधर्म जिनालय आदि में सदा विघ्न किया करतेहैं मिथ्याधर्म और कुमार्ग में

चलनेकेंलिये सदा प्रेरणा किया करतेहैं और जो पाप कर्म करनेमें बड़े पंडितहैं। वे महापापी जीव उपर्युक्त महापाप करनेसे तथा और भी अनेक कुकर्म करनेसे अशुभ नरकायुकर्मका बंध करते हैं।

८८६। हे पूज्य! नरकमें जानेवाले नारकी जीवोंको कैसे२ दुःख भोगने पड़ते हैं नारकियोंको क्षण क्षणमें ताड़न मारन आदिक अनेक दुःख सहने पड़तेहैं। अन्य नारकी लोग मिलकर तिल२के समान उनके शरीरके टुकड़े कर देतेहैं रुधिरादिसे भरी हुईवैतरणी नदीमें उसे डुवा देतेहैं पर्वतके शिखरपरसे गिरा देतेहैं। जलते हुए तेलके बड़े कढावमें पटक देतेहैं, हड्डियोंको चूर२कर देतेहैं। शाल्मलिवृक्षोंके नीचे ले जातेहैं। जहांकि तलवारके समान उन वृक्षोंके पत्ते शरीरपर पड़कर उसके टुकडे२कर देतेहैं। कहां तक कहाजाय वहांके नारकी परस्पर एक दूसरेको सदा करोड़ों प्रकारके दुःख दिया करतेहैं।

८६०। जो पुरुष परस्त्रीलंपटहैं उन्हें नरकमें किस प्रकारके दुःख भोगने पड़ते हैं-अनेक नारकी मिलकर क्षण क्षणमेंउसके शरीरसे जलती हुई लोहेकी पुतलियां लगाते हैं। जिनसे उसे आतंत्य दुःख होता है।

८९१। जो जीव स्वेच्छानुसार भक्ष्य अभक्ष्य आदि भोजन किया करते हैं उन्हें नरकमें कैसी क्षुधावेदना सहनी पड़तीहै-उन्हें वहां ऐसी क्षुधा सहनी पड़तीहै कि यदि वे तीनों लोकोंका सँपूर्ण अन्न भक्षण करलें तथापि तृप्त न हों परँतु वहां उन्हें एकदानाभी नहीं मिलता। उस भूखसे रातदिन उनका शरीर सूखा करता है।

८९२ जो जीव रात दिन पानी पिया करते हैं अर्थात् त्रिरामें भी पानीका त्याग नहीं करते उन्हें नरकमें कैसी प्यास सहनी पड़ती है-नारकियोंके उदरमें प्यासकी ऐसी दुःसह ज्वालाजला करती है कि यदि वे सब समुद्रों का पानी पी जांय तब भी वह उनकी ज्वाला शांत न हो।

८९३। जो जीव नेत्रोंके द्वारा पापोपार्जन किया करतेहैं अर्थात् स्त्रियोंके सुन्दर अंग उपाँग हाव भाव विलासादि देखा करतेहैं उन्हें नरकमें क्या दुःख उठाना पड़ताहै-अन्य नारकी लोग अनेक प्रकार के आयुधोंद्वारा क्षणक्षणमें उनकेनेत्र निकाला करतेहैं

८९४। जो जीव रातदिन बुरा चिंतवन किया करते हैं उन्हें नरकमें कैसे२ दुःख सहन करने पड़ते हैं-अन्य नारकी जीव उनका उदर फाड़ डालतें हैं और भीतरकी अंतड़ियोंका चूर २ कर देते हैं।

८९५। जो जीव रातदिन स्नान करनेमें हो पुण्य समझतेहैं किंतु स्नान द्वारा अनेक जलचर और जलकायिक जीवोंका घात कर महा

पापका बंध किया करते हैं उन्हें नरकमें कैसा दुःख भोगना पड़ताहै-असुरनारकीजीव उन्हें वैतरणीनदीमें लेजाकर बार२ डुबातेहैं। नरकोंमें वैतरणी नामकी नदीहै जो क्षार रुधिर आदि महा अपवित्र और अतिशय दुर्गंध पदार्थोंसे भरी हुईहै। इनमेंपड़नेसे नारकियोंको अतिशयदुःख होताहै

८९६। हे भगवन् नरकोंमें विभंगावधिज्ञान भी है उसे वे नारकी किस उपयोगमें लगातेहैं-नारकीजीवकेवलपापकार्योंमें ही पंडितहै। उस विभंगावधिज्ञानसे वे केवल पूर्वभव की शत्रुता जान लेतेहैं और फिरउसीशत्रुताकेबहानेसे वे परस्पर अनेकप्रकारके दुःख और पीड़ा पहुचाया करतेहैं।

८९७। नारकीजीवोंके वैक्रियिक शरीर होताहै उससे वे क्याकाम लिया करतेहैं-वैक्रियिकशरीरसे वे अनेक प्रकारकेआयुधउत्पन्नकरलेतेहैं और उन आयुधोंसे परस्पर एक दूसरेका शरीर छिन्न भिन्न कियाकरतेहैं वा सिंह सर्पादि क्रूरघातकरूप धारणकर परस्पर एकदूसरेको भक्षण करतेहैं।

८९८। नरकोंमें शीत और उष्णताका दुख कैसाहै-जहांशीतहै वहां ऐसी शीतताहै कि यदि एक लाख योजन ऊंचे मेरुपर्वतके समान एक लोहेका पिंड गलाकर उसमें डालाजाय तो वह पड़ते२ ही कठिन होजाय। जहां

उष्णताहै वहां यह ऐसीहै कि यदि उसी मेरुपर्वत के समान लोहेका पिंड डाला जाय तो वह पडते २ ही गल जाय । ऐसी शीत उष्णताका दुःख उन नारकियोंको सागरोंपर्यंत भोगना पड़ताहै ।

८९९ । नरकमें रहनेवाले नारकियोंको कभी थोड़ा बहुत सुख मिला करताहै या नहीं-नारकियोंको निमेषमात्रभी कभी सुख नहीं मिलाकरताहै । उन्हेंछेदनभेदनादिसे होनेवाले अनेकप्रकारकेघोरदुःखही दुःखसदा भोगने पड़तेहैं और वे दुःखभी ऐसेहैंजिनका वर्णनमहाकविभीनहींकरसकते

९०० । नामकर्म किसे कहतेहैं-जोकर्म चित्रकारके समान इसजीवकेमनुष्य देवपशुआदिअनेकआकारबनायेउसे नामकर्मकहतेहैं।अभिप्राय:यहहैकिजैसेचित्रकारअनेक प्रकारकेचित्रबनायाकरताहैउसीप्रकारजिसकर्मकेउदयसेइसजीवके देवपशु लंबाठिगना सुन्दरअसुन्दर आदिशरीरकेअनेक आकारबनतेहैं उसे नामकर्मकहतेहैं।

९०१ । किन २ दुराचरणोंसे अशुभनामकर्मका बंध होता है— मनबचनकायकीकुटिलता रखनेस,अरहंतदेवजिनशास्त्रनिर्ग्रंथमुनिऔर धर्मात्माओंकी निंदाकरनेसे औरकुदेव कुशास्त्र तथाकुगुरुओंकी स्तुति पूजा आदिकरनेसे

अशुभनामकर्मका बंधहोताहै ।

६०२ । यह अशुभनामकर्म क्या फल देता है—पापी जीवों काजोशरीर अशुभहोताहै दुर्गंधमयहोताहै कुरूपहोता है उसके स्पर्शरसआदि भीबुरेहोतेहैं । कुत्ताबिल्ली गधा आदिनीच पशुओंकाशरीर,नारकियोंका हुंडकशरीरभील आदि जँगली मनुष्योंका शरीर जो अशुभ निंद्य और भयानक होता है वह सब अशुभ नामकर्मका ही फल समझना चाहिये ।

६०३ । शुभ नामकर्मका बंध किन२ कारणोंसे होताहै-मन बचनकायकी सरलता रखनेसे,आर्जव मार्दव आदि सद्गुण धारण करनेसे,श्रीअरहंतदेव जिनसिद्धांत और मुनियोंकी स्तुति पूजा आदि करनेसे, नीच देवोंका संसर्ग छोड़नेसे और व्रतपूजा उपवास आदि शुभकर्म करनेसे शुभनामकर्मका बंध होताहै ।

६०४ । शुभ नामकर्मके उदयसे क्या होता है-शुभगति, शुभ जाति,उत्तम सुगंधसुन्दर और सुकोमल शरीर आदिकी प्राप्तिहोतीहै । पुण्यवान पुरुष शुभनामकर्मके प्रभावसे ही उत्तममनुष्य और देवोंके उत्तमस्थानोंमें प्राप्तहोतेहैं

औरसौभाग्य आदिअनेकप्रकारकेसुखउन्हेंमिलाकरतेहैं

१०५। कौन२ पुरुष सुन्दर रूपवान् होतेहैं-जो पुरुष अपने सुन्दररूपका कभी अहंकार नहीं करते निरंतर तपश्चरण करतेहैं, व्रत यम नियम आदि पालन करतेहैं, जो देव-शास्त्रगुरुकी भक्ति और पूजा करतेहैं, उन्हें सदा प्रणाम करतेहैं। अपनेकल्याण औरभलेकेलियेकभीशरीरसंस्कारादिनहींकरतेवेपुरुषपुण्योदयसेअतिशयसुन्दरहोतेहैं।

१०६। कोन२ अशुभकर्म करनेसे मनुष्य कुरूपी होतेहैं-जो पुरुष अतिशय रागीहैं, अपने सुन्दर रूपादिके अहंकारीहैं, जो अन्यस्त्रियोंके लुभानेकेलिये स्नान वस्त्राभूषणादिसे रातदिन अपने शरीरका संस्कार किया करतेहैं, जो यम नियमतप व्रत आदिशुभानुष्ठानोंको जानतेहीनहीं जिनभक्ति जिनपूजादि कभी करतेहीनहीं। वेजीव अशुभकर्मके उदयसे अतिशय कुरूपी होते हैं।

१०७। तपश्चरणादिके योग्य दृढशरीर और दृढसंहनन किन२ शुभ आचरणोंसे प्राप्त होताहै-जो जीव मोक्षप्राप्त होनेकेलिये अपनी पूर्णशक्ति प्रगटकर कठिन २ तपश्चरण, ध्यान यम नियम आदि धारण करते हैं, सदा जिन पूजा

जिनभक्ति आदि किया करतेहैं, वे पुरुष उस शुभ-कर्मके उदयसे वज्रशरीरी होते हैं ।

२०८। किन२ अशुभकर्मोंसे ऐसा दुर्बल और हीन शरीर प्राप्त होताहै कि जो तपश्चरण धारण नहीं कर सका-जो पुरुष अतिशय शक्तिशाली होकरभी तपश्चरण ध्यानव्रत यमनियम आदि पालन नहीं करते अपने शरीरको सुख पहुचानेमें ही सदालीन रहतेहैं उसीकेलिये अनेक अशुभ कर्म करते रहते हैं जो धन बल आदिके अहंकारमें चूरहैं ऐसे पुरुष परलोकमें दुर्बल और अशक्त होतेहैं ।

२०९। देव विद्याधरादिकोंका शुभगमन किन२ कारणोंसे होताहै-ईर्यापथशुद्धि और तीर्थयात्रा आदि शुभाचरणोंमें शुभगमन (शुभविहायोगति) की प्राप्ति होतीहै ।

२१०। ऊंट गधा पक्षी आदि पापी जीवोंका अशुभगमन किन २ पापोंसे प्राप्त होताहै-कुतीर्थ यात्रा करने और स्वेच्छानुसार व्यर्थ इधर उधर फिरने आदि अशुभ कर्मोंसे अशुभगमनको प्राप्ति होती है ।

२११। पंगु अर्थात् लंगडे किन२ दुराचरणोंसे होतेहैं-जो जीव अपने पैरोंसे अनेक जीवोंकोकुचल डालतेहैं, धनके लोभमें पड़कर पशु और दास दासियोंको कठिन और

दूरवर्तीमार्गमें चलातेहैं, जो जीवोंकी हिंसा करते हुए रातदिन इधर उधर व्यर्थ घूमा करतेहैं, वे जीव अंगोपांगकर्मके उदयसे पराधीन लँगड़े होतेहैं ।

६१२ । किस पुण्यकर्मसे मनुष्य सुस्वर होताहै- जो जीवरात दिन मिष्ट सुकोमलवाणीसे धर्मोपदेश देते सुदेवशास्त्र गुरुके स्तोत्र गीतभजन आदि कहा करतेहैं वे जीव उस पुण्यकर्मसे सुस्वर अर्थात् कोमल आवाजवाले होतेहैं।

६१३ । दुःस्वर किस पापसे होतेहैं- जोजीवसदा कुमार्ग औरपापकर्मोंकाउपदेशदेतेहैं, अरहंतदेव जिनवाणी और निर्ग्रंथगुरुकीनिंदाकरतेहैं वेजीवउसपापकर्मसे दुःस्वर अर्थात् कठोर और कर्कश आवाजवाले होतेहैं ।

६१४ । किनर शुभाचरणोंसे सुभग (दूसरोंके प्रीति करने योग्य) होते हैं- जो जीव तपश्चरण आदिके अहंकारसेदूरहैं, देव शास्त्र गुरुकी सदा पूजा भक्ति आदि किया करते हैं, व्रत शील शुभाचरणआदि पुण्यकर्मोंमें सदा प्रीति रखतेहैं और कभी किसीको किसीप्रकारकी पीड़ा नहीं देते, वे जीवउस पुण्योदयसे सुभग होतेहैं ।

६१५ । दुर्भग (दूसरोंको अप्रीतिके भाजन) किसपापसे होतेहैं- जोसदा दूसरोंसे द्वेष रखतेहैं अपने सौभाग्यादिके अ-

हंकारसे परस्त्रियोंकी लालसा रखतेहैं, सद्धर्मके निंदक हैं, जो अन्य लोगोंकी दृष्टिमें सदा निंद्य औरअप्रियरहतेहैं वेजीव उस पापकर्मके निमित्तसे दुर्भग होते हैं।

६१६। किस पुण्यकर्मसे धर्मात्मा लोगोंका यश सँसारभरमें फैल जाता है—जो जीवअनिंद्य और शुद्धआचरण पालन करते हैं, तपश्चरणव्रत आदि शुभक्रियाओंमें सदा लीन रहते हैं; देवशास्त्र गुरु और जिनधर्मकी सदा प्रभावना कियाकरतेहैं, उनके गुणवर्णन करते रहतेहैं, वेजीव यशःप्रकृतिकेउदय से परमयशके भाजन होतेहैं।

६१७। तीनों लोकोंमेंपापीलोगोंका अपयशकिसपापकर्मसेफैलताहै—निंद्यक्रिया करनेसे, तपश्चरण योग आदिकेद्वारा अपने गुणवर्णन करनेसे, किसी दुष्टआशयसे धर्मात्मा और गुणवान पुरुषोंके वृथादोष प्रगट करनेसे, तथा और भी अपयशके काम करनेसे अयशःकीर्तिनामकर्मके उदय होनेपर संसारभरमें कलँक फैल जाता है।

६१८। तीर्थंकर नामकर्मका बंध किन २ कारणोंसे होता है—दर्शनविशुद्धि १ विनय संपन्नता २ शीलऔरव्रतोंकोनिरतिचार पालन करना ३ निरंतरज्ञानोपयोग ४ संवेग ५ शक्तितस्त्याग ६ शक्तितस्तपः ७ साधुसमाधि ८ वैयावृत्य ९

अर्हद्भक्ति १० आचार्यभक्ति ११ उपाध्याय भक्ति १२ शास्त्रभक्ति १३ आवश्यकअपरिहाणि १४ मार्गप्रभावना १५ और प्रवचनवत्सलत्व १६ इन सोलहकारणोंसे तीर्थंकरनाम कर्मका बंध होता है।

८१९। दर्शनविशुद्धि किसे कहते हैं—पच्चीसदोषरहित निर्मल सम्यग्दर्शनको पालनकरना दर्शनविशुद्धि कहलाती है। यह दर्शनविशुद्धि तीर्थंकरप्रकृतिकेलियेमुखकारणहै

८२०। विनय किन२ को करना चाहिये—सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र तपश्चरण और इनको धारण करनेवाले गुणवान् पुरुषोंका मनवचनकायसे प्रत्यक्ष तथा परोक्षविनयकरना चाहिये।

८२१। अतिचार (दोष) कहां २ नहीं लगाना चाहिये—अहिंसादिक पांच व्रतोंमें, गुणव्रतशिक्षाव्रत शीलोंमें, तपश्चरणमें, त्रिकालसामायिकमें और यमनियमादिकों में कभी अतिचारनहीं लगाना चाहिये।

८२२। निरंतरज्ञानोपयोग किसे कहते हैं - ग्यारह अंग चौदह पूर्व, अंगवाह्य आदि संपूर्णशास्त्रोंको प्रयत्नपूर्वक निरंतर पठन पाठन करना मनन करना आदि निरंतरज्ञानोपयोग (अभीक्ष्णज्ञानोपयोग) कहलाता है।

१२३। किन २ पदार्थों से संवेग (वैराग्य) करना चाहिये—जन्ममरणरूपसंसारसे, भोगोपभोगके संपूर्ण पदार्थोंसे और अनेक अनर्थ करनेवाले घर धनधान्य स्त्री पुत्रआदि से सदा संवेगरूप परिणाम रखना चाहिये।

१२४। शक्तिके अनुसार त्याग किसप्रकार करना चाहिये—चार प्रकारकाउत्तमदान देना अर्थात् अपनाधनधान्यादिआहारदान औषधदान अभयदानऔर ज्ञानदानमें खर्चकर देना वा जिनवंदना स्वाध्यायआदि [illegible] त्यालय, स्वाध्यायालयआदि [illegible] करदानदेनाउचितहै

१२५। शक्तिके अनुसार तपश्चरण किसप्रकार करना चाहिये—अपने संपूर्ण पराक्रम और शक्ति प्रगटकर बारह प्रकार के घोर तपश्चरण करना चाहिये।

१२६। साधुसमाधि किसप्रकार करना उचितहै—धर्मोपदेश देकर अथवा मनबचनकाय से समाधि (ध्यान) धारण करनेवाले योगियोंकी सेवा सुश्रूषा आदि करकेसाधुसमाधि धारणकरना उचित है।

१२७। वैयावृत्य किस प्रकार करना चाहिये—आचार्य उपाध्यायादि अनेकप्रकारके सद्गुण धारण करनेवाले दश प्रकारके मुनियोंकी सेवा सुश्रूषा पांवदावना आदिसे

वैयावृत्त्य करना चाहिये ।

१२८। अर्हद्भक्ति किसे कहते हैं-अन्य सबको छोड़कर मन बचनकायसे केवलअरहंतदेवकी पूजा भक्ति सेवा स्तुति आदि करना अर्हद्भक्ति कहलाती है ।

१२९। आचार्यभक्ति क्या है-आचार्य परमेष्ठीको प्रणाम करना उनका विनय और आराधना करना आदिअनेक गुण प्रदान करनेवाली आचार्यभक्ति है ।

१३०। उपाध्यायभक्ति किसे कहते हैं—अंगपूर्वादिको जाननेवाले और निरंतर पठन पाठन करनेवाले उपाध्याय परमेष्ठीकीगाढ भक्ति करना तथा मनवचनकायसे उनका आराधनकरना आदि उपाध्यायभक्तिकहलातीहै

१३१। शास्त्रभक्ति किसे कहतेहैं-जिनसिद्धांतमें तथा उनकेकहेहुए वचन और पदार्थोंमें श्रद्धा रुचि और निश्चय करना तथा जिनसिद्धांतकी पूजा स्तुति आदि करना शास्त्रभक्ति कही जातीहै ।

१३२। आवश्यकापरिहाणि अर्थात् आवश्यकोंका पूर्णरीति से पालन करना किसे कहतेहैं-मुनियोंकेलिए सामायिक स्तुति बंदना प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान और व्युत्सर्ग ये छह आवश्यककर्म कहे हैं जो अवश्य कियेजाय उन्हें आवश्यककर्म कहतेहैं

मुनिलोग कर्मोंकीनिर्जरा करनेकेलियेबड़ेप्रयत्नसेअपने अपनेसमयपरइनछहोंआवश्यकीयकार्योंकोअवश्यकर तेहैंकभीछोड़तेनहींइसीकोआवश्यकापरिहाणिकहतेहैं

६३३। समता किसे कहते हैं—शत्रु, मित्र, प्रिय, अप्रिय, सुख, दुखआदि इष्ट अनिष्ट संपूर्णपदार्थोंमें एकसेपरिणाम रखना, अर्थात् इष्टसंयोग वअनिष्टवियोग होनेपरहर्षभी नहीं करना और न इष्टवियोग व अनिष्टसंयोग होने पर विषाद करना सो समताकहलातीहै।

६३४। स्तुति किसे कहतेहैं—भक्तिऔर प्रेमवश चतुर्विंशति तीर्थंकरोंके यथार्थ गुणोंकावर्णन करना स्तुतिहै।

६३५। बंदना किसे कहतेहैं—प्रातःकाल मध्याह्नकालऔर सायंकाल इनतीनोंसमयोंमें उत्तम २ गुण वर्णन कर किसीएकतीर्थंकरकी स्तुति करना बँदना कहलातीहै।

६३६। प्रतिक्रमण किसे कहतेहैं—व्रत यम नियमादिकों को निर्दोष पालनकरना वा आत्मनिंदा वा आत्मगर्हा आदि केद्वाराउनमेंलगेदोषोंका निराकरणकरना प्रतिक्रमणहै

६३७। प्रत्याख्यान किसे कहतेहैं—अपनेलिये न सदोषपदार्थोंको ही ग्रहणकरना और न निर्दोषपदार्थोंको ग्रहण

करना। तपश्चरणकरनेकेलिये संपूर्ण पदार्थोंका त्याग करना प्रत्याख्यान कहलाताहै ।

१३८। कायोत्सर्ग किसे कहतेहैं-शरीरादिक से भी सर्वथा पूर्णतया ममता छोड़कर जो धीरवीर मुनि केवल ध्यान को आलंबनकर निश्चल विराजमान होतेहैं वहकायोत्सर्ग कहा जाताहै ।

१३९। मार्गप्रभावना किसे कहते हैं-लोगोंका अज्ञानदूरकर जिनशासनकामाहात्म्य प्रगट करना अथवा तपश्चरण जिनपूजा प्रतिष्ठारथोत्सव आदिकेद्वारा जिनशासनका माहात्म्य प्रगटकरना मार्ग प्रभावनाहै ।

१४०। प्रवचनवत्सलत्व किसे कहतेहैं—सम्यग[illegible]ज्ञानी पुरुषोंकेप्रति तथा[illegible] पुरुषोंकेप्रतिगाढ [illegible]नेह रखना प्रवचनवत्सलत्व है ।

१४१। इन सोलहकारण भावनाओंके चिंतवन और सेवनकरने से क्या फल मिलता है—तीनोंलोकोंको क्षोभ करनेवाला और मोक्षकाकारण ऐसेतीर्थंकर नामकर्मका बन्ध होताहै ।

१४२। किनर भावनाओंसेतीर्थंकरनामकर्मका बंधअवश्यहोताहै-सम्यग्द[illegible] [illegible]रुषोंकनिर्मलसम्यग्दर्शनकेसाथ२ अन्यभावनाओंकेहोनेसे तीर्थंकरनामकर्मकाबंधअवश्यहोताहै।

१४३। इन सोलहकारण भावनाओंमें मुख्य कौन हैं—इन सब में निर्दोषसम्यग्दर्शनहीमुख्य है क्योंकि अन्यकारणोंके न होतेहुए भीतीर्थंकरप्रकृतिका बंधहोजाताहै परंतु सम्यग्दर्शनकेअभावमें वहबंध कभीनहीं हो सकता।

१४४। जो तीर्थंकरहोगये हैं और होंगे वेकिस पुण्यसे हुए हैं वा होंगे-जोतीर्थंकर हुये हैं वो होंगे वेसब सम्यग्दर्शनादि शुभ औरनिर्मलभावनाओंके चिंतवनकरनेसे ही हुयेहैं औरइन्हीके चिंतवन करनेसे होंगे। इन सोलहकारण भावनाओंकेबिना कभीकोई तीर्थंकर नहीं होसकता।

१४५। इन सोलहकारणभावनाओंका ऐसा उत्कृष्ट माहात्म्य समझकर क्या करना उचित है—श्रीजिनेन्द्रदेवके गुणप्राप्तकरने केलिये शुद्ध मनबचनकायसे सम्यग्दर्शन की शुद्धतापूर्वक रातदिन इन उपर्युक्त सोलहकारण भावनाओंका चिंतवन करना उचित है। इसकेचिंतवनकरनेसे निःसंदेह अभ्युदयकी प्राप्ति होतीहै।

१४६। ऊँचगोत्र किसे कहतेहैं—जिसकुलमें चक्रवर्त्ती तीर्थंकर आदि बड़े२ पुरुष उत्पन्न होसकें। जिसकुलके उत्पन्न पूज्यपुरुषदीक्षा लेसकें तथा इंद्रादि पूज्यपुरुष भी जिसे उत्तमसमझें वहकुल ऊँचगोत्रकहलाताहै।

१४७। किन २ शुभाचरणों से ऊँच गोत्र का बंध होता है--
अर्हन्तदेव निर्ग्रंथ मुनि अहिंसादि धर्म और सम्यग्दर्शनादि गुणोंको प्रणाम स्तुतिभक्ति आदि करनेसे जगत्पूज्यऊंचगोत्रकाबंध होताहै अथवा,अपनी निंदा करनेसे उत्कृष्टआचरण पालनकरनेसे अहंकार न करनेसे तथा और भी उत्तम२ आचरणपालनकरनेसे संसारकोहित करनेवाला ऊंचगोत्रका बंध होता है।

१४८। नीच गोत्र किसे कहते हैं--जिसकुलमेंउत्पन्न होनेसे दासदासी आदिकाकामकरनापड़े,जोकुल निन्द्यहो अथवाजिसमें उत्पन्न होकर दीक्षाग्रहण आदि उत्तम२ कर्म नहीं करसकें वह कुल नीचकुल कहलाता है।।

१४९। किन २ दुराचरणों से नीच गोत्र का बन्ध होता है--
धर्मात्मा और गुणवान पुरुषोंकसद्गुणोंकाघात वा लोपकरनेसे, अधर्मी और निर्गुणी पुरुषोंके असद्गुण प्रगटकरनेसे,लोगोंकीनिंदाकरने,अपने दोषछिपाने और गुणप्रगटकरनेसे तथा और भी निंद्यकर्म करनेसे नीच गोत्रका बंध होता है।

१५०। किन २ पुरुषों को ऊंच गोत्रका बन्ध होता है--
जो पुरुष सर्वोत्तमगुणोंको धारण करनेवाले देव शास्त्र

गुरुको श्रावक धर्मात्मा, व अर्जिका आदिको नमस्कार करतेहैं इनकीसेवा और स्तुति करतेहैं जो कुदेवादि पापियोंको कभी नमस्कारादि नहीं करते, वे पुरुष ऊंच गोत्रकेउदयसे उत्तमकुल और ऊंचगोत्रमें जगतपूज्य पुरुष होते हैं।

६५१। नीचगोत्रमें कौन २ पुरुष उत्पन्न होते हैं-जो पुरुष न तो कभी जिनधर्मको नमस्कारकरते हैं न देवशास्त्र को नमस्कार करतेहैं और न कभी सम्यक्चारित्रकोधारण करनेवाले गुरुओंको नमस्कार करतेहैं जो सदानीचदेवोंकोनीच औरकुकर्मकरनेवाले भेषीगुरुओंका औरहिंसकधर्मके नमस्कार करतेहैं उन्हीकी सेवा करतेहैंउन्हींका आश्रयलेतेहैं वेपुरुषनीचगोत्रकेउदयसे या चांडालादि नीचगोत्रमें धर्म सेवन करनेमें असमर्थ नीच और जगन्निंद्य होते हैं।

६५२। यह समझकर क्या करना चाहिये नीच और क्षुद्रदेवोंकोछोड़कर उत्कृष्टपदकेधारणकरनेवाले जिनेंद्रदेव निर्ग्रंथगुरुओंका स्मरण करना चाहिये। इन्हींके सेवन करनेसे उच्चगुण और उच्चगोत्रकी प्राप्ति होती है।

१५३। अंतराय— कितने भेद हैं-पांच,दानांतराय लाभांतराय,भोगांतराय,उपभोगांतराय और वीर्यांतराय।

१५४। किन २ निद्यकर्मोंसे दानांतराय कर्म का बंध होता है—जो दुर्बुद्धिपुरुषशास्त्रदान,जिनपूजा चैत्य चैत्यालयादि के उद्धारकरनेआदि शुभकार्योंमें विघ्नडालते हैं उन्हें उस घोर पापसे दानांतराय कर्मका बंध होता है।

१५५। जो पुरुष चैत्य चैत्यालयादिके उद्धार करनेमें अथवा शास्त्रदानादिमें विघ्न डालते हैं उन पापियोंको क्या फल मिलता है—उन्हें निंद्य नरकादि दुर्गतियोंमें अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं,पदपदपर उनकी निंदा होतीहै भवभव में उन्हें दारिद्र्य भोगनी पड़ती है और सब जगह नीचदीनताको दुःख उठाना पड़ताहै।

१५६। जो पुरुष यम नियम दीक्षा आदि ग्रहण करनेकेलिये उद्यत हैं पूजा प्रतिष्ठा आदि महोत्सव और अनेक धर्मकार्य करना चाहते हैं उनके उन धर्मकार्योंमें विघ्न करनेवाले पापियोंको परलोकमें कौनसी गति प्राप्त होतीहै उन्हें अनेक दुःख देनेवाले और नाना अशुभ करनेवाले सातवें नरकमें अवश्य जाना पड़ता है। इसमें किसी प्रकारका संदेह नहीं है।

१५७। यह दानांतरायकर्म क्या करता है अर्थात् इसके उदय से क्या होता है—दानांतरायकर्मके उदयसे कृपण पुरुषोंका कु-

पणता बढ़ जाती । चैत्य, चैत्यालय, स्वाध्याय। य आदि पुण्यस्थान निर्मापण करनेमें और दान करने में उन्हें अनेकप्रकारके विघ्न आ उपस्थित होतेहैं। दानांतरायकर्मके उदयसे उनके परिणाम ही ऐसे होजाते हैं जो वे उपर्युक्त किसी शुभकार्यको नहीं कर सकते।

२५८। दानांतरायकर्मका ऐसा स्वरूप जानकर मनुष्यों को क्या करना उचित है-प्रत्येक प्राणीको संपूर्ण धर्मकार्य करने के लिये मन वचनकायसे सदा सर्वथा प्रेरणा करना उचितहै। कंठगतप्राण होने पर भी इनका निवारण करना अनुचित है।

२५९। धर्मकार्योंको प्रेरणा करनेसे क्या लाभ होताहै-जो पुरुष धर्मकार्य करनेकेलिये सदा प्रेरणा किया करते हैं सदा उनकी अनुमोदना किया करते हैं मनवचनकाय तथा कृतकारित अनुमोदनासे सदा धर्मकार्य करनेका उपदेश दिया करते हैं, उन सबके सदा धर्मार्पजन और पुण्योपार्जन हुआ करता है।

२६०। किन २ अशुभ कार्योंसे लाभांतरायकर्मका बंध होता है-दूसरों के लाभमें विघ्न डालने और पापकार्योंके करनेसे लाभांतरायकर्मका बंध होता है।

२६१। लाभांतरायकर्मके उदयसे क्या होताहै-धन धान्यादि की आंकांक्षा रखनेवाले और उसको प्राप्तिकेलिये नित्य व्यवसाय करनेवाले लोगोंको लाभांतरायकर्मके उदयसे किसी वस्तु का लाभ नहीं होताहै।

२६२। भोगांतरायकर्मका बंध किन२ निंद्यकर्मोंसे होताहै-दूसरों के भोगोंमें विघ्नडालने और अपनी इंद्रियोंका सदा पोषणकरनेसे भोगांतरायकर्मका बंध होताहै।

२६३। भोगांतराय कर्मका उदय क्या फल देता है-सुन्दरभोजनादि की आकांक्षा करनेवाले भोगलोलुपी मनुष्यों को भोगांतराय कर्मके उदयसे भोजनपानादि किसी सामिग्रीकी प्राप्तिनहीं होती है।

२६४। उपभोगांतरायकर्मका बंध किन२ अशुभ कारणोंसे होताहै-दूसरोंके उपभोगमें विघ्नडालने और अपने उपभोगों की प्राप्तिकेलिये निरंतर आंकांक्षारखनेसे उपभोगांतरायकर्मका बंधहोता है।

२६५। उपभोगांतराय कर्मके उदयसे क्या फल मिलता है-उपभोगांतरायकर्मके उदयसे उपभोगकी प्राप्तिमेंसदा विघ्न पड़ाकरतेहैं।

२६६। किन २ पुरुषोंको किन २ दुराचरणों से पुत्रमित्रादि इष्ट

पदार्थोंका वियोग हुआ करता है—जोदुष्टपुरुष पशुओंके बालबच्चोंको तथा मनुष्यके बालबच्चोंको उनके माता-पिताओंसे अलग करलेतेहैं अथवा निर्दयी पुरुष किसी दुष्ट अभिप्रायसे उन्हें हरलेता है उन्हेंपुत्रमित्रादि इष्ट पदार्थोंका वियोग सहन करना पड़ताहै।

६६७। किन २ पुण्यवान पुरुषोंको कौन शुभाचरण करनेसे पुत्र मित्रादि इष्ट पदार्थोंका वियोग सहन नहीं करना पड़ता—जो सज्जन पुरुष कभी किसीके स्त्री पुत्रादिको किसीसेवियोग करना नहीं चाहते जो दूसरोंके दुःख देखकरस्वयं दुखी होते हैं उन पुण्यवान पुरुषोंके पुत्रपौत्रादि सब चिरजीवी होतेहैं। कभी किसीका वियोग नहीं होता है।

६६८। किन२शुभाचरणोंसे बड़ेरूपवान् और भाग्यशालीपुत्रहोतेहैं-व्रत,शील,उपवासआदि करनेसे दानदेनेसे और अरहंतदेवकी पूजा आदिमहोत्सव करनेसे रूपवान और भाग्यशाली पुत्रहोते हैं।

६६९। किन २ दुराचरणोंसे बंध्यात्व (पुत्र पुत्री आदि संतानका न होना) प्राप्त होता है—अत्यंत काम सेवनकरनेसे अथवा चंडी क्षेत्रपालआदि कुदेवोंकी पूजा भक्तिकर मिथ्यात्व सेवनकरनेसे बंध्यात्व प्राप्त होताहै।

१९० । धनी किन २ शुभाचरणोंसे होते हैं—लोभ और पाप रूप दुर्व्यसनोंकात्यागकरदेनेसेतथादानदेने जिनपूजा करने और व्रतपालनकरनेसे प्रचुरधनकी प्राप्ति होतीहै

१९१ । उपर्युक्त कथनानुसार शुभाशुभ कर्मबन्ध करनेवाले जीवों को प्रतिक्षणमें होनेवाले कर्मफलको जानकर क्या करना उचितहै-यह उपर्युक्त कर्मोंकाविपाक समझकर मोक्ष रूप सुख प्राप्त होनेकेलिये यहीउचितहै कि कर्म काबंध करनेवाले रागद्वेषरूपपरिणामोंको नष्टकर ध्यानव्रत यम नियमादिद्वारा कर्मफलोंको जीतें ।

जो बुद्धिमान् पुरुष अनेकप्रकारके सुखदुःखदेनेवाले इन कर्मफलोंकोजानककर धैर्यधारणकर उपर्युक्त विधि सेसहन और विजयकरते हैं उन्हेंउनके कर्मरूपशत्रुनष्ट होजानेसे अनंत सुखकी प्राप्तिहोतीहैसर्वत्रउनका जय होता है। सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रआदि उत्तम २ गुण प्राप्ति होतेहैं और अंतमें उन्हें स्वर्गमोक्षकी उत्तमसंपदायें क्रमसे प्राप्त होती हैं ।

जिन श्रीजिनेन्द्रदेवनेतीनों लोकोंके जीवोंको समझानेकेलिये अनेकप्रकारकेकर्मफलनिरूपणकियेहैं।जो सिद्धभगवान इन्हीं कर्मफलोंको जीतकर लोक शिखर

जाविराजमानहुयेहैं जोआचार्य जोउपाध्याय और जो साधुइनकर्मफलोंकोजीततेहैं उनसंपूर्ण पंचपरमेष्ठियों कीमें उनकेभिन्न २ गुण वर्णनकरस्तुतिकरताहूं और कर्म नष्ट करनेकेलिये उन्हें मैं बार २ नमस्कार करता हूं ।

इति श्रीधर्मप्रश्नोत्तरमहाग्रंथे विपाक पृच्छा वर्णनो नाम पंचमः परिच्छेदः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठः परिच्छेदः ।

धर्मरूपी तीर्थकेउद्धार करनेवाले प्रश्नोत्तर निरूपण करनेमेंसमर्थ ऐसेउत्कृष्ट तीर्थकरऔर गणधरदेवोंको मैं उनके गुणोंकी प्राप्ति केलिये वार २ नमस्कार करता हूं तथा बार २ उनकी स्तुति करता हूं ।

जगज्ज्येष्ठ सद्गुरुकोनमस्कारकर यह शिष्यसज्जनोंके चित्त मोहित करनेवाले **सज्जनचित्तवल्लभ** नाम वाले नीचे लिखे प्रश्न करता है ।

१७२ । **विद्वान् कौन हैं**—जोपुरुषधर्म, तत्त्वार्थ और सत्कृत्योंको जानते हैं, पँचेंद्रियोंके विषयों सेतथा मिथ्यात्व मोह औरसँयम आदिसे बहुत दूर रहते हैं अपनी पूर्ण शक्तिसे रातदिन रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्गकासेवन करते

हैं तपश्चरणधारणकरतेहैं, वेहीविद्वान् कहलाते हैं। इनकेसिवाय अन्य कोईविद्वान् नहीं हो सकते।

१७३। मूर्ख कौन हैं—जोपुरुष आगमतत्त्वार्थ औरसद्धर्मकोजानकर भी ग्रहण नहींकरतेऔर उनपर विश्वास ही करते हैं जोकनिष्ठा (छोटी) अंगुली केसमाननीच और अधमहैं मोक्षमार्गमें कभीस्थिर रह नहीं सकते। इंद्रियोंमें सदा लंपट रहतेहैं रातदिन दुराचारोंमें लीन रहतेहैं ऐसे जड़पुरुष ही मूर्ख कहलातेहैं।

१७४। विवेकी कौन हैं—जोपुरुष रातदिनहिताहितका विचारकरते रहतेहैं इससंसारमें सारपदार्थ क्याहै, यह कामसंसारको किसप्रकारवशकररहाहै, सच्चेदेवशास्त्र गुरु कौन हैं, सन्मार्ग क्याहै, कुमार्ग क्याहै, कौन २ जीव धर्मनिष्ठहैं, कौनपापात्माहैं, कौनपात्रहै कौन अपात्रहैं कौनमतजीवोंका कल्याणकरनेवालाहै इत्यादिविचार करनेवाले उत्तमपुरुषही विवेकी कहेजातेहैं।

१७५। निर्विवेकी कौन हैं—जोपुरुष अपनेहित अहितका विचारनहीं करसकते, अपनेकल्याणकेलिये देवकुदेव, शुभअशुभ गुरुकुगुरु, धर्म अधर्म, गुणी निर्गुणी, पात्र अ-

पात्र, शास्त्र कुशास्त्र आदि सबका सेवन करते हैं सबकी पूजा भक्ति करते हैं वे इस अपरिमित संसारमें भ्रमण करनेवाले मनुष्य निर्विवेकी कहलाते हैं।

१७६। शूर कौन है—जो पुरुष चारित्ररूपी समरभूमिमें आकर कषायरूपी प्रबल शत्रुओंको, तथा कामइँद्रिय आदि बैरियोंको, परीषहरूपी योद्धाओंको, कर्मोंके अजेय विपाकोंको और दुस्सह मनवचनकायकी क्रियाओंको प्रयत्नपूर्वक जीतता है वही शूर है केवल शारीरिक बलसे शूर नहीं कहा जासकता।

१७७। कातर (काबर) कौन है—जो पुरुष चारित्ररूपी रणभूमिमें आकर परीषहरूपी योद्धाओंसे और कषायविषयरूप वैरियोंसे डरकर भागजाते हैं भयभीत होजाते हैं हार जाते हैं रत्नत्रय और तपश्चरणरूपी धन छोड़ भाग जाते हैं, वे निर्लज्ज क्षुद्रहृदय, दीन और जगतमें निंद्य ऐसे कातर कहेजाते हैं।

१७८। पतित कौन है—जो पुरुष व्रत चारित्र आदि उत्तम स्थानोंसे गिरपड़ते हैं अर्थात् उन्हें छोड़ देते हैं और जो उत्तम २ गुणोंको छोड़कर नीच दुर्गुण धारणकर

लेतेहैं वे निंद्य मूर्खजन पतित गिने जाते हैं।

१७९। उत्तम कुलीन पुरुष कौन कहे जातेहैं-जो पुरुष स्वीकार वा ग्रहण कियेहुये व्रतचारित्र और उत्तम गुणादिकोंसे कभी च्युत नहीं होते वे उत्तम कुलीन पुरुष कहेजाते हैं

१८०। नीच कौनहैं-जो नीचकर्म करते हैं कुदेव कुशास्त्र कुगुरुओंका सेवन करतेहैं कुधर्म और नीच कुमार्गका सेवन करते हैं, वे जीव नीच कहलाते हैं।

१८१। उत्तम कौनहैं-जो अहिंसाधर्म पालन करते हैं अरहंतदेव निर्ग्रंथगुरु और आप्तोक्त शास्त्रको मानते हैं उत्तमधर्म तथा सुमार्गका सेवन करते हैं, वे जगत्पूज्य पुरुष उत्तम कहे जाते हैं।

१८२। प्रशंसनीय कौनहैं-जो जीव अतिशय प्रशंसनीय और जगतके साररूप तपश्चरण,व्रत,सम्यग्दर्शनआदि कोधारणकरतेहैंवे तीनों लोकोंमें अति प्रशंसनीय गिने जाते हैं।

१८३। निंद्य कौनहैं-जो निंद्य कर्म करते हैं सदोष सम्यग्दर्शनादि पालन करते हैं और विषयों में सदा लीन रहते हैं वे भेषी पुरुष सदा निंद्य कहलातेहैं।

१८४। धीर वीर मनुष्य कौनहैं-जो उग्रव्रतउग्रतपश्चरण यम नियमादि पालन करतेहैं और रोगादि करोड़ों उपसर्ग आनेपरभी न तो उन्हें छोड़तेहैं और न किंचित् उनसे चलायमान होतेहैं किंतु ज्यों २ अधिक उपसर्ग आतेजातेहैं त्योंत्यों हठपूर्वक कठिन और अधिक २ व्रततप यम नियमादि धारण तथा पालन करतेहैं, जो कष्ट दुःखादिसे कभी नहीं डरते, उन्हें धीर वीर कहतेहैं।

१८५। अधम कौनहैं-जो व्रत तप यम नियमादि धारण कर थोड़ेसे रोग क्लेश आदि आनेपर उन्हें छोड़ देते हैं वे जगत्निंद्य पुरुष अधम कहलाते हैं।

१८६। सिंहके समान साहसी कौनहै-जो पुरुष उत्कृष्ट संयम दुष्कर तपश्चरण आदि स्वीकारकर तथा बड़ेभयंकर और अति साहससे धारण करनेयोग्य योगआसनआदि धारणकर प्राण नाशहोनेपरभी उनमें कोई किसीप्रकार का दोष नहीं लगनेदेते, वे करोड़ोंक्लेश सहनकरनेवाले उत्तमपुरुषसिंहकेसमाननिर्भय और साहसी कहलातेहैं

१८७। कुत्तोंके समान कौनहैं-जो पुरुष तपश्चरण और संयम पालन करने के लिये पंचेंद्रियोंके विषयोंको

तथा अन्य अनेक प्रकार के अनिष्ट परिग्रहादिकों को छोड़ देते हैं और फिर लोभ में पड़कर उन्हें ग्रहण कर लेतेहैं वे पुरुष ठीक कुत्तोंके समानहैं। कुत्ता जैसे अपनेही वांत किये हुये मलको भक्षण करना चाहता है। उसी प्रकार छोड़े हुये विषय परिग्रहादिको पुनः ग्रहण करने वाले पुरुष अवश्य कुत्तोंके समानहैं।

१८८। निर्लज्ज कौनहैं-जो पुरुष देवशास्त्र गुरुको तथा श्रावक श्राविका आदि संघकी साक्षीपूर्वक तपश्चरण व्रत दीक्षा यम नियमादि ग्रहण कर लेतेहैं और फिर कोई थोड़ासा कारण पाकर चंचल चित्तहो उसे छोड़ देते हैं अथवा उसका प्रतीकार करते वा चाहते हैं वे धृष्टपुरुष निर्लज्ज कहे जातेहैं।

१८९। लज्जावान् पुरुष कौनहै-जो पुरुष स्वीकार किये हुये व्रतयम नियमादिकों को निंदा भय आदि किसी कारणसेभी नहीं छोड़ते वे पूज्यपुरुषलज्जालुकहेजातेहैं

१९०। उत्कृष्ट कौनहैं-जो पुरुष सम्यग्दर्शन तथा उत्कृष्ट आचार संयम आदि को निरतिचार पालन करते हैं वे पूज्य पुरुष उत्कृष्ट कहलाते हैं।

१६१ । निकृष्ट पुरुष कौन हैं—जोपुरुष निकृष्ट हिंसादि धर्मपालनकरतेहैं निकृष्टदेवशास्त्रगुरुको सेवन करतेहैं और निकृष्टही आचरण यमनियमादि पालन करतेहैं वेअद्भुत पुरुष निकृष्ट कहलातेहैं ।

१६२ । शुद्ध पुरुष कौन हैं—जोशुद्ध सम्यग्दर्शन,शुद्धव्रत, शुद्धध्यान और शुद्ध (निर्दोष) आचरण यम नियमादि पालनकरतेहैं वे शुद्ध पुरुष कहलाते हैं ।

१६३ । अशुद्ध कौनहैं-जिनके मनबचनकाय अशुद्ध हैं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादि अशुद्धहैं और आचरणआदि सबअशुद्धहैं वे सदोषव्रती वा अशुद्ध कहेजाते हैं ।

१६४ । पवित्र कौन हैं—जिनके आचरणध्यान आदिसब निर्मलहैं वे पुरुषतीनों लोकोंमें पवित्र गिनेजाते हैं ।

१६५ । अपवित्र कौनहैं—जोपुरुष ब्रह्मचर्यव्रतसे बहुतदूरहतेहैं स्त्रियोंके शरीररूपी कीचड़में सदाडूबे रहते हैं वे नीचपुरुष अपवित्र कहलाते हैं ।

१६६ । घृणित मनुष्य कौन हैं—जोपुरुषबड़ेप्रेमसे रातदिन स्त्रियोंके मुंहका लारपान कियाकरतेहैं वे निंद्य असंयमीपुरुष घृणित कहलाते हैं ।

६६७। सुखी कौन है–जिन्होंनेसमस्त आशाएं छोड़दोहैं जो सबसेनिराशहोकर रातदिन संतोषरूपी अमृतपान करतेरहतेहैं वेजितेंद्रिय सदासुखी कहलातेहैं।

६६८। दुःखी कौनहैं–जोलोभ और आशाओंसे घिरे हैं पंचेन्द्रियोंकेविषयोंके फंदेमें फंसेहैं जो संतोषकानाम भी नहींजानते वे संसारकी आकांक्षा रखनेवाले महादुःखी कहलाते हैं।

६६६। अद्भुत कौन हैं–जोपुरुष अद्भुत, उत्कृष्ट और अभीष्टध्यान, घोरतपश्चरण आदि स्वीकारकरतेहैं वे पूज्यपुरुष अद्भुतकहलातेहैं।

१०८०। कर्म रहित कौन कहलातेहैं–जो पुरुष मोक्षप्राप्तिकेलियेसदाउद्यतरहतेहैं रत्नत्रय तपश्चरणआदिसेविभूषितहैंवेपुरुषसंसारमेंरहतेहुयेभीकर्मरहितकहलातेहैं

१००१। दीर्घसंसारी कौनहैं–जोपुरुष महा मिथ्यात्वीहैं जैनधर्मसे पराङ्मुखहैं, निर्दयीऔरपापकरनेमें पंडितहैं। रातदिनविषयोंमेंआसक्तरहतेहैंअशुभलेश्या औरक्रोधादि सहित तीव्रकषायीहैं वेपुरुष संसारके अनंत दुःखोंकी सदाआकांक्षारखनेवाले दीर्घसंसारी वाअनंतसंसारी(अ

नँतकालतक संसारमें भ्रमणकरने वाले)कहलाते हैं।

१००२। नास्तिक कौन हैं—जोपुरुषसर्वज्ञ वीतराग निरूपितजिनधर्मतथा अणुव्रत महाव्रतादि पालननहीं करते न उनकाकहा हुआ शास्त्रही मानतेहैं जो परलोक तथा पुण्य पाप आदिको भीनहींमानतेवेइंद्रियविषयों केफंदेमें पड़ेहुये पुरुष नास्तिक कहलातेहैं।

१००३। नास्तिकोंको किन २ दुर्गतियोंमें जाना पड़ता है-वेनिगोदमेंजातेहैं या सातमेंनरकमेंजातेहैंअथवा स्थावरकायमेंपड़कर चिरकालतक वहीं निवास करतेहैं।

१००४। इसजीवको निगोदमें पड़कर कैसा दुःखभोगना पड़ताहै-निगोदमेंरहनेवालेजीवोंको अंतर्मुहूर्त्तमें छयासठहजार तीनसौ छत्तीसबार(६६३३६ वार) जन्म मरण करना पड़ता है और इसप्रकार जन्ममरण करनेका घोर दुःख उठातेहुये उन्हें अनंतकालतक वहीं रहना पड़ता है।

१००५। पूज्य मित्र कौनहैं—जोपुरुषतपश्चरण दीक्षाशास्त्राभ्यासआदि धारणकर धर्मकार्योंमें सहायताकरते हैं जापापकार्योंसे कुमार्गऔर दुराचारोंसे सदानिवारणकरते रहतेहैं वास्तविकमें वे ही सर्वत्र पूज्यमित्रहैं इनके सिवाय अन्यकोई मित्र नहीं होसकता।

१००६। शत्रु कौन हैं—जो पुरुष दीक्षाग्रहणकरनेमें तपश्चरणव्रतआदि स्वीकार करनेमें चैत्य चैत्यालयआदि धर्मकार्य करनेमें सदा निषेध करतेरहते हैं पाप कार्यकरनेकेलिये कुमार्गमें चलने और व्रत भंग करने केलिये मिथ्यात्वसे ... और कुशिक्षा ग्रहण करने केलिये सदाप्रेरणा करते रहतेहैं। इनके सिवाय अन्यकोई शत्रु नहीं होसकते।

१००७। मनुष्योंका सर्वत्र हित करनेवाले कौन २ हैं-उत्तम क्षमादिकधर्म, रत्नत्रय, तपश्चरण, दान, जिनपूजा, दीक्षाऔर इंद्रियनिग्रह आदि सब जगह मनुष्योंका हित सँपादन करते हैं।

१००८। हितैषी और दया कौन हैं—जोसज्जन पुरुषोंकोआत्मकल्याणकरनेमें दीक्षा तपश्चरणदान आदि सन्मार्गमेंसदा लगाये रहतेहैं वे सबका हितैषी कहलाते हैं।

१००९। इस संसारमें अहित क्या है-मिथ्यात्व, पाप, अनाचार इंद्रियोंके सुख कुमार्गका सेवन करना, नीचोंकी संगतिकरना आदि सदा दुःख देनेवाले और अहित करने वालेहैं।

१०१० । अहित करनेवाले दुष्ट कौनहैं-जो पुरुष अपनें आत्माको प्रेरणाकर मिथ्यात्व पापकार्य और कुमार्गआदि मेंपटकदेतेहैं अर्थात् जोमिथ्यात्व पापकार्य आदि कार्योंसे न करतेहैं वेदुष्टहैं अपनाही अहितकरनवाले हैं ।

१०११ । ऐसे कौनहैं जो जीते हुये भी मृतक समानहैं-जो पुरुष तप चारित्र जिनपूजन दानशील आदि कुछ नहीं कर सकते, निर्गंध पुष्पकेसमान व्यर्थ ही जीवन व्यतीतकरतेहैं किंतु चांडालकेसमान जोपापारंभ और दुराचार आदि करनेमें बड़े प्रबलहैं वे मूर्ख जीवित रहते हुये भी मृतकके समान है ।

१०१२ । मरे हुयेभी जीवितके समान कौन हैं—तपश्चरण वा धर्मकार्यसे उत्पन्न हुई निर्मल कीर्ति अद्यावधि विद्यमानहै अथवा जिनके निर्माणकिये हुये चैत्य चैत्यालय पांठालय आदि विद्यमानहैं वे मरे हुये भी चिरजीवी कहेजाते हैं ।

१०१३ । मृतकके समान नीच (स्पर्श न करने योग्य) कौन हैं-जो पुरुष नतो धर्ममें प्रेमरखतेहैं और न धर्मात्माओंसे प्रेम रखतेहैं ऐसे गाढमिथ्यात्वी पुरुष मृतककेसमान अस्पृश्य कहलाते हैं ।

१०१४। किनका जीवितव्य सफल है - जो रातदिन तपश्च-रणपालनकरतेहैं व्रत करतेहैं दानदेतेहैं जिनपूजनक-रतेहैंदीक्षाग्रहणकरते हैं उनका जीवितरहना सफल है

१०१५। निष्फल जीवितव्य किनका है-जो रातदिन व्यापारंभ कर रहतेहैं,जिनका जीवनधर्म दान पूजन तपश्चरण आदिक विनाही व्यतीत होता है उनका वह जीवनव्य-र्थ है केवल नरकका कारण है।

१०१६। प्रशंसनीय दानी कौनहैं—जो थोड़ासा धन पाकर भी जिनालय बनवातेहैं प्रतिमा निर्माण करातेहैं पूजन प्रतिष्ठा आदि करातेहैं वेदानी अवश्य प्रशंसनीय हैं।

१०१७। प्रशंसनीय तपस्वी कौनहैं—जोहीनसंहननहोकर-भी दीक्षास्वीकार कर घोर तपश्चरण महाव्रत आदिपा-लन करतेहैं चमत्कार करनेवाले योग आसन आदि धारण करतेहैं तथा अपनी पूर्ण शक्तिसे अखंड और नि-र्दोष अनेकशुभाचरण पालन करते हैं ऐसे महातपस्वी अवश्य प्रशंसनीय गिने जाते हैं।

१०१८। ऐसे कौन हैं जो इस लोकमें भी दुःखी रहें और परलोक में भी दुःखी रहें—जो आठोंपहर पाप करते रहतेहैं औरजो दान पूजन तपश्चरण आदि पुण्यकार्योंसे सदा दूररहते

हैं वे दोनों लोकोंमें सदा दुःखी रहतेहैं ।

१०१९ । दोनों लोकोंमें सदा सुखी कौन रहतेहैं—जोधर्म कार्य करनेमें सदा तत्पर रहते हैं, पापोंसेडरते हैं और शुभ ध्यानादिकोंमें लीन रहते हैं वेदोनोंलोकोंमें सदासुखी रहते हैं ।

१०२० । वृद्ध कौन हैं—जिनके योग समाधि चारित्र, ज्ञान, ध्यान, तपश्चरण आदि अबसे अधिक और उत्कृष्ट हैं तथा जो धृति(धैर्य) आदि उत्कृष्टगुणोंको धारणकरने वालेहैं वास्तवमें वे ही वृद्धहैं । सफेदबालवाले तो नाममात्र के वृद्धहैं ।

१०२१ । बालक कौन हैं—जो तपश्चरण, व्रत चारित्र, विवेक आदि गुणोंसेरहित हैं, अज्ञानी और धृति (धैर्य) आदिगुणोंसे रहित हैं वे बालकहैं ।

१०२२ । गुणी कौन हैं—जो उत्तम क्षमादि दशधर्म धारण करनेवालेहैं सम्यग्दर्शनज्ञान चारित्र तपश्चरण समाधि आदि सद्गुण धारण करनेवाले हैं धर्म, शील, योग, जितेंद्रियताआदिसंयमधारणकरनेवाले तथाजोधैर्यादि अन्यअनेक गुणोंसेविभूषितहैं वे गुणीकहलातेहैं ।

१०२३। गुण रहित कौन हैं-जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र तपश्चरण, व्रतआदि गुणोंसे रहित हैं धर्मशून्य हैं नि-गंध पुष्पकके समान निर्गुणी कहे जाते हैं।

१०२४ जन्म पाना किनका सफल है—जो रत्नत्रय पाकर निरंतर धर्माचरण पालन करते हैं उन्हींका जन्म पा-ना सार्थक है।

१०२५। निष्फल जन्म किनका है—जो क्रिया, धर्म, तपश्च-रण आदिसे रहित हैं दान, शील, जिनपूजन आदि का-र्योंसे दूर रहते हैं उनका जन्म पशुओंके समान व्यर्थ है

१०२६। कौन मनुष्य बैलोंके समान हैं—जो पापारंभ आदि कार्योंसे सदा पीड़ित रहते हैं घररूपी रथमें जुतकर सदा उसे चलाया करते हैं अर्थात् सदा घरके कार्योंमें ही लगे रहते हैं वे पुरुष अवश्य बैलोंके समान हैं।

१०२७। उपर्युक्त पुरुष बैलोंके समान क्यों हैं--क्योंकि जैसे बैल धर्म शून्य होते हैं केवल पापकार्य कर अपना उदर निर्वाह करते हैं उसीप्रकार उपर्युक्त पुरुष भी धर्मशून्य और केवल पापकार्य कर अपना उदर निर्वाह करने वाले हैं इसलिये बैलोंके समान हैं।

१०२८। परलोकमें जानेकेलिये पाथेय (मार्गमें खानेयोग्य वा खर्च करने योग्य) क्या है-उत्तम अहिंसादिधर्मका सेवन करना ही पाथेयहै तथा तपश्चरणदान जिनपूजन व्रत संयम आदिपुण्यकार्य भी सब परलोककेलिये पाथेयका काम देतेहैं।

१०२९। किसका मस्तक उत्तम समझना चाहिये-जो पुरुष केवल मोक्षप्राप्त होनेकेलिये श्रीजिनेंद्रदेव को नमस्कार करतेहैं अथवा जिनसिद्धांत और निर्ग्रंथगुरुकोनमस्कार करतेहैं उन्हींपुरुषोंका मस्तक उत्तम और पुण्य बढ़ाने वाला है।

१०३०। किन पुरुषोंका मस्तक व्यर्थहै-जोपुरुषआत्मकल्याण करनेकेलिये अर्थात् मोक्षप्राप्त होनेकेलिये कुदेव कुशास्त्र और नीच कुगुरुओंको नमस्कार करतेहैं उन लोगोंका मस्तक व्यर्थहै केवल पाप बढ़ानेवालाहै।

१०३१। किन२ सज्जन पुरुषोंके नेत्र सफलहैं-जो पुरुष निरंतर जिनप्रतिमा और चैत्यालयोंके दर्शन करते रहते हैं धर्मकार्योंको बड़े प्रेमसे देखते हैं और सद्गुरुओं के दर्शन करतेहैं उन्हींके वे नेत्र सफल और शुभहैं।

१०३२। अशुभ नेत्र कौनहैं-जो पुरुष कुतीर्थ और कुगुरुओं

के दर्शन करते हैं तथा पापदृष्टिसे स्त्रियोंके मुख योनि आदि सुन्दर अंग उपांग देखते रहते हैं उनके वे नेत्र अशुभ कहलाते हैं ।

१०३३ । कौनसे कर्ण सफल गिने जातेहैं-जो कर्ण केवल ज्ञानवृद्धिकेलिये रातदिन धर्मोपदेश तत्त्वार्थ, आगमआदि सुना करतेहैं वे कर्ण सफल और पुण्यप्रद मानेजातेहैं।

१०३४ । पापी कर्ण कौनहैं-जो कर्ण कुशास्त्र विकथा, अशुभवार्ता, परधर्म और निंदा आदि सुनते रहतेहै वे पापी कहलाते हैं ।

१०३५ । कौनसी जिह्वा मिष्टभाषिणी और हित करनेवाली कहलातीहै-जो जिह्वा रातदिन ज्ञानामृतका पान करायाकरती है अर्थात् जो रातदिन पठन पाठन किया करतीहैऔर धर्मोपदेश दिया करतीहै वही जिह्वा उत्तम कहलातीहै

१०३६ । कौनसी जिह्वा उत्तम समझी जातीहै-जो जिह्वा मधुर, कर्णप्रिय, निर्दोष और सबका हित करनेवाला भाषण किया करतीहै वह जिह्वा उत्तम कहलातीहै ।

१०३७ । पापिनी जिह्वा कौनसी है--जो जिह्वा पापकार्यों के निरूपण करनेवाले कुशास्त्रोंका व्याख्यान करतीहै नर

कलेजानेवाले पापकार्योंका उपदेश देतीहै वह जिह्वा पापिनी कही जाती है ।

१०३८ । कौनसी जिह्वा सर्पिणीके समान गिनी जातीहै-जो जिह्वा परनिंदा झूठ गाली आदिके द्वारा मनुष्योंको सदा दुःख दिया करतीहै वह सर्पिणी के समान गिनी जातीहै

१०३९ । कौनसे हाथ शुभहैं-जो हाथ रातदिन जिनपूजन और वैयावृत्ति किया करतेहैं दान दिया करतेहैं तथा अन्य अनेकशुभकार्यकियाकरतेहैं वेहाथशुभकहलातेहैं ।

१०४० । पापीहाथ कौनहैं-जो हाथहिंसा पापारंभ आदि अशुभकर्मकरनेमें सदातत्पर रहतेहैं सदा आयुधलिये रहतेहैं जीवोंकाघात किया करतेहैं वे हाथ निंद्यऔर नरक देनेवाले कहलातेहैं ।

१०४१ । कौनसे पांव (पैर) सफल गिनेजातेहैं-जो पैर ईर्या- पथशुद्धिसे तीर्थयात्रा करतेहैं सद्गुरुयात्रा अर्थात् जाकर सद्गुरुकेदर्शनकरतेहैं वेपैर सफलऔरशुभगिनेजातेहैं

१०४२ । पापीपैर कौनहैं-जो पैर अपनीइच्छानुसार पाप कार्योंमें दौड़ते हैं कुतीर्थयात्रा और प्राणियोंके घात करनेके लिये दौड़ते हैं वे पापी कहलाते हैं ।

१०४३। पवित्र हृदय कौनसाहै–जो हृदय सदा तत्त्वोंका चिंतवन कियाकरताहै अनेकशास्त्रोंका जानकारहै परमात्मामें सदा लीन और स्थिर रहता है वही हृदय पवित्र और उत्तम है।

१०४४। पापी हृदय कौनसा है—जोहृदय कुशास्त्र और कुकथाओंका चिंतवन किया करताहै परदोष और इंद्रिय विषयोंमें आसक्तहै धर्मकाघात करनेवाला और कुमार्ग का सेवनकरनेवाला है वह हृदय पापी गिना जाता है।

१०४५। कल्याणकारी शरीर कौन है- -जोशरीर चारित्रतपश्चरणआदिपालन करता है कायोत्सर्ग अनशनआदि कठिन तपश्चरणोंमें निर्विकार और स्थिर रहताहै वह शरीर शुभ और कल्याणकारी कहलाता है।

१०४६। पापी शरीर कौनसा है – जोशरीरअनेकपाप और अनेक आरंभ करताहै जोतपश्चरण दीक्षाआदि ग्रहण नहीं कर सकता जो सदा विकारयुक्त रहता है वह दुखदायी शरीर पापी कहा जाता है।

१०४७। कर्ण पानेका क्या फल है—धर्म श्रवणकरना तथा आगमका अर्थ भावार्थ आदि श्रवण करना।

१०४८। नेत्र पाने का क्या फल है—रथोत्सव जिनाभिषेक जिनपूजन आदि धर्मकार्य, देखना तथा तीर्थोंके दर्शन करना आदि।

१०४९। जिह्वा पानेका क्या फलहै-हितमित भाषणकरना

१०५०। हाथों से क्या लाभ उठाना चाहिये—पात्रदान देना और भक्ति पूर्वक जिनपूजन करना।

१०५१। पैरोंसे क्या करना चाहिये—तीर्थयात्रा करने के लिये गमन करना।

१०५२। मन पानेका मुख्य फल क्या है—सदा धर्मध्यान तथा शुक्ल ध्यानादि करना।

१०५३। शरीर का मुख्य कार्य क्या है—तपश्चरण योग आदि धारण करना।

१०५४। सद्बुद्धि पानेका क्या फल है-आगमके कठिन २ अर्थोंका प्रकाश करना।

१०५५। कवित्व (काव्य बनानेकी शक्ति) आदि गुण प्राप्त होने का उत्तम फल क्या है-अध्यात्मशास्त्रोंकीरचना करनातथा आगमानुसारतत्त्वऔरपदार्थोंकेनिरूपणकरनेवालेशास्त्रोंकीरचनाकरनाआदिकवित्वगुणप्राप्तिकाउत्तमफलहै

१०५६। आत्मकल्याण करनेकेलिये कवियोंका अन्य उत्तम कार्य

क्या है-अरहंत सिद्धआचार्यउपाध्यायऔर साधुगणइन पंचपरमेष्ठियोंकानिरंतरगुणस्तवनकरनातथाइनकेगुण स्तवनकी रचनाकरनाआदि कवियोंकेउत्तमकार्य हैं।

१०५७। अमृतकेसमान पीने योग्य क्या है—निरंतर ज्ञान-रूपीअमृतका पानकरना ही अमृतके समानपेय है।

१०५८। ज्ञानामृत पान करने का फल क्या है—जन्म मरण रूपसंसारका नाश करना।

१०५९। अन्य पुरुषोंकेलिये क्या कहना चाहिये—अन्य पुरुषों केलिये धर्मकास्वरूपकहना चाहिये अथवा स्वर्गमोक्ष के साधनभूत रत्नत्रय कास्वरूप कहनाचाहिये।

१०६० इस संसारमें सार क्या है—व्रत धारण करना अथवा शास्त्राभ्यास करना।

१०६१। रातदिन किसका चिंतवन करना चाहिये— तत्त्वार्थ को निरूपण करनेवाले अर्थका।

१०६२। रातदिन चिंता किसकीकरनी चाहिये—कर्मरूपीशत्रु समूहकानाशकरनेकेलिये रातदिनचिंताकरनाअच्छा है

१०६३। हृदयमें सदा क्या धारण करना चाहिये—संसार की असारता।

१०६४। और क्या हृदयमें धारण करना चाहिये—तीन प्रकार कास्थिरवैराग्य हृदयमें सर्वत्र धारणकरनाचाहिये।

१०६५। वह तीन प्रकारका वैराग्य कौनसा है—संसारवैराग्य देहवैराग्य और भोगवैराग्य।

१०६६। संसारवैराग्य किसे कहतेहैं—पंचपरावर्तनरूपसंसारपरिभ्रमणके दुःखोंसे उद्विग्नचित्त होकरसंसारको सर्वथा असार दुःखमय चिंतवनकरउससे विरक्त होना संसार वैराग्य कहलाता है।

१०६७। देह वैराग्य किसे कहते हैं—अतिशयवीभत्सघिनोने और सैकड़ों रोगोंसे भरेहुए इस शरीरका स्वरूप चितवन करना इससे विरक्त होना देह वैराग्यहै।

१०६८। भोगवैराग्य किसे कहते हैं—असंतोष पाप और तृष्णाको बढ़ानेवाले किंचित् ऐंद्रियिकसुखाभाससेविरक्त होना भोग वैराग्य कहलाता है।

१०६९। सज्जनोंको वैराग्यसे क्या लाभ होता है—वैराग्यसेअनंत कर्मों का क्षय होता है और तपश्चरण रत्नत्रय आदि निर्मल गुण समूह उत्पन्न होते हैं।

१०७०। राग (रागद्वेष) करनेवालेरागीपुरुषोंको क्याहानिहोतीहै

समय समय पर उनके कर्मबंध होताहै उत्तमगुण सब नष्ट होजाते हैं मन और इंद्रियां उच्छृखल होजाती हैं तथा आत्मकल्याण बहुत दूर पड़जाताहै ।

१०७१ । यह ऐसा क्यों होताहै अर्थात् रागीपुरुषके विशेष कर्मबंधादि क्यों होतेहैं- क्योंकि रागी पुरुषके भोगोपभोग किये विनाही केवल सराग परिणामोंके द्वारा क्षणक्षण में अनंत कर्मोंका बंध होता है ।

१०७२ । वैराग्य क्या करताहै-विरागी और ज्ञानवान् पुरुषके भोजन पानादि भोगोपभोगसामग्रीका भोग करते हुये भी अंतरंगमें वैराग्यरूप परिणाम होनेसे कर्मका बंध नहीं होताहै । क्योंकि रागद्वेष परिणामोंसे कर्मका बँध होताहैं विरागी पुरुषके रागद्वेषहै नहीं इसलिये उस के कर्मका बंध भी नहीं होता ।

१०७३ । रागद्वेष और वैराग्यभावका ऐसा स्वरूप जानकर सज्जनोंको क्या करना चाहिये—उपर्युक्त तीनों प्रकारका वैराग्य स्थिरता और दृढता पूर्वक धारण करना चाहिये ।

१०७४ । और क्या करना चाहिये—रागद्वेष नष्ट करना चाहिये और रागद्वेष उत्पन्न कराने वाले परिग्रहका त्याग करना चाहिये ।

१०७५। मनुष्योंको सुनना क्या चाहिये—वैराग्यभावना सुनना चाहिये तथा शास्त्रोंके गूढ तत्त्व सदा सुनना चाहिये

१०७६। और क्या सुनना चाहिये-तत्त्वोंका स्वरूप, सिद्धांतशास्त्रोंका अर्थ और सत्कथा आदि।

१०७७। ग्रहण क्या करना चाहिये-आत्मकल्याण करनेवाले सद्वाक्य तथा शिष्यों को दीक्षा तपश्चरण आदि ग्रहण करना चाहिये।

१०७८। और क्या ग्रहण करना चाहिये—तत्त्वों का स्वरूप और सिद्धांतशास्त्रोंका अर्थ ग्रहण करना चाहिये तथा उपदेश देनेवाले सद्वक्ताओंके वचन ग्रहण करने चाहिये।

१०७९। किसके वचन प्रमाण माने जाते हैं—जो रागद्वेष रहित हैं अर्थात् वीतराग हैं, सर्वज्ञ हैं और संसारमात्रका हितकरनेके लिये सदा उद्यत हैं अर्थात् हितोपदेशी हैं उन्हीं के वचन प्रमाण माने जाते हैं।

१०८०। किसके वचन झूंठ और अकल्याणकारी समझे जाते हैं-जो पुरुष रागद्वेषसे कलंकित हैं, अज्ञानी हैं और जो न अपना हित करते हैं न अन्य जीवोंका ही कुछ कल्याण कर सकते हैं ऐसे पुरुषोंके वचन मिथ्या और पाप बढानेवाले गिने जाते हैं।

१०८१। ये रागी द्वेषी पुरुष साधुओंका क्या अपकार करते हैं-येपुरुषसाधुओंके सम्यग्दर्शनादि उत्तम गुण तो ग्रहण करतेनहीं और उनके चलाये हुये सन्मार्गमें चलते हैं किंतु उनमें व्यर्थ अनेक दोष लगाया करतेहैं।

१०८२। अज्ञानी पुरुषोंके बचन कैसे होते हैं—अज्ञानी पुरुषोंकेबचनउन्हें स्वयंकुमार्गमें लेजातेहैं तथा अन्य लोगोंकोभीकुमार्गगामी बनादेतेहैं। अज्ञानीपुरुषोंके बचन सदा पाप उत्पन्न करानेवाले और सर्पिणीकेसमान जगतनिंद्य कहलाते हैं।

१०८३। यह समझकर विद्वानों को क्या करना चाहिये—उन्हें अपना आत्मकल्याण करनेकेलिये सर्वज्ञ वीतराग देवकेबचनही ग्रहण करने चाहिये। अन्यरागीद्वेषीनिर्गुणीपुरुषोंकेबचन ग्रहणकरना कदापि योग्यनहींहैं।

१०८४। कौनसा कार्य शीघ्र करना चाहिये—संसारसंतति का विनाश।

१०८५। और क्या करना चाहिये—अपनेआत्माकाध्यान, अथवा पंच परमेष्ठियोंका ध्यान।

१०८६। पंचपरमेष्ठी कौन २ हैं-अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय और साधु ये पांच परमेष्ठी कहलातेहैं।

१०८७। इन पांच परमेष्ठियोंका ध्यान करनेसे क्या फल मिलताहै-

इनकेध्यानरूपीअग्निसे अनेकजन्मोंमें उपार्जन किये अनंतकर्मसमूहतृणराशिकेसमानक्षणभरमेंनष्ट होतेहैं

१०८८। इनके स्मरणकरनेसे क्या लाभ होता है—जैसेकतकफलसे जलपवित्रऔरनिर्मल होजाताहै उसी प्रकार परमेष्ठियोंके स्मरणकरनेसे मनपवित्र शुभऔर स्थिर होजाताहै तथा धर्मध्यानादिमें तल्लीन होजाताहै।

१०८९। जिस मंत्रमें इन पंच परमेष्ठियोंकासार और उत्कृष्टनाम हैं ऐसे "णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं; णमो आइरियाणं; णमो उवज्झायाणं; णमो लोए सव्वसाहूणं;" इस उत्कृष्ट मंत्रकेजप करने से क्या लाभ होता है—इसमंत्रकेजपकरनेसेसंपूर्ण विघ्ननष्टहोजातेहैं तथाउत्तम२ संपदायें सदाबढतीरहतीहैं

१०९०। जो पुरुष निरंतर इस मंत्रका जप करतेहैं उन्हें क्याफल मिलता है—उनके विघ्नसबक्षणभरमें नष्ट होजातेहैं। जैसेमंत्रकेप्रभावसेबादलफटकर क्षणभरमेंछितरवितर होकर नष्टहोजातेहैं उसीप्रकार इसमंत्रकेप्रभावसे दृढ बन्धन जालआदि भीक्षणभरमें सब नष्टहोजाते हैं।

१०९१। इस मत्रके प्रभावसे और क्या लाभ होताहै-इसमंत्रकेप्रभावसे सिंह हाथी कुत्ता व्याघ्र सर्पआदि क्रूर जीव भी कीलितकेसमान शक्ति हीन होजाते हैं।

१०९२। इस मंत्रका और क्या माहात्म्य है- -इसमंत्रके मा-

हात्म्यसे क्रूरपुरुष, दुष्टपुरुष, भूपति, विद्याधर, चोर शत्रु आदि सब स्वयं मित्र बनजातेहैं ।

१०१३ । क्या इस मंत्रके जपकरनेवालों को क्षुद्र देवादिक कोई किसी प्रकारकी पीड़ा करते हैं—जैसेमंत्रकेप्रभावसे सर्प निश्चेष्टहोजाताहै उसीप्रकार इसमंत्रके प्रभावसे व्यंतर असुरक्रूरग्रह शाकिनीडाकिनी चंडिकाआदिसबनिश्चेष्ट होजातहैंवावेस्वयंइच्छानुसारपदार्थदेनेवालेहोजातेहैं

१०१४ । इस मंत्रके जपकरनेसे धर्मात्मा पुरुषोंकेलिये क्या २ शांत होजाता है—जैसे मेघबरषनेसेसमुद्रशांत होजाता है उसीप्रकार इसमंत्रके जपकरनेसे अग्नि दावानल आदि सब उपद्रव स्वयं शांत होजातेहैं ।

१०१५ । यह मंत्र कैसा है—यह मंत्र समुद्रमें डूबते हुये पुरुषोंकोपार लगानेवालाहै तथा तीनोंलोकोंकीअन्य संपूर्णआपत्तियोंसे बचाने वाला है ।

१०१६ । इस मंत्रके प्रभावसे अन्य अनेक संपदायें अपनेपास आकर वश होजातीहैं—इसमंत्रके प्रभावसे तीनों लोकों की संपूर्ण संपदायें गृहदासीके समान वा उत्कृष्टभार्याके समान सज्जनोंकेसन्निकट स्वयं आउपस्थित होती है

१०१७ । क्या इस मंत्रके जपद्वारा उत्पन्न हुये पुण्यसे इसलोकमें घर लक्ष्मी भी बढ़ती है—अवश्य इसमंत्रकेप्रभावसे लक्ष्मी

भी प्रतिदिन अनेकप्रकारसे बढती रहती है।

१०९८। इसमंत्रके प्रभावसेपरलोकमें कौनसी लक्ष्मी प्राप्तहोतीहै इसमंत्रके प्रभावसे सज्जन पुरुषोंको इंद्र अहमिंद्र चक्रवर्ती गणधरदेव अरहंतदेव बलदेव आदि उत्तम २ पुरुषोंको उत्तम संपदायें प्राप्तहोती हैं।

१०९९। धर्मात्मा पुरुषोंके अनेक असाध्य रोगोंकेलिये उत्तम औषधि क्या है—अनेकअसाध्य रोगोंकोक्षणभरमें दूरकर देनेवाला यही एक महामंत्रहै।

११०००। क्याइसमंत्रकेसामने अन्य छोटे२ मंत्र असर करतेहैं—नहीं, जैसे सूर्योदयके सामने चंद्रमा निश्चेष्ट होजाता है उसीप्रकार इस मंत्रकेसामने भीअन्य सबमंत्र निश्चेष्ट होजातेहैं।

११०१। यह मंत्र कितनाउत्कृष्ट है—जैसेआकाशसे कोईबड़ापदार्थनहींहै औरपरमाणुसेकोई छोटापदार्थ नहींहै उसी प्रकार इसमंत्रासेअन्यकोई उत्कृष्ट पदार्थनहीं है

११०२। यह मंत्र किस २ समय निरन्तर जपना चाहिये—सुखमें, दुःखमें, कोईकिसीप्रकारका भय होनेपर, चलतेहुये, सोतेहुये, बैठतेहुये, कोईभारी रोगहोजानेपर, किसीकिलेमेंघिरजानेपर, संग्राममें तथाअन्य संपूर्ण संकट आजानेपर, कोईउपसर्ग आजानेपर और इष्ट वियोग

अनिष्टसंयोग होनेपरयहमहामंत्र निरंतरजपनाचाहिये

११०३। फिर यह मंत्र कहाँ जपना चाहिये—किसीबंदीगृहमें बंध जानेपर और मरण समय सन्निकट होनेपर यह मंत्र अच्छी तरह जपना चाहिये उससमय इसे कभी नहीं छोड़ना चाहिये।

११०४। केवलमरणसमयमें इस मंत्रके जप करनेसे किन२ पुरुषों को देवादि सुगतिका लाभहुआहै-केवलमरण समयमें इस मंत्रके जप करनेसे चोर तिर्यंच तथा कुव्यसन सेवन करनेवाले अनेक पुरुषोंको देवादि सुगतिकी प्राप्ति हुईहैं।

११०५। यदि किसी रोगादिकेहोजानेसे यहशरीर अपवित्रहोजाय तो उस समय भी यह महामंत्र जपना चाहिये या नहीं-अवश्य जपना चाहिये क्योंकि यह मंत्र महा पवित्रहै यह कभी अपवित्र नहीं हो सकता।

११०६। अपवित्रशरीरसे इस मंत्रका जप क्यों करना चाहिये—क्योंकिचाहे कोईपवित्रहो वा अपवित्रहो इसमंत्रकेजप करनेमात्रसेयहवाह्यअभ्यंतरसबजगहपवित्रहोजाताहै

११०७। जो पुरुष रातदिन इस मंत्रकाजप करतेहैं उन्हें क्या२ लाभ होते हैं-उन्हें सदा निष्पाप धर्मकी प्राप्ति होतीहै सच्चे आगमकीप्राप्ति होतीहै। पापकर्म तथा प्रबल मोहनीयक

मेनष्टहोजातेहैं। इंद्रियोंकेअनिष्ट विषयसबदूर होजाते हैं। संवरनिर्जराओं क्रमसे मोक्षकी प्राप्तिहोतीहै।इनके सिवायउन्हेंस्वतंत्रतासद्धर्मऔरसद्ध्यानकीप्राप्तिहोती है उनकेकष्टसबदूरहोजातेहैं। उनका धनकभीनष्टनहीं होता।उनकेरोग,विघ्न आदि सवनाश होजातेहैं। ज्ञान चारित्र आदि निर्मल और उत्तम गुणोंकी प्राप्तिहोतीहै।

११०८। इसमहामंत्रका ऐसाउत्तमफल जानकरक्याकरनाचाहिये रातदिन इसी उत्तम मंत्रका जप करना चाहिये इसे पाकर फिर कभी नहीं छोड़ना चाहिये।

११०९। मोक्षप्राप्त होने के लिये इस जीवको अपने हृदय में कौन भावनायें सदा चिंतवन करते रहना चाहिये-मैत्रीप्रमोदकारुण्य और माध्यस्थ भावनायेंसदाचिंतवनकरतेरहनाचाहिये

१११०। मैत्री भावना कहां चिंतवन करना चाहिये संपूर्ण प्राणियोंमें अर्थात् किसी जीवको कभी किसीप्रकारकादुःख नहो ऐसीअभिलाषाकोमैत्रीभावनाकहते हैं ऐसी यह मैत्रीभावना संसारके प्राणीमात्रमें सदा रहना चाहिये

११११। इस मैत्रीभावनाके चिंतवन करनेसे क्या लाभ होता है-महाव्रत समिति गुप्ति आदि गुणोंकी पूर्णता होतीहै।

१११२। प्रमोदभावनाका चिंतवन कहां करनाचाहिये जोपुरुष

सम्यग्दर्शनादि अनेक गुणोंसे सुशोभित हैं तपस्वीहैं ज्ञानचारित्री धृतिधैर्यआदि अनेक गुण धारण करने वालेहैं उन्हें देखकर हर्ष माननाचाहिये यही प्रमोद भावनाहै । भावार्थ गुणी पुरुषों को देखकर प्रमोद भावनाका चिंतवन करना चाहिये ।

१११३ । प्रमोदभावनासे क्या लाभ होताहै-प्रमोदभावनासे मनपवित्र और ध्यानकरनेयोग्यहोजाताहैगुणोंमें अनुराग बढ़ताहै और सम्यग्दर्शनादि सद्गुणोंकीप्राप्तिहोतीहै

१११४ । कारुण्यभावनाका चिंतवन कहां करना चाहिये जो प्राणीरोगोंसे पीडित हैं अथवा अन्य अनेकक्लेशोंसे दुःखीहो रहेहैं देखकर उनका उपकार चिंतवनकरतेहुये कारुण्य भावनाका चिंतवन करना चाहिये। भावार्थ-दुःखी जीवोंको देखकर कारुण्यभावनाकाचिंतवनकरना उचितहै

१११५ । माध्यस्थ्यभावनाका चिंतवनकहाँ करनाचाहिये-जोजीव सम्यग्दर्शनादि सुमार्गको छोड़करकुमार्गमेंजारहेहैं जो पापीहैं पापकर्मकरनेवालेहैं एकांतमतको माननेवालेहैं मिथ्यादृष्टि और क्रोधीहैं ऐसे जीवोंको देखकर माध्यस्थ्यभाव रखना चाहिये अर्थात् रागद्वेष छोड़ कर माध्यस्थ्यभावना का चिंतवन करना चाहिये ।

१११६ । माध्यस्थ्यभावनाके चितवन करनेसे क्यालाभ होताहै-माध्यस्थ्य भावनाका चितवनकरनेसे वैरभाव मिट जाताहै रागद्वेषादि दोष उत्पन्न नहीं होते परिणाम शुभ बने रहते हैं।

१११७। जो पुरुष रातदिन इन भावनाओंका चिन्तवन करतेरहते हैं उन्हें क्या लाभ होताहै-उनके सम्यग्दर्शनादि गुणसमूह सब प्रगट होजातेहैं रागद्वेषादिसबदोषछूटजातेहैंऔर उनका जन्ममरणरूप संसार शीघ्रही नष्ट होजाताहै।

१११८। इस धर्मप्रश्नोत्तर ग्रंथके पढ़ने से क्या फल मिलता है-इस ग्रंथके पढ़नेसे चतुरताबढ़तीहै संपूर्ण तत्त्वोंका ज्ञान होजाताहै और ज्ञानादि अनेक गुण बढ़जातेहैं।

१११९। इस ग्रंथके सुननेसे क्या लाभ होताहै-इस ग्रंथके सुननेसे अशुभकर्मोंका आस्रव रुक जाताहै तथा शुभ कर्मोंका आस्रव होता है।

११२०। इस ग्रन्थके लिखनेसे क्याफल मिलताहै-इसकेलिखनेसे ज्ञानरूपी तीर्थों के उद्धार करने का महाफल मिला करता हैं।

११२१। इस ग्रंथके व्याख्यान करनेसे क्या लाभ होता है-जैन धर्मानुयायी भव्यपुरुषोंकी सभामें इसग्रंथका व्याख्या

न करनेसे रत्नत्रयादि अनेक सद्‌गुणोंकी प्राप्तिहोतीहै।

इसप्रकार आचार्यवर्य श्रीसकलकीर्तिने मोक्षसुख कीप्राप्तिकेलिये सद्धर्मका व्याख्यानकरनेवाला यहधर्म प्रश्नोत्तरनामका ग्रँथ निर्माण कियाहै। जो मुनिवर ग-गद्देषादिरहितऔर विशेषज्ञानीहोंसंपूर्ण तत्त्वोंके जान नेवाले और उत्तमहों, वे इसे शुद्ध करलें।

इस ग्रन्थमें प्रमादवश, अज्ञानवश अथवा और कि सी अशुभसे जो कुछ संधिरहित मात्रा और अक्षर रहित कहागयाहो, हे सुभगेमातः सरस्वति वह सब क्षमा करना तथा संपूर्णमुनीश्वरभी यहमेरा सब.कृत्यक्षमाकरें और कृपाकर मुझे सद्‌बुद्धि देवें।

यह धर्मप्रश्नोत्तर ग्रंथ मोक्षरूपी सुख देनेवाला है धर्मशंवंधी प्रश्नोत्तरोंसेभराहुआहै, पापनष्ट करने वालाहै धर्मबढ़ानेवालाहै अनेक गुणोंका भंडार धर्म और तत्त्वोंका स्वरूप निरूपण करनेवालाहै तथा उन्हीं यथार्थ तत्त्वोंको निरूपण करनेवालाहै कि जो तत्त्व श्रीजिनेंद्रदेवने कहेथे और जिनका व्याख्यानश्री गौतमादि गणधरदेवोंनेकियाथा। ऐसायह ग्रंथ जबतक

संसारमें धर्मविद्यमानरहै तबतक मुनिजन और सज्ज-
नोंद्वारा सदा बढ़ता रहै ।

मैं सकलकीर्तिआचार्यश्रीऋषभदेवादि तीर्थंकर,ध
र्मसंबंधी प्रश्नोत्तरकरनेवाले तथाअनेकगुणधारण करने
वाले गणधरदेव,सम्यक्त्वादि आतउत्तमगुणधारण क
रनेवाले सिद्धनाथ,पंचाचारपालन करनेवाले आचार्य,
संपूर्णश्रुतज्ञानको जाननेवालेउपाध्यायऔरअनेकयोग
धारणकरनेवालेसाधुजनोंको नमस्कारकरताहूं तथाप्रा
र्थनाकरताहूंकि-येलोग मुझे अपने२ सब गुणप्रदानकरें।

इसग्रंथमें मैनेंजिन२ अरहंत.सिद्धआंचार्य उपाध्या
यऔर साधुजनोंको नमस्कारकियाहै तथा जिस२धर्म
रत्नत्रय श्रुतज्ञानआगमऔरसुतत्त्वोंका निरूपणकिया
है वे सबमुझेअपने२ गुणप्रदानकरें,तथा धर्म १ रत्नत्र
ययोग और समाधिमरणप्रदानकरें मोक्षमार्ग में चलने
और व्रतयम नियमादिधारण करनेमें मेरेसबबिघ्न दूर
करें । भावार्थ-इनकेप्रभावसे ये मेरे सबकाम सिद्धहों ।

जो ज्ञानरूपी तीर्थ अनेकगुणोंका भंडारहै पवित्रहै
त्रैलोक्यनाथभी जिसको पूज्यसमझतेहैं गणधरादि दे

वभा जिसकोबंदनाकरतेहैं मुनिसमूह जिनकोसदा स्तुति करतरहते हैं वह सकलकीर्तिद्वारानिर्मित(धर्मप्रश्नोत्तरनामका) ज्ञानरूपी तीर्थ मोक्षमार्गप्राप्त होनेके लिये चिरकालतक बढ़ता रहै तथा चिरकाल तक इसका निर्मलकीर्ति संसारभरमें फैलती रहै ।

यह धर्मतत्त्व और मोक्षमार्गको दिखानेकेलियेदीपकके समान तथाग्यारहसे सोलह प्रश्नोंसे सुशोभित धर्मप्रश्नोत्तर ग्रंथ सदा जयशील हो ।

इसग्रंथकी श्लोकसंख्या पंद्रहसौहै तथा इसकानाम धर्मप्रश्नोत्तर है और इसका यहनाम सार्थकहै क्योंकि इसमें प्रश्नोत्तररूपसे धर्मका निरूपण किया गयाहै ।

इति श्रीसकलकीर्त्याचार्यविरचिते धर्मप्रश्नोत्तर महाग्रंथे सज्जनचित्तवल्लभपूर्णवर्णनो नाम षष्ठः परिच्छेदः॥६॥

इति श्रीधर्मप्रश्नोत्तरग्रंथः समाप्तः